आधुनिक योरोप

प्रथम खण्ड
(१७८९-१८१५)

हिता, एम० ए०, पी-ए

इतिहास तथा राज्य-विज्ञान विभाग,

त राजपूत कॉलेज, आगरा।

ल क्ष्मी ना रा ण अ ग्र वा

प्रकाशक व पुस्तक-विक्रेता

हॉस्पिटल रोड, आगरा।

प्रथमावृत्ति, सितम्बर, १६५२

मूल्य साढ़े तीन रुपये ।

प्रकाशक :
लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा ।
मुद्रक :
अरविंद प्रेस, आगरा ।

दो शब्द

हिन्दी के भारत की राष्ट्र-भाषा के पद पर प्रतिष्ठित हो जाने के बाद से अनेक विश्वविद्यालयों ने उच्च शिक्षा हिन्दी के द्वारा देना आरम्भ कर दिया है। परन्तु अभी उच्च शिक्षा के अनेकानेक विषयों पर हिन्दी में उपयुक्त साहित्य की बड़ी कमी है। योरोपीय इतिहास पर एक-दो विद्वानों के अपने ढंग के अच्छे ग्रन्थ उपलब्ध हैं, किन्तु उच्च कक्षाओं के विद्यार्थियों के लिये अभी अनेक अच्छे ग्रन्थों की आवश्यकता है। मैंने प्रस्तुत पुस्तक लिख कर इस आवश्यकता की आंशिक पूर्ति करने का प्रयास किया है।

इस पुस्तक के लिये मैं मौलिकता का लेशमात्र भी दावा नहीं करता। अनेक प्रख्यात अधिकारी योरोपियन एवं अमेरिकन लेखकों के ग्रन्थों से मैंने अपनी सामग्री जुटाई है * और शिक्षण के अपने थोड़े-बहुत अनुभव के प्रकाश में विश्वविद्यालयों के स्नातकों के लिये जितना ज्ञान मैंने अपेक्षित समझा है उसे मैंने अपने ही ढंग से सरल सुगम शैली में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। जब तक हिन्दी में इस विषय पर उच्च कोटि के ग्रन्थ प्रकाशित नहीं होते तब तक अँग्रेज़ी भाषा में लिखे हुए उत्तमोत्तम ग्रन्थों का अवलोकन छात्रों के लिये अनिवार्य ही रहेगा। इस दृष्टि से मैंने स्थान-स्थान पर पाद-टिप्पणियों में ऐसे ग्रन्थों की ओर संकेत किया है। प्रायः ये सब ग्रन्थ ऐसे हैं जो सामान्य कोटि के कॉलेजों के पुस्तकालयों में मिल सकते हैं और छात्रों की पहुँच तथा समझ के बाहर नहीं हैं। विषय के समुचित ज्ञान के लिये यह आवश्यक है कि छात्र उनमें से अधिकाधिक ग्रन्थ पढ़े। पाद-टिप्पणियों की सहायता से इस कार्य में उन्हें काफ़ी सुविधा रहेगी।

इतिहास के समुचित अध्ययन के लिये ऐतिहासिक मानचित्रों का उपयोग अत्यन्त आवश्यक है। इस दृष्टि से मैंने इस पुस्तक में कई सुन्दर मानचित्र दिये हैं जिनसे अध्ययन में काफ़ी सहायता मिलेगी।

---

* इन ग्रन्थों की सूची पुस्तक के अन्त में दी हुई है।

योरोप के अनेक स्थानों तथा व्यक्तियों के नामों के शुद्ध उच्चारण की समस्या मेरे सामने रही है। उसे हल करने में मुझे अपने मित्र, अनेक भाषाओं के ज्ञाता, हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक एवं अपने कॉलेज के अँग्रेज़ी-विभाग के अध्यक्ष श्री डॉ० रामविलास शर्मा से बड़ी सहायता मिली है जिसके लिये मैं उनका आभारी हूँ। परन्तु अनेक कारणों से मैं सर्वत्र उनसे सहायता न ले सका और मुझे डर है कि कहीं-कहीं हिन्दी में नाम अशुद्ध रह गये होंगे जिन्हें मैं अगले संस्करण में शुद्ध करने का प्रयास करूँगा। कई नाम लिखे कुछ और पढ़े कुछ और ही जाते हैं। मैंने प्रायः उन नामों के आगे कोष्ठक में अँग्रेज़ी लिपि में उनका रूप दे दिया है जिससे पाठक उन नामों तथा उनके उच्चारणों से परिचित हो सकें।

पुस्तक को सब प्रकार से उपादेय बनाने का प्रयत्न तो मैंने पूरा किया है परन्तु विषय की विशदता, पुस्तक के सीमित आकार तथा स्नातकों की आवश्यकताओं के मेरे अपने अनुमान के कारण इसमें त्रुटियाँ रह जाना सम्भव है। यदि उन त्रुटियों की मुझे सूचना मिली तो मैं अगले संस्करण में उन्हें दूर करने का प्रयत्न करूँगा। यदि पुस्तक हमारे विश्वविद्यालयों के छात्रों के काम की हो सकी और उन्हें इससे सन्तोष हो सका तो मैं अपना प्रयत्न सफल समझूँगा। एक शिक्षक के लिये छात्रों के सन्तोष से अधिक मूल्यवान् कोई पुरस्कार नहीं हो सकता। आशा है मुझे यह पुरस्कार प्राप्त हो सकेगा।

आगरा
अनन्त चतुर्दशी
३-६-५२

—भ० न० मेहता।

विषय-सूची

चित्र-सूची

आधुनिक योरोप के इतिहास
की
पृष्ठभूमि

(प्राचीन काल से १७८९ तक)

Ghandelwal

अध्याय १

प्राचीन कालीन योरोप

आधुनिक योरोप के इतिहास के समुचित अध्ययन के लिये उसके पिछले युगों के इतिहास की मुख्य-मुख्य बातों का ज्ञान आवश्यक है। योरोप की गणना आज संसार के सभ्यतम प्रदेशों मे होती है परन्तु वह मानव इतिहास के मंच पर बहुत बाद में आया। जिस समय भारतवर्ष, चीन, पश्चिमी एशिया, मिस्र आदि प्रदेशों में उच्चकोटि की सभ्यताएँ विद्यमान थीं उस समय समस्त योरोप जंगली एवं असभ्य दशा में था। योरोप का इतिहास ढाई हजार वर्ष से अधिक प्राचीन नहीं है। वहाँ सर्व प्रथम सभ्यता का उदय ग्रीस तथा पश्चिमी एशिया के बीच में स्थित ईजियन सागर के द्वीपों में हुआ जिनमें क्रीट का द्वीप सबसे बड़ा है। क्रीट ईजियन सभ्यता का केन्द्र था। यह सभ्यता संसार की प्राचीन सभ्यताओं (सिंध, चीन, मिस्र, सुमेरियन तथा एसीरियन) की समकालीन थी और उन्हीं के समान उत्कृष्ट कोटि की थी। अनुमानतः कोई डेढ़ हजार वर्ष के शान्तिपूर्ण विकास के उपरान्त १२०० ई० पू० के लगभग उत्तर की ओर से आनेवाले यूनानियों ने इस सभ्यता के प्रधान केन्द्रों को नष्ट करके उसका अन्त कर दिया। इस सभ्यता का अन्त तो होगया परन्तु नष्ट हो जाने पर भी उसने यूनानियों पर बड़ा प्रभाव डाला। जिस सभ्यता का यूनानियों ने विकास किया उसकी जननी ईजियन सभ्यता ही थी।*

(अ) यूनानी सभ्यता

जिन यूनानियों ने ईजियन सभ्यता के क्रीट आदि केन्द्रों पर आक्रमण किया था वे प्रधानतः प्रख्यात आर्य जाति की एक शाखा थे। ईसा से पूर्व दूसरी सहस्त्राब्दि में किसी समय उत्तर की ओर से चलकर वे बाल्कन प्रायद्वीप में होते हुए ग्रीस (यूनान) में आ बसे। ग्रीस बड़ा ऊबड़-खाबड़ प्रदेश है। समस्त दिशाओं में फैली हुई अनेक पहाड़ियों ने इस प्रदेश की अनेक घाटियों को पृथक् कर दिया है जिसके बीच उन दिनों यातायात के अच्छे साधनों के अभाव के कारण पारस्परिक सम्पर्क कठिन था। फलतः जब यूनानी लोग यहाँ आकर इन घाटियों में बसे तो विभिन्न घाटियों मे बसे हुए लोगों के बीच निकट सम्पर्क स्थापित न हो सका और वे एक दूसरे से अलग बने रहे। इन घाटियों में उन्होंने अपने-अपने नगर स्थापित किये। प्रत्येक नगर एक स्वतन्त्र राज्य होता

*Swain : A History of World Civilization, p. 102.

था और आसपास के नगर-राज्यों से उसका किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं होता था। ऐसे नगर-राज्य ग्रीस में सैकड़ों थे जिनमें प्रमुख एथेन्स तथा स्पार्टा के राज्य थे। इन राज्यों की जनसख्या अधिक नहीं होती थी। अधिकांश राज्यों की जनसंख्या ५०,००० से अधिक नहीं थी। एथेन्स का राज्य सबसे बड़ा था परन्तु उसकी जनसंख्या भी अनुमानतः तीन लाख से अधिक नहीं थी।

ग्रीस और लघु एशिया के बीच के समुद्र में असंख्य छोटे-छोटे द्वीप हैं। यूनानी लोग इनमें जा बसे और इनसे आगे बढ कर उन्होंने लघु एशिया के तट पर भी अपनी बस्तियाँ बसालीं। वे उत्तर, पश्चिम तथा दक्षिण की ओर भी बढे और काले सागर, दक्षिणी इटली, सिसिली, दक्षिणी फ्रांस, पूर्वी स्पेन तथा उत्तरी अफ्रिका के तट पर उन्होंने अनेक उपनिवेश स्थापित किये जो सैकड़ों वर्षों तक फलते-फूलते रहे।

संस्कृति—

दक्षिण की ओर बढते समय यूनानियों में एकता नहीं थी और न वे राजनीतिक दृष्टि से आगे भी कभी एक हो सके। तिस पर भी उनमें तीन बातें ऐसी थीं जो उनकी आधारभूत सांस्कृतिक एकता की द्योतक थीं। वे सब अपने आप को एक पुरखा–हेलेन–की सन्तान समझते थे। इसी कारण वे अपने आप को हेलेनीज और अपने देश को हेलास कहते थे। उनकी सभ्यता भी इसी कारण हेलेनीज सभ्यता कहलाती है। उन सबका धर्म भी एक था। वे लोग भारतीय आर्यों की भाँति देवताओं में विश्वास करते थे। उनके प्रधान देवता ज्यूस (Zeus),डेमेटर (Demeter), अपॉलो (Apollo),पोसीडान तथा डायोनीसस (Dionysus) थे। देवियों में सबसे प्रमुख ऐथीना (Athena) थी जो एथेन्स राज्य की अधिष्ठात्री देवी थी। ऑलिम्पस पर्वत इन देवताओं का निवास-स्थान समझा जाता था। वे लोग देवताओं से डरते नहीं थे वरन् उन्हें महापुरुष समझकर उनकी अराधना करते थे और उन्हें अपने सुख दुःख के साथी तथा रक्षक समझते थे। देवताओं के लिये वे बड़े भव्य मन्दिरों का निर्माण करते थे। मन्दिरों में पुजारी या पुरोहित होते थे जो धार्मिक उत्सव तथा यज्ञादि करते थे परन्तु समाज पर उनका अधिपत्य नहीं था। वास्तव में यूनानियों का प्रत्येक कबीला अपनी उत्पत्ति किसी देवता से मानता था और इस प्रकार देवता समाज के संस्थापक माने जाते थे। देवता उनके अपने आत्मीय थे और उन्हें प्रसन्न करने के लिये किसी पुरोहित के माध्यम की आवश्यकता नहीं थी। इस बात का एक महत्वपूर्ण सामाजिक परिणाम यह निकला कि यूनानियों में पुरोहित वर्ग का प्राधान्य नहीं हो पाया और राज्य में लौकिक

तथा धार्मिक शक्तियों के बीच में संघर्ष की संभावना कभी न हो पाई। यूनानी राज्य धर्म-निरपेक्ष राज्य थे और यह बात राजनीतिक स्वतंत्रता के अनुकूल थी। इसका अर्थ यह नहीं है कि यूनानी राज्यों का कोई सर्वमान्य धर्म नहीं होता था। राज्य से अलग कोई संगठित धर्म तथा पुरोहित वर्ग नहीं था। इसी अभाव के कारण धर्म का समाज तथा राज्य से घनिष्ट सम्बन्ध था। वास्तव में यूनानियों के लिये राज्य केवल एक राजनीतिक संस्था ही नहीं वरन् धार्मिक, सामाजिक तथा आर्थिक संस्था भी था। जिस प्रकार प्रत्येक परिवार तथा प्रत्येक कबीले की उत्पत्ति किसी देवता से मानी जाती थी उसी प्रकार प्रत्येक राज्य का भी एक अधिष्टाता देवता या अधिष्टात्री देवी होती थी। उसका आदर करने और उसके लिये होने वाले सार्वजनिक यज्ञों एव उत्सवों में भाग लेने में ही यूनानी नागरिक के धार्मिक कर्तव्य की इतिश्री थी। इससे अधिक उससे कुछ भी अपेक्षित नही था। ऑलिम्पस पर्वत पर ज़्यूस की उपासना के उपलक्ष्य में प्रति चौथे वर्ष खेल हुआ करते थे जिसमें ग्रीस के सभी राज्यों के प्रतिनिधि भाग लेते थे। उन्हें देखने के लिये सब जगह से दर्शक एकत्रित हुआ करते थे। यहाँ विभिन्न राज्यों के लोगों को परस्पर मिलने का अच्छा अवसर मिलता था और उन्हें अपनी आधारभूत एकता की अनुभूति होती थी। ये एक प्रकार से राष्ट्रीय खेल होते थे और इन खेल-कूद के दिनों में विभिन्न राज्य अपने पारस्परिक कलहों एवं युद्धों को स्थगित कर दिया करते थे।

यूनानियों की एकता के सूत्र मे ग्रथित करने वाली तीसरी बात उनकी सामान्य भाषा ग्रीक थी। विभिन्न कबीलों की बोलियाँ अवश्य अलग-अलग थी जैसे डोरिक, आयोनिक आदि परन्तु ग्रीक भाषा उन सबकी सामान्य भाषा थी। यूनानियों के आदि कवि नेत्रहीन होमर के महाकाव्य इलियड (Iliad) तथा ओडेसी (Odyssy) इसी भाषा में लिखे गये थे जिनका सर्वत्र समान रूप से आदर होता था और जिनसे सब समान रूप से प्रेरणा प्राप्त करते थे।

राजनीतिक व्यवस्था—

सामान्य उत्पत्ति, सामान्य धर्म एव सामान्य भाषा जैसे एकता के प्रबल साधनों के होते हुए भी यूनानी लोग राजनीतिक एकता के सूत्र मे कभी नहीं बँध सके। सारे देश में असंख्य स्वतंत्र नगर-राज्य थे। नगर के चारों ओर एक नगरकोट हुआ करता था जिसके अन्दर ही राज्य का सारा सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन व्यतीत होता था। यहीं व्यापार होता था और यहीं राज्य के कलाकौशल होते थे। नगरकोट के बाहर कृषि-भूमि और चर-भूमि थी। कृषि और पशुचारण दासों का काम था। यूनान के सभी नगर-राज्यों में तीन

प्रकार के निवासी होते थे। नागरिक, विदेशी लोग तथा दास। विदेशियों तथा दासों को राजनीतिक अधिकार प्राप्त नहीं थे। दासों का काम कृषि करना, पशु चराना, घरेलू काम करना आदि था। नागरिकों को इन कामों को करने की चिन्ता नहीं थी और उन्हें राज्य के कामों में भाग लेने के लिये इस प्रकार पर्याप्त समय मिलता था।

विभिन्न राज्यों की शासन-पद्धति विभिन्न थी परन्तु मोटी तौर से शासन-पद्धति के विकास में कई समानताएँ थीं। आरम्भ में अधिकांश राज्यों में एकतन्त्र शासन था और वंशक्रमानुगत राजा शासन करते थे, परन्तु ईसा से पूर्व आठवीं शताब्दी के लगभग अधिकांश राजाओं के अधिकार छिन गये और उनकी जगह कुलीनतंत्रीय् शासन स्थापित हो गये। व्यापार और सम्पत्ति के बढ़ने के साथ इन राज्यों में बड़े महत्वपूर्ण सामाजिक एवं राजनीतिक परिवर्तन होने लगे। जो नगर-राज्य व्यापारिक क्षेत्र में अधिक प्रगतिशील थे वहाँ प्रायः साहसिक व्यक्ति कुलीनों के अन्यायों के विरुद्ध जनता का पक्ष लेकर उठ खड़े होते थे और बलपूर्वक शासन छीन लेते थे। ऐसे शासक डिक्टेटर कहलाते थे। इनमें से कई बड़े सदाशय होते थे और जनहित में शासन करते थे परन्तु कभी-कभी वे स्वयं अत्याचारी हो जाते थे और जनता उन्हें निकाल कर जनतन्त्र स्थापित कर लेती थी। इन नगर-राज्यों में परिवर्तन बड़ी जल्दी-जल्दी हुआ करते थे। किन्तु ईसा से पूर्व छठी या पाँचवीं शताब्दी तक ग्रीस के प्रमुख नगर-राज्यों में ऐसी शासन-पद्धतियाँ स्थापित हो चुकीं थी जो प्रायः स्थायी बनी रहीं।

स्पार्टा—

हम ऊपर बता चुके हैं कि ग्रीस के नगर राज्यों में स्पार्टा और एथेन्स मुख्य थे। इन दोनों राज्यों के आदर्श एक दूसरे के बिलकुल विपरीत थे। स्पार्टा कृषि-प्रधान राज्य था और उसमें नगरों के सैनिक शिक्षण तथा सैनिक अनुशासन पर अत्यधिक ज़ोर दिया जाता था। वहाँ कुलीनतंत्रीय शासन था। राजनीतिक अधिकारप्राप्त नागरिकों की संख्या वहाँ अपेक्षाकृत बहुत थोड़ी थी। अधिकांश निवासी या तो दास (Helots) थे जो अपने मालिकों की टहल करते थे, उनकी खेती करते थे और जिन्हें भारी कर देने पड़ते थे, या व्यक्तिगत रूप से स्वतंत्र (Peroikoi) थे परन्तु जिन्हें कोई राजनीतिक अधिकार प्राप्त न थे। राज्य बालक-बालिकाओं की शिक्षा-दीक्षा पर पूरा नियंत्रण रखता था। बालकों को कड़ी सैनिक शिक्षा दी जाती थी और उनके स्वास्थ्य तथा शारीरिक गठन पर पूरा ध्यान दिया जाता था। बालिकाओं को

भी कड़ी शारीरिक शिक्षा दी जाती थी। उनके शिक्षण का एकमात्र उद्देश्य यह था कि वे स्वस्थ एव हृष्टपुष्ट बालकों की मातायें बनें। इस प्रकार स्पार्टा के नागरिकों का सारा समय शरीर को बलिष्ठ बनाने और वीरोचित गुणों की अभिवृद्धि में भी बीतता था और बौद्धिक एव आध्यात्मिक उन्नति के लिये उन्हें अवकाश नहीं मिलता था। इसका परिणाम यह हुआ कि स्पार्टा अपने युद्ध-कौशल के लिये तो अमर हो गया परन्तु यूनानी सभ्यता के विकास मे उसका कोई उल्लेखनीय स्थान नहीं रहा।

एथेन्स—

एथेन्स स्पार्टा के विपरीत बौद्धिक एवं आध्यात्मिक उन्नति एवं स्वतन्त्रता का पुजारी था। वहाँ प्रजातंत्र का सर्वाधिक विकास हुआ। एथेन्स के प्रजातत्र का जन्मदाता सोलन (Solon) था जिसने ५८४ ई० पू० के लगभग एथेन्स के लिये एक विधान का निर्माण किया। यह विधान स्वयं तो प्रजातंत्रीय नहीं था परन्तु इसके द्वारा कुलीनों की शक्ति पर नियत्रण लगाया गया, जनता को कुछ अधिकार मिले और इस प्रकार प्रजातन्त्र का श्रीगणेश हुआ। सोलन के समय के बाद एथेन्स में अन्य स्थानों के अनुसार पिसिस्ट्रेटस (Pisistratus) का एकतत्र शासन स्थापित हुआ। इसका शासन तो अच्छा था परन्तु अपनी स्वतन्त्रता छिन जाने से एथेन्स के निवासी इस शासन को सहन न कर सके। उन्होंने उसकी मृत्यु के बाद उसके पुत्र को पदच्युत करदिया और एथेन्स मे प्रजातंत्र स्थापित होगया। इसका आधार क्लेस्थनीज (Cleisthenes) का विधान (५०८ ई० पू०) था। इसके उपरान्त प्रजातन्त्र की उत्तरोत्तर उन्नति होती गई। परन्तु चरम उन्नति को प्राप्त होने के पहले एथेन्स को फारस के आक्रमण का मुकाबला करना पड़ा जिसमें उसे पूर्ण सफलता प्राप्त हुई।

फारस का आक्रमण—

इन्हीं दिनों पश्चिमी एशिया में फारस का महान् साम्राज्य था और सम्राट् डेरियस उसका विस्तार कर रहा था। पश्चिमी एशिया के भूमध्य-सागरीय तट पर यूनानी उपनिवेश थे जिनको अपने साम्राज्य में मिलाने का उसने प्रयत्न किया। उन उपनिवेशों ने विद्रोह कर दिया। एथेन्स को यह आशंका हुई कि डेरियस आगे बढ़कर ग्रीस पर भी कहीं आक्रमण न कर बैठे। इस कारण उसने यूनानी उपनिवेशों की सहायता को कुछ जहाज भेजे। इस पर क्रुद्ध होकर डेरियस ने एथेन्स पर आक्रमण कर दिया और मेरेथॉन (Marathon) की खाड़ी मे अपनी विशाल सेना उतार दी। एथेन्स ने स्पार्टा तथा अन्य राज्यों से सहायता मांगी परन्तु कहीं से सहायता मिलने के पूर्व ही

एथेन्सवालों ने मेरेथॉन के मैदान में फारसवालों को बुरी तरह से परास्त कर दिया (४६० ई० पू०) । इसके दस वर्ष बाद ४८० ई० पू० में डेरियस के उत्तराधिकारी जरक्सीज़ (Xerxes) ने अपने पिता की पराजय का बदला लेने के लिये फिर आक्रमण किया । इस बार उसने जल-मार्ग तथा स्थल-मार्ग दोनों से आक्रमण किया । जल और स्थल दोनों पर घोर युद्ध हुए जिसमे दोनों पक्षों की बहुत क्षति हुई परन्तु अन्त में एथेन्स और स्पार्टा की सम्मिलित शक्ति ने फारसवालों को ऐसा परास्त किया कि उन्होंने फिर कभी यूनान विजय करने की चेष्टा न की ।

एथेन्स का उत्कर्ष—

इस विजय के बाद के ५० वर्ष का समय एथेन्स के चरम उत्कर्ष का काल था । इसमें एथेन्स में पूर्ण प्रजातंत्र की स्थापना हुई और कला, साहित्य, विज्ञान एवं दर्शन के क्षेत्र में एथेन्सवालों ने बड़ी उन्नति की । इस युग के अधिकांश में एथेन्स की बागडोर एक अत्यन्त सुयोग्य शासक एवं राजनीतिज्ञ पेरिक्लीज (Pericles) के हाथों में थी । उसके समय में एथेन्स ग्रीस के बौद्धिक एव कलात्मक जीवन का केन्द्र और क्रियात्मक प्रजातंत्र का आदर्श बन गया । वह स्वय एथेन्स को 'हेलास की पाठशाला' (School of Hellas) कहता था और उसका दावा सत्य ही था । कला, साहित्य, दर्शन, विज्ञान आदि के क्षेत्रों में एथेन्स ने जितनी उन्नति इन पचास वर्षों में की उतनी इतने थोड़े से समय मे आजतक किसी भी देश ने नहीं की ।*

पतन—

पेरिक्लीज की मृत्यु के बाद (४२९ ई० पू०) एथेन्स के पतन का सूत्रपात हो गया । प्रजातन्त्र की सफलता के लिये कुशल नेतृत्व के अतिरिक्त तीन बातें अनिवार्य हैं । ज्ञानवान, क्रियाशील एवं साहसी नागरिक समुदाय, विचारविमर्श के आधार पर नीति-निर्धारण तथा जनता के अधिकारों की सुरक्षा के एकमात्र साधन विधान के लिये आदर भावना । पेरिक्लीज़ की मृत्यु के बाद एथेन्स में जो परिस्थिति उत्पन्न हुई उससे यह स्पष्ट प्रकट हो गया कि यदि सुव्यवस्था का मूल्य चुकाकर स्वतन्त्रता खरीदी जाती है तो वह बड़ी महगी पड़ती है । इसके साथ ही यह भी स्पष्ट हो गया कि एक कुशल नेता के मिल जाने पर उस पर बिलकुल निर्भर हो जाने से काम नहीं चलता । जनता के लिये निरन्तर सतर्क रहना और शासन की क्रियाओं को अच्छी तरह समझते रहना अत्यन्त आवश्यक है । पेरिक्लीज़ की मृत्यु के उपरान्त एथेन्स को उसकी कोटि का

* Strong · Dynamic Europe, p. 48.

दूसरा नेता प्राप्त नहीं हुआ । उस कुशल राजनीतिज्ञ के स्थान पर साधारण कोटि के विवेकहीन नेता आसीन हो गये, साहस का स्थान भीरुता ने ले लिया, विचार विमर्श ने वाक्-कलह का रूप धारण कर लिया, स्वतंत्रता अनियंत्रता में परिवर्तित हो गई और विधान के लिये कोई आदर भावना न रही।* स्वतंत्रता की अतिशयता स्वयं उसके नाश का कारण बन गई ।

फ़ारस की प्रचण्ड सेनाओं का मुक़ाबला करते समय तो यूनानियों ने, मुख्यकर एथेन्स और स्पार्टा ने, एक दूसरे का साथ दिया था परन्तु उस भय के हट जाने पर वह सहयोग तथा एकता की भावना भी विदा हो गई। फ़ारस के विरोध का नेतृत्व एथेन्स कर रहा था। अपनी सफलता और विजय के मद से उन्मत्त होकर उसने दूसरे राज्यों की स्वतंत्रता का अपहरण करना आरम किया जिस पर वे बिगड़ खड़े हुए। स्पार्टा ने उनका नेतृत्व किया और इसके फल-स्वरूप ग्रीस मे ३० वर्ष तक घरेलू युद्ध का ताण्डव होता रहा। यह युद्ध पिलापानीजियन युद्ध (Peloponnesian war) कहलाता है। इसमें अन्त में एथेन्स का पराभव हो गया। स्पार्टा भी जो एथेन्स विरोधी राज्यों के संघ का नेता था अपनी विजय का उपयोग बहुत दिनों तक न कर सका। उसे एक दूसरे नगर-राज्य थीबीज (Thebes) के प्राधान्य के सामने अपना मस्तक झुकाना पड़ा। परन्तु थीबीज़ भी यूनानियों को एकता के सूत्र में न बांध सका और उसका नक्षत्र मेसोडोनिया के उदीयमान सूर्य के सामने क्षीण पड़ गया।

ग्रीस की स्वतंत्रता का नाश—

मेसिडोनिया का प्रदेश ग्रीस के उत्तर में है। यूनानी लोग मेसिडोनिया-वालों को बर्बर समझते थे। सभ्यता की दृष्टि से वे यूनानियों से बहुत पिछड़े हुए थे परन्तु उनमें यूनानी रक्त था, उनकी भाषा भी ग्रीक भाषा से मिलती जुलती थी और उनके विचार भी कुछ कुछ यूनानियों के समान थे। वहाँ एकतंत्र शासन था और मेसिडोनिया शक्तिशाली राजाओं के शासन में एक सुदृढ सैनिक राज्य बन गया था। जिन दिनों यूनानियों की शक्ति क्षीण हो रही थी, उन्हीं दिनों मेसिडोनिया उत्कर्ष के पथ पर अग्रसर था। चौथी सदी ई० पू० में वहाँ के शासक द्वितीय फिलिप (३८२-३३६ ई० पू०) ने अपने राज्य का विस्तार करना आरंभ किया और बाल्कन प्रायद्वीप विजय करके ग्रीस पर चढ दौड़ा। इस आक्रमण को रोकने का मुख्य भार एथेन्स पर पड़ा परन्तु एथेन्सवाले उसके सामने टिक न सके। धीरे-धीरे मेसिडोनिया की सेनाओं ने पहले तो फ़िलिप के नेतृत्व मे और उसकी मृत्यु के बाद उसके दुर्दान्त दिग्विजयी पुत्र

*Ibid., p. 52.

महान् सिकन्दर के नेतृत्व में सारे ग्रीस पर अधिकार कर लिया और ग्रीस की स्वतंत्रता का अन्त हो गया। सिकन्दर यूनानी दार्शनिक एरिस्टॉटल का शिष्य रह चुका था। वह यूनानी विचारों से बड़ा प्रभावित हुआ। इन विचारों को ग्रहण कर उसने पश्चिमी एशिया तथा मिस्र में फैले हुए अपने विशाल साम्राज्य में उनका प्रचार किया। इस प्रकार यूनानी संस्कृति दूर-दूर तक फैल गई। परन्तु इस प्रसार में पूर्वीय संस्कृतियों के सम्पर्क के फल-स्वरूप उसने नया रूप ग्रहण कर लिया। इस रूप में यह संस्कृति हेलेनिस्टिक (Hellenistic) कहलाती है। यूनानी कला का भारतीय कला से भी सम्पर्क हुआ जिसके फल-स्वरूप भारतवर्ष में मूर्ति-निर्माण कला की एक नई शैली विकसित हुई जो गान्धार-शैली के नाम से विख्यात है।

ग्रीस की सांस्कृतिक देन—

उन दिनों राजनैतिक दृष्टि से तो ग्रीस पतन के गर्त में गिरता चला जाता था परन्तु उसकी संस्कृति फलती फूलती रही। इसी काल में ग्रीस के दो महान् दार्शनिक, प्लेटो तथा एरिस्टॉटल, उत्पन्न किये। प्लेटो सुकरात (Socrates) का शिष्य था। सुकरात पेरिक्लीज़ का समकालीन था। वह अन्धविश्वास के खण्डन तथा सत्य अथवा यथार्थ ज्ञान की आवश्यकता का उपदेश देना अपना कर्तव्य समझता था। यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने के लिये उसने यह आवश्यक बतलाया कि प्रत्येक बात सत्य की कसौटी पर कसी जाय और उस पर पूरी उतरने पर वह ग्रहण की जाय। एथेन्स के नवयुवक उसकी तरफ बड़ी संख्या में आकर्षित होते थे। उसके उपदेशों का परिणाम यह हुआ कि उसके अनुयायी अपनी सभी पुरानी बातों को सत्य की कसौटी पर कसकर और उन्हें पूरी उतरते न देखकर सन्देह की दृष्टि से देखने लगे। एथेन्स के दंभी तथा पाखण्डी नेताओं को इस बात से अपने प्रजातंत्र के लिये बड़ा संकट दिखाई दिया और उन्होंने उस पर नवयुवकों को बहकाने का दोष लगाया। उससे अपने विचारों का परित्याग करने के लिये कहा गया परन्तु उसने सत्य का पक्ष छोड़कर अपनी आत्मा की हत्या करना स्वीकार नहीं किया और राज्य की आज्ञा से विषपान कर अपने शरीर का अन्त कर दिया (३९९ ई० पू०)।

प्लेटो—

सुकरात के विषय में हमें जो कुछ मालूम है वह उसके अद्वितीय शिष्य प्लेटो के कारण। उसकी पुस्तकों द्वारा ही सुकरात की शिक्षाओं का ज्ञान संसार को हो सका है। प्लेटो (४२६-३४७ ई० पू०) एथेन्स का ही निवासी था और सुकरात की शिष्य मंडली में था। उसकी गणना संसार के महान् दार्शनिकों

में की जाती है। उसके आदर्शवाद (Idealism) का प्रभाव बाद के विचारकों पर काफी पड़ा है। वह सत्यान्वेषी था और सत्य के अन्वेषण के लिये उसने एक पाठशाला (Academy) खोली थी जिसमें दूर-दूर से विद्यार्थी पढने आते थे। राजनीति में वह बुद्धिवादी था और प्रजातत्र का विरोधी। उसका विश्वास था कि जब तक शासन एक दार्शनिक-शासक (Philosopher King) के हाथों में नहीं दिया जाता तब तक राजनीतिक जीवन के दोषो का अन्त नहीं हो सकता। रिपब्लिक (Republic) नामक पुस्तक में उसने अपनी इस कल्पना को मूर्त रूप देने का प्रयास किया है।

एरिस्टॉटल—

प्लेटो की एकेडेमी के अनेक विद्यार्थियो में एक एरिस्टॉटल (Aristotle) था जो उसका प्रधान शिष्य था परन्तु गुरु और शिष्य मे कुछ मौलिक बातो में मतभेद था। प्लेटो आदर्शवादी था और एरिस्टॉटल यथार्थवादी। वह थ्रेस प्रान्त में स्थित स्टेगिरा का निवासी था और सत्रह वर्ष की अवस्था मे एथेन्स आगया था। वह सिकन्दर का गुरु रह चुका था। इतिहास मे वह राज्य विज्ञान का जन्मदाता कहा जाता है। संसार उसकी पुस्तक पॉलिटिक्स (Politics) के लिये उसका सदा ऋणी रहेगा जिसका निर्माण उसने १५८ राज्यों के विधानों के अनुशीलन के आधार पर किया था। वह केवल राज्य-विज्ञान का ही पण्डित नहीं था; दर्शन शास्त्र, आचार शास्त्र, वनस्पति विज्ञान, शरीर विज्ञान, प्राणि विज्ञान, गणित आदि विज्ञानों मे भी वह पारगत था। इन सब विषयों पर उसने ग्रन्थ लिखे। वास्तव मे उसके ग्रन्थ पुरातन कालीन ज्ञान के भण्डार हैं।

यूनानी सभ्यता और सस्कृति वास्तव मे एथेन्स की सभ्यता और सस्कृति थी जिसका चरमोत्कर्ष-काल पेरिक्लीज तथा उसके बाद का समय अथवा मोटी तौर से ईसासे पूर्व चतुर्थ शताब्दी था। हम ऊपर लिख चुके हैं कि एथेन्स ने इन दिनों साहित्य, कला, विज्ञान, दर्शन आदि मे बड़ी उन्नति की। यूनानियों का साहित्य आजतक पश्चिमी सभ्यता की अमूल्य निधि माना जाता है। होमर रचित इलियड तथा ओडेसी संसार के महान् महाकाव्यों मे अपना स्थान रखते हैं। महाकवि पिण्डर (Pindar) की रचनाओं मे उत्कृष्ट कोटि के गीतिकाव्य के दर्शन होते हैं। यूनानी साहित्य के नाटक भी बड़ी उच्च कोटि के हैं। हेरोडोटस (Herodotus) इतिहास का जन्मदाता माना जाता है। थ्यूसीडाइडीज़ (Thucydides) ससार का प्रथम सामरिक इतिहासकार हुआ है। भौतिक विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, खगोल विज्ञान, गणित, चिकित्सा, प्रकृतिविज्ञान आदि ज्ञान-विज्ञान की अनेक शाखाओं में

यूनानियों ने संसार को बहुत कुछ दिया। गणित में पाइथोगोरस (Pythagoras), यूक्लिड (Euclid) तथा आर्किमिडीज (Archimedes) के नाम अमर रहेंगे। हिपॉक्रेटीज़ (Hippocrates) पश्चिम में चिकित्सा-विज्ञान का जन्मदाता माना जाता है। दर्शन शास्त्र में सुकरात, प्लेटो तथा एरिस्टॉटल के नाम चिरस्मरणीय हैं। एरिस्टॉटल ने जहाँ राज्यविज्ञान को जन्म दिया वहाँ प्रकृति-विज्ञान की नींव भी उसी ने डाली।

संसार को यूनानी सभ्यता ने अनुपम देन दी है। योरोपीय सभ्यता की आधारशिला यूनानी सभ्यता ही है। प्रायः कहा जाता है कि आधुनिक सभ्यता में जो बातें मूल्यवान् हैं उनमें से प्रायः प्रत्येक के लिये हम यूनानी संस्कृति के ऋणी हैं।* यह कथन अतिशयोक्तिपूर्ण अवश्य है परन्तु इतना ज़रूर मानना पड़ेगा कि यूनान ने पश्चिमी संसार को बहुत कुछ दिया और यदि मानव सभ्यता के खण्ड नहीं हो सकते और वह एक ही समूची सभ्यता है तो संसार यूनानियों का सर्वदा ऋणी रहेगा। प्रजातन्त्र, स्वतन्त्रता, वैधानिक कानून, व्यक्ति का गौरव तथा व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का आदर्श जिनकी पूजा आजकल संसार करता है उसे यूनानियों से ही प्राप्त हुए हैं।

यूनानियों के पतन के कारण—

किन्तु इतनी उच्चकोटि की सभ्यतावाले यूनानी अपनी राजनीतिक स्वतन्त्रता को कायम न रख सके। उन्होंने व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के सामने अनुशासन, व्यवस्था एवं एकता को नगण्य समझा और इन गुणों के अभाव में जब उन्हें शक्तिशाली दुर्दान्त बाह्य शत्रु के आक्रमण का मुकाबला करना पड़ा तो वे परास्त होगये। प्रारम्भ में यूनानियों की सैनिक शक्ति काफी बढी चढी थी परन्तु बाद में वह क्षीण होगई। यूनान के विभिन्न राज्यों में पारस्परिक संघर्ष सदा चलता रहता था जिससे उनकी सैनिक शक्ति का ह्रास होगया। कला आदि की उन्नति करने में उन्होंने वाणिज्य, कृषि तथा उद्योगों की ओर ध्यान नहीं दिया जिससे उनकी आर्थिक शक्ति भी क्षीण होगई। यूनानी लोग व्यक्तिगत स्वतंत्रता का बड़ा आदर करते थे परन्तु वे यूनानियों से भिन्न लोगों को हीन समझते थे और उन्हें कोई अधिकार नहीं देते थे। हम देख चुके हैं कि यूनान के नगर राज्यों में अधिकार-विहीन दासों की संख्या बहुत अधिक थी। यूनानियों में स्त्री का दर्जा भी बहुत नीचा था और सन्तानोत्पत्ति ही उसका एकमात्र कार्य समझा जाता था। जो समाज दासों तथा स्त्रियों के शोषण पर आश्रित हो वह अधिक

*Fisher: A History of Europe, p 49.

दिनों तक शक्तिशाली नहीं बना रह सकता। जैसा हम देख चुके हैं, यूनानी लोग फिलिप और सिकन्दर से परास्त होकर अपनी स्वतंत्रता खो बैठे और यूनान मेसिडोनिया के साम्राज्य का भाग बन गया। फिरभी एक दृष्टि से हम यह नहीं कह सकते कि यूनानी पराधीन हो गये क्योंकि मोसिडोनियावालों में यूनानी राज्य था और इस तरह एक तरह से यूनान पर यूनानी राज्यवंश का ही राजा रहा। इसके पहले भी बहुत दिनों तक अनेक यूनानी राज्य पहले एथेन्स, फिर स्पार्टा और बाद मे थीबीज के अधिपत्य में रह चुके थे जो विशुद्ध यूनानी राज्य थे। अब वे मेसिडोनिया राज्य के वशवर्ती थे। समस्त यूनानी राज्य मेसिडोनिया के अधिपत्य में थे परन्तु विभिन्न राज्यों का पृथक् अस्तित्व और उनका आन्तरिक स्वातन्त्र्य अब भी बना रहा। किन्तु इतनी स्वतंत्रता भी अधिक दिनों तक न रही। सिकन्दर की मृत्यु के उपरान्त उसके सारे सम्राज्य को उसके सेनानायकों ने आपस में बॉट लिया। एक सेनानायक मेसिडोनिया के सिंहासन पर ही आसीन होगया। इस अव्यवस्था में यूनानी लोगों ने अपनी खोई हुई स्वतत्रता प्राप्त करने की फिर से कोशिश की परन्तु उन्हें सफलता न मिल सकी। इसी बीच में पश्चिम की ओर रोम के राज्य ने बड़ी उन्नति करली थी और वह चारों ओर अपना विस्तार कर रहा था। उसने यूनान में हस्तक्षेप करना शुरू किया और १४६ ई० पू० तक उसे अपने साम्राज्य मे शामिल कर लिया।

(आ) रोमन सभ्यता

रोमन लोगों ने ग्रीस की स्वतन्त्रता तो छीन ली परन्तु उन्होंने ग्रीस की उत्कृष्ट सभ्यता को वहीं मुरझाकर नष्ट होने से बचा लिया। रोमनों में दूसरों की अच्छी बातों को ग्रहण कर उन्हें आत्मसात् कर लेने का बड़ा भारी गुण था। रोमन लोग भी उसी आर्य जाति की एक शाखा थे जिससे यूनानी लोग निकले थे। यह शाखा लेटिन कहलाती थी। किसी समय ये दोनों लोग साथ साथ भी रहे थे जिसके फल-स्वरूप रोमवालों का धर्म और उनकी प्रारम्भिक राजनीतिक सस्थाएँ यूनानियो जैसी ही थी। रोम भी आरम्भ में ग्रीस के नगर-राज्यों की तरह एक नगर-राज्य था। रोम इटली के पश्चिमी तट के मध्य में टाइबर नदी के मुख से कुछ दूर भीतर की ओर बसा हुआ है। इसकी स्थापना ७५३ ई० पू० मे हुई थी। इसे आरम्भ से ही अपने पड़ौसी आर्येतर जातियो के राज्यों से युद्ध करना पड़ा। धीरे,धीरे यह राज्य उन्नति करता रहा और ईसा से पूर्व छठी शताब्दी में इटली का प्रमुख नगर-राज्य बन गया।

रोम का नगर-राज्य—

ग्रीस के नगर-राज्यों के समान रोम मे भी आरम्भ में राजाओं का

शासन रहा परन्तु ५०० ई० पू० के लगभग एकतंत्र के स्थान पर गणतंत्र (Republic) की स्थापना हुई। रोम के राज्य के निवासी दो श्रेणियों में विभक्त थे—पेट्रिशियन (कुलीन) तथा प्लेबियन (जनसाधारण)। जिस प्रकार ग्रीस में राजनीतिक सत्ता यूनानियों के हाथो मे थी उसी प्रकार रोम में भी आरम्भ मे सत्ता कुलीनवर्ग के हाथो मे थी। राज्य का दैनिक शासन कुलीनों द्वारा प्रतिवर्ष निर्वाचित दो मैजिस्ट्रेटों के हाथों में था जो कॉन्सल (Consul) कहलाते थे। उनको सहायता के लिये दो सभाएँ होती थी। एक सभा एसेम्वली कहलाती थी जिसका निर्वाचन जनसाधारण द्वारा होता था। दूसरी सभा—सीनेट—कुलीनों की होती थी और उसके अधिकार एसेम्वली के अधिकारों से बहुत विस्तृत थे। जब कभी युद्ध होता था या कोई राष्ट्रीय सकट उपस्थित होता था तो रोम निवासी ६ महीने के लिये डिक्टेटर (Dictator) को नियुक्त कर और उसे अनियन्त्रित सत्ता देकर शासन का सम्पूर्ण भार उसे सौंप देते थे। सकट टल जाने पर वह अपने पद से हट जाता था और उसे अपने शासनकाल में किये हुए अपने कामों के वास्ते उत्तर देना पड़ता था।

इस शासन व्यवस्था में जनसाधारण को कोई भाग प्राप्त नहीं था। अतः उनमे बड़ा असन्तोष था और उन्होंने कुछ समय बाद अपने अधिकारों के लिये संघर्ष छेड़ दिया। यह सघर्ष वर्षों तक चलता रहा। अन्तमें जनसाधारण की विजय हुई और उन्हें धीरे धीरे शासन के अनेक अधिकार प्राप्त होगये। उन्हें शासन मे ऊँचे और प्रतिष्ठित पद मिलने लगे, यहाँ तक कि राज्य के दो कॉन्सलों मे एक जन-साधारण वर्ग का होने लगा। सीनेट में भी उन्हें स्थान मिला और उनके साथ होने वाले अन्य भेदभाव भी मिट गये।

विस्तार—

इस पारस्परिक मतभेद के मिट जाने पर रोमवासियों में एकताजन्य नवीन शक्ति का सचार हुआ और रोम ने अपनी विजय पताका चारों दिशाओं मे फहराने पर कमर बाँधी। यह विजय और साम्राज्य-विस्तार चार चरणों में सम्पन्न हुआ। प्रथम चरण में उत्तरी इटली के लोम्वार्डी के मैदान के दक्षिण में स्थित समस्त इटली पर २७० ई० पू० तक रोम का अधिकार होगया। द्वितीय चरण में रोम को लोम्वार्डी के मैदान मे रहने वाले गॉलों (Gauls) तथा उत्तरी अफ्रिका के शक्तिशाली राज्य कार्थेज (Carthage) से युद्ध करना पड़ा। कार्थेज से कोई १०० वर्ष तक युद्ध चलता रहा (२६४-२४६ ई० पू०)। कार्थेज का सेनापति हेनिवाल अद्वितीय वीर था। एक बार तो वह अपनी विशाल सेना को स्पेन में होकर योरोप ले आया और आल्प्स की वर्फ

से ढकी ऊँची पर्वत-श्रेणियों को पारकर इटली में घुस आया और रोम तक पहुँच गया। कार्थेज के साथ जो युद्ध हुए वे प्यूनिक् (Punic) युद्ध कहलाते हैं। तीन लम्बे युद्धों में कार्थेज परास्त हो सका। अन्तिम युद्ध मे तो रोमवालों ने कार्थेज के नगर का विध्वंस कर उस जगह हल चलवा दिया। कार्थेज की विजय से उत्तरी अफ्रिका रोम-राज्य का एक प्रान्त बन गया और स्पेन तथा भूमध्य सागर के पश्चिमी भाग के द्वीप रोम के राज्य मे शामिल होगये। इसी चरण में रोमवालों ने आल्प्स पर्वत के दक्षिण में लोम्बार्डी के मैदान मे रहने वाले गॉल लोगों को परास्त करके उनका प्रदेश भी रोम के राज्य मे सम्मिलित कर लिया। तीसरे चरण में भूमध्यसागर के पूर्वार्द्ध की बारी आई। इस चरण में उसने ग्रीस विजय कर लिया और अफ्रिका तथा पश्चिमी एशिया के तटवर्ती वे भाग जो सिकन्दर के साम्राज्य मे शामिल थे रोम के राज्य में शामिल होगये। लघु एशिया, सीरिया तथा इजिप्ट इस प्रकार रोम-राज्य के भाग बन गये और समस्त भूमध्यसागर एक विशाल रोमन झील बन गया। राज्य-विस्तार का अन्तिम चरण रोमन गणतत्र का भी अन्तिम चरण था। इस चरण में रोम के प्रतिभाशाली कॉन्सल जूलियस सीज़र ने आल्प्स के दूसरी ओर के गॉल प्रान्त (Trans-Alpine Gaul) को जिसकी सीमा आधुनिक फ्रान्स की सीमा से मिलती जुलती थी, विजय किया और ब्रिटेन पर दो आक्रमण किये। वह ब्रिटेन विजय न कर सका परन्तु वह मार्ग दर्शन कर गया था और उसकी मृत्यु (४४ ई० पू०) के बाद सम्राट् क्लॉडियस ने इगलैण्ड भी विजय कर लिया। इस प्रकार ईसा के जन्मकाल तक रोम की पताका उत्तर में ब्रिटेन तथा गॉल से दक्षिण में अफ्रिका के उत्तरी प्रदेशो तथा इजिप्ट तक और पूर्व में लघु एशिया तथा सीरिया से लेकर पश्चिम में स्पेन तक फैले हुए विशाल भूभाग पर फहरा रही थी। इस प्रकार ईसा के जन्म से पहले रोम का एक विशाल साम्राज्य स्थापित हो चुका था, यद्यपि नाम के लिये वह साम्राज्य नहीं, गणतंत्र राज्य, था।

रोमवालों में व्यवस्थित ढंग से काम करने का स्वाभाविक गुण था। वे नये-नये प्रदेश विजय करते थे और साथ ही उनकी शासन व्यवस्था भी करते जाते थे। इस प्रकार यह सारा साम्राज्य सुसगठित एवं सुव्यवस्थित था। उसका केन्द्र रोम था और स्थान-स्थान पर रोमनों के उपनिवेश थे जो वास्तव मे रोमन सैनिकों के शिविर थे। इन शिविरों तक अच्छी सड़के बनी हुई थीं जिनके द्वारा साम्राज्य के विभिन्न भागों में यातायात सुगम था और सेनाएँ द्रुतगति से साम्राज्य के प्रत्येक भाग में भेजी जा सकती थीं। आरंभ में तो रोम

की सेनाएँ रोमन नागरिकों की सेनाएँ थीं परन्तु बाद में साम्राज्य के विभिन्न भागों के वेतन-भोगी सैनिक भी उनमें भरती कर लिये गये थे। ये सेनाएँ कॉन्सलों के अधिकार में होती थीं और उनका शिक्षण तथा अनुशासन बड़ा कड़ा होता था। सैनिक सेवा रोमन नागरिकों को भाररूप प्रतीत होती थी परन्तु अपने गणतंत्र के लिये वे इस भार को सहन करते थे। उन्हें अपने गणतत्र की सेवा से सन्तोष था और यह भी सन्तोष था कि यदि वे भिन्न-भिन्न लोगों की स्वतत्रता का अपहरण कर रहे थे तो उसके साथ ही उन्हें क़ानून और व्यवस्था की अनुपम देन भी दे रहे थे। इनके साथ ही वे रोमन जीवन के आदर्श और रोमन सभ्यता का भी प्रसार कर रहे थे। रोमन शिविरों का जीवन रोम के जीवन के समान ही होता था। इस प्रकार रोमन उपनिवेश विजित प्रदेश में साम्राज्य की रक्षा के साधन ही नहीं थे, वे समस्त साम्राज्य के राजनीतिक तथा सांस्कृतिक एकीकरण के भी अच्छे साधन थे। सारे साम्राज्य मे लेटिन (रोम की) भाषा का प्रयोग होता था, केवल दक्षिण-पूर्व के यूनानी प्रदेशो में ही ग्रीक भाषा का प्रयोग होता रहा। लेटिन सेना की भाषा थी, शासन का काम भी उसी में होता था और वह पाठशालाओं में भी पढाई जाती थी। वही रोमन कानून की भी भाषा थी। कानून रोमन सभ्यता का मूल था। इतने विशाल साम्राज्य का एकीकरण कानून के विना असंभव था। समस्त साम्राज्य में रोमन कानून का पालन होता था।

गणतंत्र की निर्वलता—

गणतंत्रीय शासन के अन्तर्गत रोम ने इतने विशाल, साम्राज्य का निर्माण तो कर लिया परन्तु उसको सम्हालने का भार गणतंत्रीय विधान सहन न कर सका। इन महान् विजयों के फल-स्वरूप रोम को अपार सम्पत्ति प्राप्त हुई। यूनानियों के सम्पर्क से उन्हें नवीन विचार प्राप्त हुए। दिग्विजय करने वाले सेनापतियों की शक्ति बढी और उन्हें सन्तुष्ट करना आवश्यक हो गया। इन सब बातों के फल-स्वरूप पुरानी रोमन व्यवस्था में आन्तरिक उथल-पुथल अवश्यंभावी हो गई। रोम में सर्वाधिक शक्तिशाली सस्था सीनेट थी परन्तु वह इस अधिकाधिक जटिल होती हुई समस्या का सामना न कर सकी। उसे प्रायः डिक्टेटर नियुक्त करना पड़ा जिसमें मेरियस (Marius), सल्ला (Sulla) तथा पॉम्पी (Pompey) जैसे प्रतिभाशाली सेनानायक थे। इससे गणतत्रीय व्यवस्था की दुर्वलता स्पष्ट प्रकट होती थी। ऐसे निर्वल गणतंत्र के अन्त होने में केवल ऐसे साहसी नेता के उठ खड़े होने की देर थी जो कुशल

सेनानायक होने के साथ-साथ राजनीतिक प्रतिभा-सम्पन्न भी होता। ऐसा व्यक्ति जूलियस सीज़र था।

सीजर उस परिस्थिति की आवश्यकता को बहुत अच्छी तरह समझता था और उस आवश्यकता की पूर्ति करने की योग्यता भी उसमें थी। वह गॉल का विजेता सेनापति था। वह ४८ ई० पू० में रोम का डिक्टेटर बन बैठा। ४५ ई० पू० में सीनेट ने उसे जीवन भर के लिये कॉन्सल बना दिया परन्तु उसके अनेक शत्रु थे जो उसके उत्कर्ष को सहन न कर सकते थे। उनमे कई गणतंत्र के भी प्रेमी थ। उन लोगों ने अगले ही वर्ष (४४ ई० पू०) उसकी हत्या करदी। सीज़र का अन्त तो होगया परन्तु उसके पहले ही वह अपना सुधार कर चुका था और साम्राज्य-शासन की नींव डाल चुका था।

साम्राज्य की स्थापना—

सीज़र की मृत्यु का प्रतिशोध उसके भतीजे ऑक्टेवियन (Octavian) ने अपने चाचाके हत्यारों को कुचल कर लिया और वह अपने प्रतिद्वन्द्वियों को हटाकर साम्राज्य का सर्वेसर्वा बन गया। २७ ई० पू० में सीनेट ने उसे ऑगस्टस (Augustus) की पदवी से विभूषित किया और इस प्रकार साम्राज्य की विधिवत् स्थापना हुई। ऑक्टेवियन इस महान् परिवर्तन को गणतत्रीय आवरण से ढाके रहा। उसने विधान का गणतंत्रीय रूप बना रहने दिया परन्तु वास्तविक शक्ति का वह एकमात्र स्वामी था। सीनेट जो गणतत्र की सबसे शक्तिशाली संस्था थी, उसके आदेशों को स्वीकार करने वाली संस्था मात्र रह गई। विधान के अनुसार उसे केवल कॉन्सल के अधिकार प्राप्त थे, किन्तु वह सेनानायक (Imperator) भी था जिस हैसियत से उसके हाथों में सैनिक सत्ता भी थी। इसके अतिरिक्त उसे ट्रिब्यून (Tribune) पद की लोक-प्रदत्त सत्ता भी प्राप्त थी। इस प्रकार विधान के अनुसार उसके अधिकार जनता की ओर से दिये हुए थे जो कभी भी छीने जा सकते थे परन्तु वास्तव मे इस बात में कोई सार नहीं था और उसकी शक्ति अनियंत्रित थी।

इस प्रकार रोम के विशाल सामाज्य का आरभ हुआ। ऑगस्टस प्रथम सम्राट् था। उसने १४ ई० तक शासन किया उसके बाद अच्छे बुरे, योग्य-अयोग्य अनेक सम्राट् हुए परन्तु इस विशाल साम्राज्य की शक्ति दो शताब्दियों से अधिक न टिक सकी। सम्राटों की शक्ति का मुख्य आधार उनकी सेना था। सारा साम्राज्य सेना के बल पर ही खड़ा किया गया था। साम्राज्य में सेना का प्रभाव बहुत बढ़ गया था। सेना के विभिन्न सेनानायकों के हौसले भी बढ़े हुए थे। वे जिसे चाहते थे सम्राट् बना दिया करते थे। सेनानायक स्वयं भी राजसिंहासन

पर अधिकार करने के लिये आपस में झगड़ते रहते थे। कभी कभी एक ही समय कई सम्राट् होते थे अर्थात् सेना साम्राज्य के विभिन्न भागों में अपने अपने सेनानायकों को सम्राट् घोषित कर देती थी और ऐसे सम्राट् साम्राज्य के विभिन्न भागों में राज्य करते थे। तीसरी शताब्दी (१६२—२८४) में सेना का इस प्रकार का उत्पात बहुत बढ़ गया था।*

साम्राज्य पर संकट—

इधर तो साम्राज्य के अन्दर ही इस प्रकार के उत्पात हो रहे थे, उधर साम्राज्य को बाहरी शत्रुओं का मुकाबला करना पड़ा। वैसे तो साम्राज्य को अनेक युद्ध करने पड़े थे, वह स्वयं अनेक सफल युद्धों का ही परिणाम था, परन्तु अब उसे विजय के लिये नहीं, किन्तु आत्मरक्षा के लिये युद्ध करना पड़ा। पूर्व की ओर उसका पार्थियनों और बाद में फारस के लोगों के साथ वर्षों तक संघर्ष चलता रहा किन्तु इन युद्धों से साम्राज्य की शक्ति को कोई विशेष क्षति नहीं पहुँची। परन्तु पश्चिम की ओर जो युद्ध साम्राज्य को करने पड़े, उनके परिणाम उसके लिए बड़े भयकर निकले। उनमे साम्राज्य को उत्तर की ओर से आने वाली बर्बर जाति का मुकाबला करना पड़ा। इन जातियों का साम्राज्य पर आक्रमण योरोपीय इतिहास में बड़ा महत्वपूर्ण है। उससे योरोप में महान परिवर्तन हुए और आज हम जो राज्य-व्यवस्था वहाँ देखते हैं उसके विकास का सूत्रपात हुआ।

ट्यूटन लोगों के आक्रमण—

राइन-डेन्यूब नदियों की सीमा के पार कुछ जातियाँ रहती थीं जो जर्मन या ट्यूटॉनिक कहलाती थीं। वे आर्य जाति की शाखाएँ थीं। उनका असली घर स्केण्डीनेविया में था जहाँ से वे धीरे-धीरे दक्षिण की ओर बढ़ रही थीं और राइन-डेन्यूब रेखा के पार आ बसी थीं। सम्राट् ऑगस्टस ने उनको विजय करने का प्रयत्न किया था परन्तु उसकी सेनाओं की बुरी तरह से पराजय हुई और उसका उद्देश्य सफल नहीं हो सका। इसके बाद रोमन सम्राटों का काम उन जातियों को अपनी सीमा के पार रोके रखना ही रहा और इसमें कुछ समय तक उन्हें सफलता भी मिली।

आधुनिक राष्ट्रों का जन्म—

योरोप के आधुनिक राष्ट्रों में से अधिकाँश इन ट्यूटन लोगों से ही उत्पन्न हुए हैं। इनके प्रस्थान के बाद जो लोग स्केण्डीनेविया में बने रहे

*E. A. Freeman General Sketch of European History, pp. 87 ff.

उनकी संतान आगे चल कर स्वीड (Swedes), नॉर्वेजियन (Norwegian) तथा डेन (Danes) कहलाई। जो ट्यूटन जन-समूह भ्रमण करता रहा वह मोटी तौर से दो भागों में विभक्त था—पश्चिमी जर्मन तथा पूर्वी जर्मन। पश्चिमी जर्मन लोग पश्चिम की ओर बढ़कर राइन नदी की सीमा तक आगये। इनमें से कुछ तो डेनमार्क के दक्षिण में बस गये और कुछ उनके भी दक्षिण में राइन नदी के मध्य के निकट जा बसे। डेनमार्क के दक्षिण में बसने वाले लोगों की मुख्य उपशाखाएँ ऍंग्ल (Angles) और सेक्सन (Saxons) थी जिनके सम्मिश्रण से प्रख्यात ऍंग्ल-सेक्सन जाति बनी। राइन नदी के मध्य के निकट बसने वाली उपशाखा फ़्रेंक (Frank) कहलाती थी। इन उपशाखाओं ने योरोपीय इतिहास मे बड़ा महत्वपूर्ण भाग लिया है। माध्यमिक काल मे इंगलैंड तथा फ़्रान्स के राज्यों की नीव डालने वाले लोग यही थे। पूर्वी जर्मन लोग गोथ (Goths) भी कहलाते थे। ये लोग डेन्यूब नदी के किनारे जा पहुँचे और दो भागों में विभक्त हो गए। पश्चिमी गोथ या विज़िगोथ (Visigoths) और पूर्वीगोथ (Ostrogoths)। इन मुख्य शाखाओ के अतिरिक्त इन लोगों की और भी कई छोटी-बड़ी उपशाखाएँ थी जैसे लोम्बार्ड (Lombards), वेण्डाल (Vandals), बर्गण्डियन (Burgundians), एलिमेनी (Alemanni) आदि जिनके पीछे पश्चिमी और मध्य योरोप के विभिन्न प्रदेशों के नाम पड़े।

इन लोगों के अलग अलग स्वतन्त्र क़बीले थे जिनका एक नेता होता था जिसकी सहायता के लिये एक कुलीनों की सभा तथा एक स्वतन्त्र जनता की सभा होती थी। ईसा के बाद की द्वितीय शताब्दी से आगे रोमन साम्राज्य की जनसख्या घटने लगी और उसकी सैनिक शक्ति भी क्षीण होने लगी। इस कारण रोमन सम्राट् इन लोगों को अपने साम्राज्य मे बसा कर उनसे भूमि जोतने की तथा वैतनिक सैनिक सेवा लेने लगे। इसका परिणाम साम्राज्य के लिये हानिकर हुआ। अब सीमा के दोनों ओर ये लोग बसे हुए थे और इस प्रकार साम्राज्य की सीमाएँ अस्पष्ट होगई। इन लोगों ने रोमनों के युद्ध के ढग भी सीख लिये। इसके अतिरिक्त इनमे से बहुत से साम्राज्य की सेवाओं में बहुत ऊँचे पदों पर पहुच गये यहाँ तक कि चौथी तथा पाँचवी शताब्दियों में सेना की कमान अधिकांश इन्ही लोगों के हाथों में थीं।

चौथी शताब्दी के मध्य में पूर्व की ओर से आने वाले हूणों का इन लोगों पर आक्रमण हुआ। हूणों का दबाव सर्वप्रथम गोथ लोगों पर पड़ा। ऑस्ट्रोगोथ लोगों को तो उन्होंने दबाकर अपने अधीन कर लिया परन्तु विजिगोथ लोगों

ने सम्राट् से अनुमति प्राप्त करके डेन्यूब नदी को पार कर साम्राज्य में बस कर अपनी रक्षा की (३७६)। किन्तु इनका आना साम्राज्य के लिये बड़ा अनिष्टकारी रहा। ये लोग थ्रेस नामक प्रान्त बस गये, किन्तु इन्होंने शीघ्र ही विद्रोह कर दिया। रोमन सेना हारी और सम्राट् वेलेन्स स्वयं मारा गया। अपने नेता एलेरिक के नेतृत्व में वे ग्रीस में घुस गये और अन्त में इटली पर आक्रमण करके ४१० ई० में रोम लूट लिया। सम्राट् को इनसे सन्धि करनी पड़ी और ये लोग सम्राट् की नौकरी में भरती होगये।

साम्राज्य का विभाजन—

ट्यूटन लोगों का वर्णन करते करते हम बहुत आगे बढ आये हैं। जिन दिनों यह उथल-पुथल हो रही थी उन्हीं दिनों रोमन साम्राज्य के संगठन में भी बड़ा परिवर्तन हो गया था। आप देख चुके हैं कि २७ ई० पू० तक रोम राज्य गणतंत्रीय था। उस वर्ष ऑगस्टस सम्राट् बना और गणतन्त्र साम्राज्य में परिवर्तित होगया यद्यपि गणतंत्रीय संस्थाएँ कायम रही आईं। २८४ में डायोक्लीटियन (Diocletian) सम्राट् हुआ। वह बड़ा योग्य था। उसने एक नई व्यवस्था कायम की। अब दो रोमन सम्राट् होने लगे जो सहयोगियों की तरह काम करते थे। इनकी उपाधि ऑगस्टस थी। इनके नीचे दो सीज़र होते थे। सारा रोमन साम्राज्य चार भागों में बँट गया और एक एक भाग का शासन इन चारों को दिया गया।† स्वयं डायोक्लीटियन पूर्वी भाग में शासन करता था और उसकी राजधानी निकोनीडिया थी। उसका सहयोगी मेक्सीमिलन इटली में मिलान में शासन करता था। दोनों सीजरों में से एक गॉल या ब्रिटेन में रहता था और दूसरा एशिया में। अब रोम की वह प्रतिष्ठा नहीं रही। साम्राज्य के अन्य नगर भी समय समय पर राजधानी बनने लगे। परन्तु यह व्यवस्था अधिक दिनों तक न चली। ३२३ ई० में कॉन्स्टेन्टाइन, जो ब्रिटेन और गॉल में सीज़र रह चुका था, समस्त साम्राज्य का एकमात्र सम्राट् बन गया और अपनी मृत्यु पर्यन्त (३३७) बना रहा। उसने डायोक्लीटियन की व्यवस्था को नष्ट तो कर दिया था परन्तु इतने बड़े साम्राज्य की व्यवस्था एक स्थान से होना कठिन था। इसलिये उसने साम्राज्य के लिये पूर्व में बॉस्फोरस जलसयोजक पर स्थित ग्रीक नगर बाईज़ेन्टियम को 'नवीन रोम' का नाम देकर एक राजधानी और स्थापित की। यह नगर उसके नाम पर कॉस्टेन्टीनोपल कहलाने लगा। सम्राट् यहीं रहने लगा पर एक सम्राट् रोम में भी बना रहा। इस प्रकार एक ही साम्राज्य में दो सम्राट् होने लगे परन्तु ये दोनों सहयोगी

† Hayes and Baldwin : A History of Europe, Vol. I, p 71.
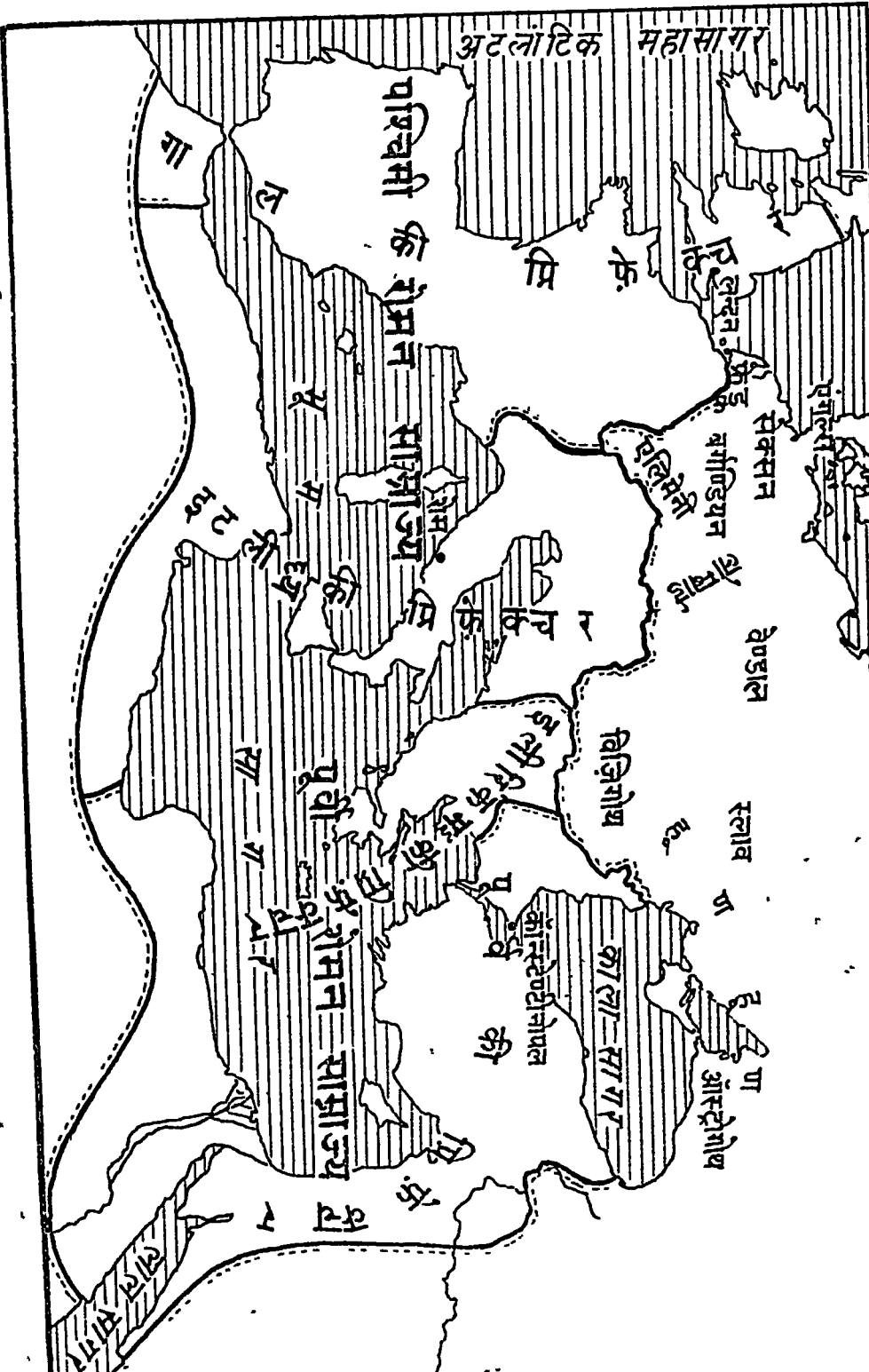
Dwarket Kanwar Narendra Singh Sarda.
Nanik Bhawan
Gruman-pura Kota
Rajasthan

R

Dwarket Kanwar

From —
Dwarket Narendra Singh 'Sarda'
Nanik Bhawan
Gruman-pura
Kota
(Rajasthan)

थे, परस्पर स्वतन्त्र नहीं। कॉन्स्टेन्टाइन ने ईसाई धर्म को भी स्वीकार कर लिया (इसके विषय में आप आगे पढ़ेंगे) और उसे साम्राज्य का धर्म बना दिया। इस व्यवस्था में भी समय समय पर परिवर्तन होते रहे।

इन दिनों ट्यूटॉनिक लोगों की हलचल बढ गई थी। हम ऊपर आपको गोथ लोगों के उत्पातों का हाल बतला चुके हैं। आप एलेरिक द्वारा रोम की लूट का हाल पढ चुके हैं। यह समय बडी उथल-पुथल का था। जर्मन जाति की अनेक शाखाएँ पश्चिमी साम्राज्य मे फैलती जारही थी। वे रोमन सेनाओं से लड़तीं, आपस मे लड़ती और जहाँ उन्हें मौका मिलता बस कर अपना शासन स्थापित कर लेती थीं। इस प्रकार पश्चिमी योरोप में नये नये ट्यूटॉनिक राज्य स्थापित हो रहे थे।

हूणों का आक्रमण और पश्चिमी रोमन साम्राज्य का अन्त—

इस समय रोमनों तथा ट्यूटनों दोनों को हूणों के आक्रमण का सामना करना पड़ा। उनका सरदार एटिला (Attila) था जो मध्य एशिया की ओर से इधर विजय करता हुआ बढा चला आ रहा था। आपको स्मरण होगा कि इन्ही दिनों भारतवर्ष पर भी हूणों के आक्रमण हो रहे थे। उसने राइन नदी को पार कर इधर-उधर खूब लूट मार मचाई परन्तु अन्त में रोमनों, गोथ और फ्रैंक्स लोगों की सम्मिलित सेनाओं ने उसे शालोन्स (Chalons) के युद्ध में परास्त कर दिया। एटिला परास्त होगया परन्तु इससे पश्चिमी रोनन साम्राज्य की जड़ हिल गई। उसकी शक्ति बिलकुल क्षीण होगई और रोम में कोई सम्राट् ऐसा नहीं हुआ जो ऐसी स्थिति में व्यवस्था स्थापित करके साम्राज्य का उद्धार कर सकता। साम्राज्य के विभिन्न प्रान्त लोम्बार्डी, फ्रान्स, स्पेन, ब्रिटेन आदि स्वतन्त्र होगये और वहाँ नये ट्यूटन राज्य स्थापित होगये। रोम के सम्राट् इस समय शक्तिहीन कठपुतली मात्र रह गये थे और वास्तविक शक्ति ट्यूटन सरदारों के हाथों में थी। उन्होंने एक बारह वर्ष के बालक रोम्यूलस को सम्राट् बना रखा था। एक वेण्डाल सरदार ओडोएकर (Odoacer) ने रोम्यूलस के समर्थकों को हराकर उसे सिंहासन से उतार दिया (४७६ ई०) और रोम का शासन स्वय अपने हाथों में ले लिया। उसके आदेश से सीनेट ने पूर्वी सम्राट् जीनो (Zeno) से एक ही साम्राज्य के लिये दो सम्राट् अनावश्यक बतलाकर पश्चिमी सम्राट् के पद को तोड़ देने की प्रार्थना की। इसके साथ ही उसने इटली के शासन के लिये ओडोएकर को नियुक्त करने की प्रार्थना भी की। जीनो ने दोनो प्रार्थनाएँ स्वीकार कर लीं और पश्चिमी

रोमन साम्राज्य का अन्त हो गया। साम्राज्य का अन्त तो होगया परन्तु शताब्दियों तक उसका अस्तित्व एक स्मृति तथा एक स्वप्न अथवा आदर्श के रूप में बना रहा। पूर्वी रोमन साम्राज्य इसके बाद भी लगभग १००० वर्ष तक क़ायम रहा।

साम्राज्य के पतन के कारण—

इस प्रकार रोमन साम्राज्य का अन्त होगया। साम्राज्य का पतन, जैसा आप ऊपर देख चुके हैं, एक दम नहीं हुआ वरन् उसका सिलसिला कोई दो शताब्दियों तक चलता रहा। अपने गौरव तथा समृद्धि के काल में भी साम्राज्य में कई ऐसी बातें विद्यमान् थीं जो उसको निर्बल बना रही थी—(१) एक व्यक्ति का शासन, (२) दासता तथा कृषक-दासता (Serfdom) के ऊपर आधारित आर्थिक व्यवस्था, (३) धार्मिक विश्वास की निर्बलता तथा (४) ऐसी सेना जिसमें बर्बर जातियों तथा अ-रोमन जातियों के सैनिकों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती ही जारही थी।†

'रोम बहुत बढ़ गया था और उसका साम्राज्य इतना विशाल होगया था कि उसमें एकता असम्भव होगई थी। जनता में अपने साम्राज्य के प्रति भक्ति तथा अभिमान की भावना नहीं रहीं थी। भ्रष्टाचार तथा पक्षपातयुक्त शासन से यह भावना और भी नष्ट होती जारही थी। साम्राज्य की आर्थिक व्यवस्था पर शासन का पूर्ण नियन्त्रण था जिससे वह निर्बल होगई थी। जनता के पालन के लिये एक अपेक्षाकृत छोटे से समुदाय पर करों का अत्यधिक बोझ लाद दिया गया था। आर्थिक क्रियायें शिथिल होगई थीं, व्यक्तिगत चेष्टाएँ नष्ट होगई थी और जनता भाग्यवादी होगई थी। धनियों में उदासीनता व्याप्त होगई थी और गरीबों में असंतोष घर कर चुका था जिसके कारण साम्राज्य की सुरक्षा की जड़ निर्बल हो चुकी थी। इन आन्तरिक निर्बलताओं के कारण साम्राज्य पर बर्बर जातियों का आक्रमण सम्भव हो सका और उसके धक्के से लड़खड़ाता हुआ साम्राज्य धराशायी होगया।

रोम की देन—

'रोम का पतन तो होगया परन्तु केवल इसी अर्थ मे कि उसका राजनीतिक प्राधान्य जाता रहा। किन्तु उसकी सास्कृतिक दोनों का अधिकांश बना रहा। वे अन्य विचारों के साथ मिलकर नई सभ्यताओ के आधार बन गई। लेटिन भाषा, रोम के राजनीतिक आदर्श, कानून, सैनिक संगठन और

† Hayes, Moon and Wayland . World History, p. 188.

निर्माण कला भावी पीढियों के लिये रोम की बहुमूल्य देने हैं। रोमनों ने एक विश्व-राज्य की मिसाल ससार के सामने रखी जिससे विश्वविजय के इच्छुक साहसी व्यक्तियों को अब भी प्रेरणा प्राप्त होती है। राजनीतिक क्षेत्र में राज्य का निरपेक्ष प्राधान्य प्रतिष्ठित होगया, कानूनी सिद्धान्त तथा व्यवहार मे व्यक्ति के वैधानिक अधिकारों को अवैधानिक आक्रमणों से मुक्ति प्राप्त होगई। कम से कम सिद्धान्त के क्षेत्र मे रोमन कानून ने राज्य पर जनता की अनुमति का नियन्त्रण लगा दिया।

'रोम का पतन एक दुर्घटना थी, यह कहना उचित नहीं होगा। अपने संगठन के अन्तर्गत जितना कार्य उससे वन सका उतना कार्य वह कर गया। बौद्धिक चेष्टाओं में पुनः प्राण डालने के लिये नये रक्त तथा नये आदर्शवाद की आवश्यकता थी। वर्वर आक्रमण देखने में तो नाशकारी दिखाई देते थे परन्तु उन्नति के लिये जो स्फुरणशक्ति आवश्यक थी और जिसे रोमन लोग खो चुके थे,उसे जर्मन लोगों ने प्रदान की। रोमन लोग सभ्यता एवं सस्कृति के स्रष्टा नही थे परन्तु उन्होंने व्यवस्था एवं एकता स्थापित की जिसके द्वारा प्राचीन सभ्यताओं के परिपाक से इटली की ओजस्वी साम्राज्यवादी सभ्यता का प्रादुर्भाव हो सका। जिस रोमन सभ्यता ने विश्व-सस्कृति के विकास में एक महत्वपूर्ण भाग लिया था वह मध्य युग की राजनीति, उसके कानून, धर्म तथा आर्थिक जीवन की आधारभूत व्यावहारिक बातों में समाविष्ट हो गई।' *

रोम ने भूमध्यसागरीय ससार को एकता के सूत्र में बांधा और इसी कारण योरोप को भी एकता के सूत्र में बांधने का साधन बन गया। सारूप में रोमन साम्राज्य आधुनिक ससार का बीज था और आज योरोप और पश्चिमी ससार रोम के ही अभिवर्धित रूप हैं। क्योंकि साम्राज्य का विघटन करने के कार्य में वर्वर लोगों ने, जो वहीं बस गये थे, विजित रोमनों के आदर्शों एव भावनाओं को ग्रहण कर लिया और इस प्रकार वे स्वय यूनानी-रोमन सभ्यता के रग में रंग गये। योरोप की आधुनिक राज्य-व्यवस्था इसी आधार पर स्थापित हुई। †

(ई) ईसाई धर्म और ईसाई चर्च

जहाँ रोम ने समस्त भूमध्यसागरीय संसार को एकता के सूत्र में बाँधा, संसार को कानून और व्यवस्था के आदर्श दिये, और साम्राज्य-शासन की पद्धति की शिक्षा दी तथा यूनानी सभ्यता का सर्वत्र प्रसार किया वहा रोम ने ईसाई चर्च को सार्वभौम बनाने में भी बड़ा महत्वपूर्ण काम किया। रोम ने ईसाई धर्म

*Swain . A History of World Civilization, p. 196

† Strong : Dynamic Europe, p 70-71.

को साम्राज्य का धर्म केवल आध्यात्मिक उद्देश्य से ही नहीं स्वीकार किया था, उसमें राजनीतिक उद्देश्य भी सम्मिलित था, किन्तु यह कहना अनुचित नहीं होगा कि यूनानी सभ्यता के समान ईसाई धर्म भी समस्त योरोप मे नहीं फैलता यदि रोम ने योरोप के अधिकांश को राजनीतिक एकता में न बांध दिया होता। *

रोमन साम्राज्य के अन्त के बहुत पहले से ही साम्राज्य में ईसाई धर्म का काफी प्रचार हो चुका था और बर्बर जातियो में भी उस धर्म का काफी प्रचार था। जिन दिनों समस्त साम्राज्य बर्बर आक्रमणों से त्रस्त था, चारो ओर अराजकता, युद्ध तथा लूट-मार फैली हुई थी और साम्राज्य जनता की रक्षा करने मे असमर्थ था उन दिनों समस्त साम्राज्य मे यदि कोई सस्था ऐसी थी जो त्रस्त जनता को आश्वासन दे सकती, आपत्तिकाल में उनका साथ देकर उन्हें शान्ति का सन्देश सुनाती तो वह थी एकमात्र ईसाई चर्च।

जीसस क्राइस्ट—

ईसाई धर्म के प्रवर्तक जीसस क्राइस्ट थे जिनका जन्म प्रथम रोमन सम्राट् ऑक्टेवियस के शासनकाल में लघु एशिया के पेलेस्टाइन प्रदेश मे स्थित वेथलेहम ग्राम में एक यहूदी परिवार में हुआ था। ये यहूदी धर्म में उत्पन्न हुए और उसी में पले। यहूदी धर्म एकेश्वरवादी है और उसका मुख्य धार्मिक ग्रन्थ ओल्ड टेस्टामेण्ट (Old Testament) है। यहूदी धर्म एक राष्ट्रीय धर्म था। उस धर्म मे वे ही लोग सम्मिलित हो सकते थे जो उसके विधि-विधान तथा कड़े आचारविचार का पूर्णतया पालन कर सकते थे। जीसस क्राइस्ट ने यहूदी धर्मशास्त्र को ग्रहण कर उसके आधार पर एक नया धर्म चलाया। यहूदियों के पैगम्बरों ने भविष्यवाणी की थी कि किसी समय राजा डेविड के वश मे एक मसीहा प्रकट होगा जो समस्त मानव समाज पर राज्य करेगा, पापियों से उनके पाप का प्रायश्चित करवायगा और उन्हें संसार के अन्त के लिये तैयार करेगा। जीसस क्राइस्ट ने लोगों को बतलाया कि मैं ही वह मसीहा हूँ परन्तु लोगों ने इस बात पर विश्वास नहीं किया, उन्हें नास्तिक बतलाकर सूली पर चढा दिया गया।

जीसस क्राइस्ट ने विशुद्ध एकेश्वरवाद तथा प्रेम एवं सेवा का उपदेश दिया। उनके उपदेश का संग्रह न्यू टेस्टामेण्ट कहलाता है। ओल्ड तथा न्यू दोनों टेस्टामेण्ट मिलकर बाइविल कहलाते हैं। उन दिनों रोम के लोग अनेक देवी-देवताओं की पूजा करते थे। साम्राज्य के विभिन्न भागों में राजा को साक्षात्

* Strong · Dynamic Europe, p. 72.

देवता माना जाता था। रोमन सम्राट् भी देवता समझे जाते थे और कई सम्राट् तो स्वयं अपने आप को ईश्वर कहते थे। वह सम्राट् तो था ही, साथ ही धर्म का अधिष्ठाता भी था। जीसस क्राइस्ट का कथन था कि ईश्वर एक है और उसी एक ईश्वर की उपासना करना चाहिये। अन्य देवी-देवताओं की पूजा पाप है। रोमन साम्राज्य के अधिकारियों को जीसस के इस उपदेश में राजद्रोह के दर्शन होते थे और वे जीसस को साम्राज्य का शत्रु मानने लगे। उन पर राजद्रोह का अभियोग लगाया गया और उन्हें प्राणदण्ड दिया गया।

जीसस को तो प्राणदण्ड मिला परन्तु इससे उनके द्वारा प्रवर्तित धर्म (ईसाई धर्म) को कोई हानि नहीं पहुँची। उनके अनुयायियों की संख्या धीरे-धीरे बढने लगी वे लोग बड़े धर्मपरायण थे और अपने धर्म के प्रचार में बड़े से बड़े कष्टों को भी कुछ नही गिनते थे। साम्राज्य के कर्मचारियों ने उन्हें बड़ी बडी यातनायें दीं परन्तु उनकी परवाह न करते हुए वे अपने कार्य में लगे रहे और उनके प्रयास से ईसाई धर्म साम्राज्य में तथा बर्बर जातियों में फैलता रहा और साम्राज्य की सर्वसाधारण जनता का अधिकांश ईसाई धर्म का अनुयायी हो गया। जिन दिनों साम्राज्य पर बर्बर जातियों के आक्रमण हो रहे थे उन दिनों सम्राटों को जनसाधारण की सहानुभूति और भक्ति की आवश्यकता प्रतीत होने लगी और इस दृष्टि से सम्राट् कॉन्स्टेन्टाइन ने ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया और ईसाई धर्म रोमन साम्राज्य का राजधर्म भी बन गया। इसके अनन्तर ईसाई धर्म ने बड़ी शीघ्र उन्नति की और प्रायः समस्त योरोप ईसाई हो गया।

ईसाई चर्च की स्थापना—

ईसाई चर्च की सर्व प्रथम स्थापना जेरूसेलम मे हुई थी। जब इस धर्म का प्रचार बाहर भी होने लगा तो अन्य स्थानों में चर्च स्थापित होने लगे। एक स्थान में रहने वाले समस्त ईसाई लोग पूजा के लिये एकत्रित होते थे और इस एकत्रित ईसाई समाज का नाम ही चर्च था और सर्वसाधारण का होने के कारण ही इस धर्म का नाम 'कैथॉलिक' (Catholic) अर्थात् सब का या सबके लिये पड़ा। सभी बड़े नगरों मे एक एक चर्च होता था जिसमे एक पादरी (बिशप) होता था जो उस नगर के और पड़ौस के चर्चों की देखभाल करता था। इन बड़े नगरों के चर्चों से ही प्रचारक लोग इधर-उधर जाते थे और स्थान-स्थान पर प्रचार करते हुए चर्च की स्थापना करते थे। रोम का चर्च सभी चर्चों में प्रतिष्ठित था क्योंकि ऐसा समझा जाता था कि रोम के बिशप ईसा के शिष्यों में से मुख्य पीटर के उत्तराधिकारी थे। आरंभ में सभी बिशप पोप (पिता) कहलाते थे परन्तु आगे चलकर यह पदवी केवल रोम के बिशप

की ही रह गई और वह समस्त ईसाई चर्च का अध्यक्ष बन गया। इन विभिन्न चर्चों में रहने वाले बिशप और साधु आरंभ में बड़े धर्मप्राण शुद्धाचरण तथा लोकसेवक हुआ करते थे। वे धर्मोपदेश देते थे, शिक्षा देते थे, रोगियों की चिकित्सा करते थे, दीन-दुखियों की सहायता और सेवा करते थे और विपत्ति के समय जनता को धैर्य बधाते थे। अतः सर्वसाधारण में उनका बड़ा आदर था। बर्बर जातियों के आक्रमणों के समय में यदि जनता के कष्ट कोई दूर कर सकता था और उन्हें शान्ति का सन्देश देकर उन्हें ढाढस बंधा सकता था तो वह था ईसाई चर्च। अनेक बर्बर लोग भी ईसाई हो चुके थे और वे भी उसका आदर करते थे। इस प्रकार आक्रमण के दिनों में जहाँ साम्राज्य की प्रतिष्ठा क्षीण हो रही थी वहाँ ईसाई चर्च की प्रतिष्ठा उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही थी।

अध्याय २

मध्य-युग (The Middle Ages)

पश्चिमी रोमन साम्राज्य के अन्त के बाद के एक हजार वर्ष का समय मध्य-युग कहलाता है। इस युग के भी प्राय: दो विभाग किये जाते हैं—(१) ४७६ ई० से १००० ई० तक का अन्धकार युग (The Dark Age) और (२) १००० से १५०० तक का मध्य-युग। यह ध्यान रखना चाहिये कि किसी युग का अन्त और दूसरे युग का आरंभ किसी एक तिथि को नहीं होता, वह तो एक प्रक्रिया होती है जो धीरे-धीरे चलती रहती है। इस प्रकार का काल-विभाजन केवल सुविधा की दृष्टि से किया जाता है।

पश्चिमी योरोप में अव्यवस्था—

आप देख चुके है कि पश्चिमी रोमन साम्राज्य का अन्त बर्बर आक्रमणों के कारण हुआ। साम्राज्य के अन्त के बाद पश्चिमी योरोप में बड़ी अव्यवस्था फैल गई। उस समय कोई एक शक्ति या शक्तियाँ ऐसी नहीं थी जो इस समस्त प्रदेश मे शान्ति एवं व्यवस्था कायम कर सकती। वह समय तो ऐसा था जिसमे जिसकी लाठी उसकी भैंस वाली कहावत पूर्णतया चरितार्थ होती थी। विभिन्न जातियों के सरदार तथा साहसिक नेता परस्पर लड़ते हुए इधर-उधर फिरते रहते थे और जहाँ मौका देखते अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लेते थे। इस समय एक साम्राज्य की जगह सैंकड़ों-हजारों छोटे-बड़े राज्य कायम हो गये थे। जिसमें ज़रा भी शक्ति थी वह स्वतंत्र होकर अपना राज्य स्थापित कर लेता था। रोम-राज्य में अनेक बड़े-बडे नगर थे जिनमे व्यापारियों के मण्डले अथवा निगम होते थे जिनके हाथ मे काफी शक्ति थी। ऐसे समय में वे भी स्वतन्त्र हो गये और इस प्रकार अनेक नगर-राज्य भी स्थापित हो गये। ये राज्य भी स्थायी नहीं थे। उनमें परस्पर युद्ध होते रहते थे, पुराने राज्य नष्ट होते रहते थे और नये बनते रहते थे। हम ऊपर बतला चुके हैं कि इस अस्थिरता के युग में ईसाई चर्च स्थिरता का स्तम्भ था। वही अव्यवस्था, अराजकता एवं अस्थिरता के बीच व्यवस्था, एकता और स्थिरता की स्थापना के लिये निरंतर प्रयत्नशील था। ग्रीस के युग मे सभ्यता की एकता थी, रोम के युग में शासन की एकता थी किन्तु मध्य-युग में ऐसी

एकता थी जिसकी सृष्टि ईसाई चर्च ने की थी। जिस प्रकार रोमन साम्राज्य के दिनों में साम्राज्य समाज को सुव्यवस्थित बनाये रखने वाली तथा उसका निर्देशन करने वाली शक्ति था उसी प्रकार इस युग में ईसाई चर्च वही कार्य कर रहा था। वास्तव में, रोमन साम्राज्य तो समाप्त हो चुका था, परन्तु उसका विश्व-राज्य का आदर्श बना रहा और योरोपीय जनता विश्व-राज्य को छोड़ किसी अन्य प्रकार के राज्य की कल्पना कर ही नहीं सकती थी, यद्यपि उस समय असंख्य छोटे-बडे राज्य विद्यमान थे। आदर्श और व्यवहार में इतनी विपरीतता अन्य किसी भी युग मे नहीं दिखाई देती।

विश्व-राज्य का आदर्श—

मध्यकालीन आदर्श ईसाई विश्व-राज्य (Respublica Christiana)—एक सार्वभौम ईसाई समाज—का था जिसका जीवन-सिद्धान्त एक ही था परन्तु जिसकी व्यवस्था के लिये ईश्वर ने दो अधिकारियों का विधान किया था। आध्यात्मिक जीवन के नियमन के लिये कैथॉलिक चर्च तथा सांसारिक जीवन के नियमन के लिये एक विश्व-राज्य। इस आदर्श का एक अंग तो विद्यमान् था। ईसाई चर्च सार्वभौम था और समस्त ईसाई जगत् के धार्मिक जीवन का नियमन करता था और उसके अध्यक्ष पोप का उस पर एकछत्र राज्य था। परन्तु कई शताब्दियों तक इस मध्य-युगीन आदर्श के दूसरे अंग का अभाव रहा। आठवीं शताब्दी के अन्त मे पोप तृतीय लीओ ने इस अभाव की भी पूर्ति करदी।

आधुनिक राष्ट्र-व्यवस्था का आरम्भ—

इस युग में, जैसा हम ऊपर बतला चुके हैं, योरोप की आधुनिक राष्ट्र-व्यवस्था की नीव पड़ी। आक्रमणकारियों की विभिन्न जातियाँ विभिन्न प्रदेशों मे जा बसीं और उनमे से बहुत सी वहीं रह गईं। लोम्बार्ड लोग उत्तरी इटली में पो नदी के मैदान में बस गये और उनके नाम पर उस प्रदेश का नाम लोम्बार्डी पड़ा। बर्गण्डियन लोग आधुनिक फ्रान्स के पूर्व भाग में, बेवेरियन (अथवा स्वेवियन) लोग बेवेरिया में तथा एलीमेनी लोग स्विट्जरलैण्ड में बस गये। फ्रैंक लोगों के नाम पर आधुनिक फ्रान्स का नाम पड़ा। इसी प्रकार सेक्सनी का नाम सेक्सन लोगों के नाम पर और इंगलैण्ड का नाम आंग्ल (Angles) लोगों के नाम पर पड़ा जो सेक्सन लोगों के साथ वहाँ जा बसे थे। इन्हीं दोनों के सम्मिश्रण से विशाल एंग्लो-सेक्सन जाति की उत्पत्ति हुई जो आज संसार के बड़े भाग मे फैली हुई है।

इन सब जातियों में फ्रेङ्क जाति सबसे अधिक शक्तिशाली थी। आठवीं शताब्दी के आरम्भ में प्रायः समस्त पश्चिमी योरोप को इसने अपने अधिकार में

कर लिया था। जिस प्रकार ४५१ ई० में पश्चिमी-गोथ राजा थियोडोरिक ने हूण सरदार एटिला को परास्त करके इतिहास की दिशा बदलदी थी उसी प्रकार इस समय एक फ़्रेङ्क राजा चार्ल्स मार्टेल (Charles Martel) ने ७३२ ई० में दक्षिणी फ़्रान्स में स्थित तूर (Tours) नामक स्थान पर मूर (Moor) लोगो (इस्लामधर्म के अनुयायी अरब और अफ़्रिकन लोग) को परास्त करके वही कार्य कर दिखाया। वे लोग इस्लाम धर्म के अनुयायी थे जिनके प्रवर्तक हजरत मुहम्मद थे। हजरत मुहम्मद के अनुयायियों ने अपने नवीन धर्म के जोश में संसार को इस्लाम का अनुयायी बनाने का बीड़ा उठाया था। आरंभ मे उन्हें बड़ी जबरदस्त सफलता भी मिली थी और उन्होंने अरब, फ़ारस, बेबीलोनिया, ईजिप्ट, उत्तरी अफ़्रिका तथा (उत्तरी भाग को छोड़ कर समस्त) स्पेन को विजय कर वहाँ के निवासियों को मुसलमान बना लिया था। उन लोगो ने अब पिरेनीज पर्वत को पारकर फ़्रान्स में घुसने की चेष्टा की परन्तु चार्ल्स मार्टेल के हाथों पराजित होकर वे वापस स्पेन मे लौट गये जहाँ कुछ थोड़े से स्थानों पर इनका अधिकार १४९२ तक बना रहा।

पवित्र रोमन साम्राज्य की स्थापना—

चार्ल्स मार्टेल का पुत्र पेपिन तथा पौत्र शार्लमेन भी बड़े प्रतापी हुए। शार्लमेन ने अपने राज्य की सीमा का बहुत विस्तार किया और रोम तक इटली को अपने राज्य मे सम्मिलित कर लिया। रोम का पोप उन दिनों उत्तरी इटली में रहने वाले लोम्बार्ड लोगों से बहुत तंग था। वे प्रायः उसकी भूमि पर आक्रमण किया करते थे। एक समय जब लोम्बार्डो ने पोप की भूमि छीन ली तो पोप ने पेपिन को अपनी रक्षा के लिये बुलाया था। पेपिन ने लोम्बार्डों को परास्त कर पोप की भूमि उसे वापस देदी। इसी प्रकार शार्लमेन ने भी किया। इससे प्रसन्न होकर ८०० ई० मे २५ दिसम्बर को रोम के गिर्जे मे पोप तृतीय लीओ ने शार्लमेन के मस्तक पर राजमुकुट रखकर उसका रोम के सम्राट् के पद पर अभिषेक कर दिया। इस प्रकार सवा तीन सौ वर्ष बाद रोमन साम्राज्य की फिर से स्थापना हुई। नये सम्राट् का राज्याभिषेक पोप ने किया था इस कारण नया सम्राट् पवित्र रोमन सम्राट् (Holy Roman Emperor) और नया साम्राज्य पवित्र रोमन साम्राज्य (Holy Roman Empire) कहलाया।

शार्लमेन की ८१४ ई० में मृत्यु हो गई। उसके तीस वर्ष बाद ही उसका सारा साम्राज्य उसके तीन पौत्रों में विभक्त हो गया। सबसे छोटे लड़के चार्ल्स को पश्चिमी फ़्रेङ्किया (बाद मे फ़्रान्स) मिला, दूसरे लड़के लुई को पूर्व की ओर

का भाग (बाद में जर्मनी) मिला और ज्येष्ठ लड़के लोथेयर (Lothair) को बीच का भाग मिला जो उत्तर में ज्यूडर ज़ी से लेकर दक्षिण में रोम तक फैला हुआ था। यह विभाजन वर्दून (Verdun) की सन्धि के अनुसार हुआ था। यह सन्धि योरोप के इतिहास में बड़ी महत्वपूर्ण है। इसने उन प्रदेशों को निर्धारित कर दिया जो बाद में चलकर फ़्रान्स और जर्मनी बने और बीच में ऐसा प्रदेश छोड़ दिया जो सदा फ़्रान्स और जर्मनी के बीच झगड़े की जड़ बना रहा है।

धीरे-धीरे इन राज्यो मे भी अराजकता छागई और उनके स्थान पर अनेक छोटे-बड़े राज्य स्थापित हो गये। जर्मनी में ९३६ ई० मे सेक्सनी का सरदार ऑटो (Otto) एकता स्थापित कर सका। ९६२ ई० में पोप ने ऑटो को पवित्र रोमन सम्राट् के पद पर आसीन कर दिया और तभी से इस पद पर अन्त तक कोई न कोई जर्मन राजा ही रहा।*

शार्लमेन के साम्राज्य के विध्वस के साथ ही साथ उत्तर और पूर्व की ओर से आक्रमण की फिर से एक बाढ आई। उत्तर से आने वाले लोग ट्यूटन थे (डेन, नॉर्वेजियन तथा स्वीड जो सब मिलकर नोर्समेन (Norsemen) कहलाते थे) उन्होंने पश्चिमी योरोप पर आक्रमण किया। पूर्व की ओर से आक्रमण करने वाले मंगोल जाति के मगयार (Magyars) लोग थे जो पूर्वी योरोप पर चढ़ दौड़े। उन लोगों ने पहले तो आक्रमण किया और बाद में विजय करके वे वहीं बस गये। इस आक्रमण के पहले से ही राज्य-व्यवस्था टूट-फूट रही थी, अब उसकी प्रक्रिया में तेज़ी आई और विघटन का कार्य बड़ी जल्दी-जल्दी होने लगा। विघटन की इस प्रक्रिया ने जो रूप धारण किया वह सामन्त-व्यवस्था (Feudalism) कहलाता है।

सामन्त-व्यवस्था—

सामन्त-व्यवस्था वास्तव में कोई व्यवस्था नहीं थी, वह एक सगठित अव्यवस्था थी। उसका किसी ने विचारपूर्वक निर्माण नहीं किया। नोर्समेन के आक्रमणों के कारण उसका स्वाभाविक विकास होगया। वह संकटकालीन पारस्परिक बीमा-व्यवस्था थी।† उन दिनों में प्रत्येक व्यक्ति सकट में था। प्रति वर्ष आक्रमणकारी धावा बोलते थे और जनता में हाहाकार मचा देते थे। ऐसी अवस्था मे बेचारे ग़रीबों और किसानों को अपने पड़ौसी किसी रईस या अमीर के निवासस्थान में ही जो प्रायः एक गढी के रूप में होता था, रक्षा प्राप्त हो

*सन् १८०६ ई० में नेपोलियन ने इस पद का अन्त कर दिया।

†Hayes, Moon and Wayland : World History. p. 300.

सकती थी। किसान सुरक्षा प्राप्त करने के लिये अपनी भूमि उस रईस को सौंप देते थे और उसकी सब प्रकार से सेवा करने का वचन देते थे। रईस उनकी सुरक्षा का भार अपने ऊपर लेकर उन्हें अपना सेवक बना लेते थे और उनकी भूमि अपनी ओर से उन्हीं को सौंप देते थे। जिन गरीबों के पास खेत न होते थे वे अन्य प्रकार से सेवा करने का वचन देकर रईसों से सुरक्षा प्राप्त करते थे। इसी प्रकार राजाओं को भी अपनी सुरक्षा और शत्रुओं का मुकाबला करने के लिये सैनिक सहायता की आवश्यकता होती थी जो उन्हें वैसे ही नहीं मिल सकती थी। इस कारण वे अपनी भूमि सैनिक सेवा का वचन लेकर अपने सरदारों में बाँट देते थे और प्रत्येक सरदार को उसकी भूमि या जागीर के अन्दर अपने प्रभुत्व के अधिकार सौंप देते थे।* वे सरदार भी इसी प्रकार सेवा का वचन लेकर अपनी अपनी भूमि कुछ आसामियों को बाँट दिया करते थे। इसी प्रकार वे भी अपनी अपनी भूमि छोटे छोटे आसामियों में बाँट देते थे। इस प्रकार सारी भूमि अन्त में छोटे छोटे किसानों में बँट जाया करती थी और प्रत्येक मनुष्य का अपने ऊपर किसी से सम्बन्ध जुड़ जाया करता था जिसका आधार भूमि-स्वामित्व था। सब से ऊपर राजा होता था, उसके नीचे उसके सरदार होते थे जिन्हें हम सामन्त या जागीरदार कह सकते हैं। राजा की जो भूमि उनके पास होती थी वह फ़ीफ़ (Fief) या फ्यूड (Feud) या जागीर कहलाती थी। सामन्तों के नीचे छोटे-छोटे आसामी (Vassals) या जमींदार होते थे। सबसे नीचे साधारण किसान और भूमि-रहित (अर्ध) दास , Serfs) होते थे जो बेगार करके अपने स्वामियों की सेवा करते थे। इस व्यवस्था में कोई एकरूपता नहीं थी। भिन्न-भिन्न प्रदेशों में इसके रूप भिन्न-भिन्न होते थे। एक सामन्त या आसामी अपने स्वामी को वचन देकर जो दायित्व स्वीकार करता था वे भी सर्वत्र एकसे नहीं होते थे। एक बात इसमें सर्वत्र समान थी। इस व्यवस्था में कोई भी व्यक्ति बिना स्वामी के नहीं होता था। यह सारी व्यवस्था एक पिरेमिड (Pyramid) के समान थी जिसमें सबसे नीचे असंख्य कृषक और अर्ध-दास हुआ करते थे, उनके ऊपर भिन्न-भिन्न प्रकार के आसामी और जागीरदार होते थे और सबसे ऊपर राजा होता था जो स्वय ईश्वर का सामन्त समझा जाता था। इस स्वामि-सेवक सम्बन्ध का आधार भूमि था।

इस व्यवस्था के दो पक्ष थे—राजनैतिक और सामाजिक। राजनीतिक पक्ष में इसका सार था शासन का विकेन्द्रीकरण। उस अराजकता के समय में

*Myers : Medieval and Modern History, p. 76.

इस व्यवस्था से सुरक्षा तथा न्याय का प्रबन्ध हो सका। जो समय (इकरार) स्वामी और सेवक में होता था उसके अनुसार दोनों पक्षों के कुछ कर्तव्य होते थे। जैसा हम देख चुके हैं इस व्यवस्था का विकास ऊपर और नीचे दोनों ओर से हुआ। नीचे के लोगों को रक्षा की आवश्यकता थी और ऊपर के लोगों को सेवा की। राजा या सामन्त का काम केवल अपने अधीनस्थ लोगों की लुटेरों तथा आक्रमणकारियों से केवल रक्षा करना ही नहीं था, वह उनके पारस्परिक विवादों को दूर करता था और अपने न्यायालय में न्याय करता था। इस प्रकार जनता को सुरक्षा प्राप्त होती थी जिसके बदले रईसों और सरदारों को सेवा प्राप्त होती थी जिसकी उन्हें आवश्यकता थी। इस प्रकार राज्य में कोई एक केन्द्रीय शासन नहीं होता था। प्रत्येक सामन्त अपने क्षेत्र में एक प्रकार का शासक था। उसके अपने क़ानून होते थे और अपने न्यायालय। व्यक्तियों का सम्बन्ध केवल अपने स्वामी से ही होता था; राजा से उसका कोई सम्बन्ध नहीं था।

सामाजिक पक्ष में यह एक आर्थिक व्यवस्था थी जिसे मेनोरियल (Manorial) व्यवस्था कहते हैं। मध्ययुग में किसानों के व्यक्तिगत छोटे-छोटे खेत नहीं होते थे। खेत एक बड़ी जायदाद के रूप में होते थे और मेनर (Manor) कहलाते थे। प्रत्येक मेनर का एक स्वामी होता था। उसकी एक गढ़ी होती थी जिसमें वह रहता था। उसके साझेदार कृषक उसके साथ ही गढ़ी के बाहर गाँव में रहा करते थे। कृषक लोग दो वर्ग के होते थे। स्वतन्त्र (Freeholders) और विलीन (Villein) या अर्धदास (Serf)। स्वतत्र कृषकों की संख्या थोड़ी सी थी और वे धनी हुआ करते थे। वे भूमि के कुछ भाग स्वतंत्र रूप से अपने काम में ला सकते थे और उसके लिये अपने स्वामी को निश्चित लगान देते थे। वे इच्छानुसार मेनर में रह सकते थे या उसे छोड़कर अन्यत्र जा सकते थे। विलीन न तो स्वतत्र व्यक्ति थे और न दास। स्वामी उनके शरीर का स्वामी नहीं था, वे बेचे नहीं जा सकते थे। उनका सम्बन्ध स्वामी की अपेक्षा भूमि से था यद्यपि उन्हें स्वामी के प्रति कुछ कर्तव्यों का पालन करना पड़ता था। उनसे मेनर मे रहने का अधिकार नहीं छीना जा सकता था, परन्तु वे स्वामी की अनुमति के विना मेनर को छोड़ भी नहीं सकते थे। उन लोगों को स्वामी की अनेक प्रकार से सेवा करनी पड़ती थी। भूमि के प्रयोग के लिये उसे धन, जिन्स तथा श्रमके रूप में अदायगी करनी पड़ती थी। उसे कुछ निश्चित लगान देना पडता था, मुर्गी, अण्डे, शहद आदि एक निश्चित परिमाण में भेंट करना पड़ता था और अपने स्वामी के खेत पर प्रायः

वर्ष में ६ महीने काम करना पड़ता था। इसके अतिरिक्त फ़सल के अवसर पर उनसे अधिक काम भी लिया जा सकता था। उन्हें अपने स्वामी के हलों की मरम्मत करनी पड़ती थी, वे मेड़ों पर झाड़ियाँ लगाते थे और खाइयाँ खोदते थे, उन्हें उसकी भेड़ों की ऊन काटनी पड़ती थी और इसी तरह के पचासों काम करने पड़ते थे।

हम ऊपर बतला चुके हैं कि इस व्यवस्था का विकास धीरे-धीरे स्वाभाविक रूपसे हुआ और इसने बहुत बड़ी आवश्यकता की पूर्ति की। उस महान् राजनीतिक अराजकता के युग में सुरक्षा और न्याय इसी व्यवस्था से ही उपलब्ध हो सके। परोक्ष रूप में इससे कृषि की भी उन्नति हुई। इसके साथ ही प्रत्येक व्यक्ति के अधिकार और कर्तव्य की नागरिक भावना को प्रोत्साहन मिला। सामन्तों एवं सरदारों की शक्ति से राजाओं की निरकुशता पर प्रतिबन्ध भी लगा। परन्तु जहाँ इस व्यस्था में इतने गुण थे वहाँ उसमें अनेक अवगुण भी विद्यमान थे। कालान्तर में शान्ति स्थापित होने पर विविध राजाओं मे आपस में युद्ध होने लगे, प्रबल और प्रतापशाली सामन्त भी प्राय. अपने राजा के विरुद्ध विद्रोह कर बैठते थे, एक ही राजा के सामन्त आपस में लड़ते रहते थे और राज्य में अशान्ति मचाये रहते थे। कई व्यक्ति एक से अधिक स्वामियों के सामन्त भी हुआ करते थे। सैनिक जीवन को आवश्यकता से अधिक महत्व मिलने लगा और परोक्ष रूप से व्यापार तथा उद्योग-धन्धों का ह्रास हुआ। सर्वसाधारण का और विशेष रूप से भूमिहीन श्रमिकों का निर्मम शोषण हुआ जिनकी दशा बिलकुल दासों जैसी होगई।

इस प्रकार राजनीतिक दृष्टि से समस्त पश्चिमी तथा मध्यवर्ती योरोप असंख्य छोटे-बड़े राज्यों में विभक्त था। पवित्र रोमन साम्राज्य ने समय-समय पर राजनीतिक एकता को स्थापित करने का प्रयत्न किया परन्तु यह एकता अधिक दिनों तक कायम न रह सकी। पवित्र रोमन साम्राज्य स्वयं सामन्त-पद्धति पर था सगठित और उसके सामन्त बड़े शक्तिशाली थे। साम्राज्य के बाहर कई राज्य बन रहे थे जिनमे फ्रान्स, स्पेन और इंगलैंड मुख्य थे। वे सब भी सामन्त-पद्धति पर आधारित थे परन्तु धीरे-धीरे, जैसा हम आगे देखेंगे, वे सामन्त-पद्धति का नाश कर शक्तिशाली राष्ट्र बन गये।

चर्च का प्रभाव—

योरोप की राजनीतिक दशा तो इस प्रकार अव्यवस्थित थी और वहाँ कोई ऐसी शक्ति नहीं थी जो अधिकांश पश्चिमी योरोप को अपने प्रभाव में

रख सकती,किन्तु धार्मिक क्षेत्रमें चर्चका संगठन बड़ा शक्तिशाली था और समस्त ईसाई संसार पर ईसाई चर्च के अध्यक्ष पोप का एकाधिपत्य था। चर्च बिलकुल रोमन साम्राज्य के अनुसार संगठित था। विभिन्न देश चर्च के निमित्त प्रान्तों, जिलों (Dioceses) तथा ग्रामों (Parishes) में विभक्त थे। प्रत्येक प्रान्त के लिए एक बड़ा पादरी—आर्चबिशप—होता था। एक जिले का मुख्य पादरी बिशप कहलाता था। हर एक पेरिश में जो ग्राम या नगर का एक भाग होता था एक छोटा पादरी होता था जो अपने इलाके के समस्त धार्मिक कृत्य करवाता था। इन पादरियों की नियुक्ति पोप के द्वारा या उसकी अनुमति से होती थी। छोटे पादरियों पर बड़े पादरियों का अधिकार होता था और अन्त में सब पोप के अधीन थे और उसकी आज्ञाओं का पालन करते थे। उन दिनों चर्च का बड़ा ज़बरदस्त प्रभाव था। जनता वैसे ही धर्मप्राण होने से चर्च का आदर करती थी और उससे डरती थी। इसके अतिरिक्त धार्मिक क्षेत्र में उसकी शक्ति बड़ी व्यापक थी। प्रत्येक व्यक्ति चर्च से सम्बद्ध था। उससे पृथक् व्यक्ति के जीवन का कोई मूल्य नहीं था। व्यक्ति जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त पादरियों के अंकुश में रहता था। विरोधियों एवं अपराधियों का दमन करने के लिये चर्च के पास कोई सेना या पुलिस नहीं होती थी परन्तु उसके पास इससे भी अधिक प्रभावकारी शस्त्र मौजूद था। वह अपराधी को धर्म-बहिष्कृत (Ex-communicate) करके उसे मुक्ति से वंचित कर सकता था। पोप राजाओं पर भी इस अधिकार से पूरा अंकुश रखता था। एक धर्म-बहिष्कृत राजा की आज्ञाओं का पालन करना प्रजा के लिये आवश्यक नहीं रहता था। उस राजा के विरुद्ध षड्यंत्र हो सकते थे, उसकी कोई भी हत्या कर सकता था परन्तु उसका रक्षक कोई नहीं होता था। पोप अप्रसन्न होकर किसी भी राज्य में समस्त धार्मिक कृत्यों का निषेध कर सकता था जिससे उस समय की धर्मप्राण जनता मे त्राहित्राहि मच जाती थी।

इसके अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में चर्च का बड़ा भारी प्रभाव था। वह राजनीतिक क्षेत्र में आन्तरिक कुशासन तथा बाह्य असदाचरण के लिये राजाओं की प्रतारणा करके तथा सामाजिक क्षेत्र में विवाह के कानून द्वारा परिवारिक जीवन और प्रायश्चित के विधान द्वारा मनुष्य के व्यक्तिगत जीवन पर अपना नियत्रण रखता था और सम्पत्ति को सामान्य हित में एक धरोहर बतला कर तथा दान की भावना पर जोर देकर आर्थिक उद्देश्यों पर भी नियंत्रण रखता था। बौद्धिक तथा मानसिक क्षेत्र मे शिक्षा पर अपने एकाधिकार द्वारा उसने अपना नियत्रण स्थापित कर रखा था और नास्तिकता तथा कुतर्क के

लिये ताड़ना तथा धर्म-बहिष्कार द्वारा उसने समस्त जनता पर एक समान संस्कृति लाद रखी थी।* मनुष्य को सोचने-विचारने की बिलकुल स्वतंत्रता नहीं थी। जो कुछ पोप तथा पादरीवर्ग कहता था वही सत्य था, शेष सब मिथ्या एवं अग्राह्य था। पादरियों से भिन्न विचार रखना या चर्च के सिद्धान्तों के विषय में शंका या कुतर्क करना नास्तिकता का प्रमाण था जिसके लिये प्राणदण्ड मिलता था।

अन्य प्रकार से भी चर्च बड़ा शक्तिशाली था। उसके पास अपार सम्पत्ति थी। दानदक्षिणा के अतिरिक्त धार्मिक लोग उसे भूमि भी भेंट करते थे जिससे उसको खूब आय होती थी। इसके अतिरिक्त वह समस्त ईसाइयों से अनेक प्रकार के कर भी वसूल करता था। इसके साथ ही चर्च की सम्पत्ति तथा चर्च से सम्बन्धित व्यक्ति राजकरों से मुक्त थे।

चर्च केवल एक धार्मिक संस्था ही नहीं था। वह बहुत से शासन सम्बन्धी भी काम करता था। उसका अपना कानून (Canon Law) था और अपने न्यायालय होते थे जिनमें पादरियों, अनाथों, विधवाओं आदि के तथा विवाह, वसीयत, नास्तिकता आदि से सम्बन्ध रखने वाले मामलों की जाँच होती थी। चर्च के आदमियों पर राजा का कानून लागू नहीं होता था और राजकीय न्यायालय उन्हें दण्ड नहीं दे सकते थे। पोप अपने आप को समस्त राजाओं का अधिराज समझता था। वह स्वयं सम्राट् के समान ठाट-बाट के साथ रहता था और भिन्न-भिन्न राजाओं के दरबार में उसके राजदूत रहते थे। चर्च के पास भूमि होने के कारण पादरी लोग विभिन्न राज्यों में राजाओं के सामन्त भी होते थे और ऊँचे पादरी प्रायः राज्य के प्रतिष्ठित पदों पर कार्य करते थे तथा इस प्रकार राज्य के शासन पर भी उनका प्रभाव रहता था।

राज्य और चर्च का संघर्ष—

इस प्रकार राज्य और चर्च के अधिकार-क्षेत्र बड़े अंश तक समान थे और इस कारण दोनों के बीच संघर्ष अनिवार्य था। मध्ययुगीन राज्य सामन्त-राज्य होने के कारण निर्बल थे। जब तक राज्य निर्बल रहे और चर्च शक्तिशाली रहा तब तक राजाओं की ओर से चर्च की शक्ति का अधिक विरोध नहीं हुआ परन्तु धीरे-धीरे कुछ राज्य शक्तिशाली होने लगे और एक शक्तिशाली राजा के लिये शासन के कामों में पोप का हस्तक्षेप असह्य होना स्वाभाविक था। पोप

*Barker in Hearnshaw (ed.) : The Social and Political Ideas of Some Great Medieval Thinkers, p. 15.

भी राजाओं की बढ़ती हुई शक्ति और चर्च के पदाधिकारियों पर उनके बढते हुए अधिकार को सहन नहीं कर सकते थे। फलतः कालान्तर में चर्च और राज्य में संघर्ष होने लगा। जर्मनी और फ्रान्स के कई राजाओ ने पोप का अनेक बार विरोध किया। आरभ मे तो पोप उन्हें परास्त कर सका परन्तु मध्य-युग के अन्त की ओर जब योरोप मे राष्ट्रीयता एवं व्यक्तिवाद का जोर बढा, राष्ट्रीय राज्य बनने लगे तथा उन्हें जनता का समर्थन प्राप्त होने लगा और उधर पोप तथा पादरियों के विलास एवं भ्रष्ट जीवन के कारण लोगों के हृदयों में उनके प्रति श्रद्धा कम होने लगी तो पोप का पक्ष निर्बल पड़ गया और राजाओं को पोप के कठोर नियत्रण से मुक्ति मिलने लगी। अपार सम्पत्ति के कारण पोप, पादरियों तथा मठों में रहने वाले साधुओं का जीवन तो विलासमय होही रहा था और वे अपने धार्मिक कर्तव्यों को छोड़कर रागरग तथा राजनीतिक षड्यंत्रों में मस्त रहा करते ही थे। इसके अतिरिक्त उन्होंने धर्म को भी बडा आडम्बर-युक्त बना दिया था। चर्च के जीवन के ये दोष बारहवीं शताब्दी के अन्त से प्रकट होने लग गये थे। चर्च के कई समझदार व्यक्तियों ने इन दोषों के विरुद्ध और चर्च का सुधार करने के लिए आवाज़ उठाना शुरू किया। ऐसे सुधारकों में इगलैंड का विक्लिफ (१३२०-८४), बोहीमिया का हस (१३६६-१४१५), तथा फ़्लोरेन्स का सेवानरोला (१४५२-१४९८) मुख्य थे। परन्तु अभी पोप तथा चर्च की प्रतिष्ठा अधिक नहीं गिरी थी। उनका और उनके अनुयायियों का कठोर दमन किया गया। हस तथा सेवानरोला जीवित जला दिये गये। विक्लिफ की भी यही दशा होती परन्तु पोप के हाथों में पड़ने के पहिले ही उसकी मृत्यु हो गई।

पूर्वी रोमन साम्राज्य और मुसलमानों का आक्रमण—

पूर्वी रोमन साम्राज्य पर भी विपत्तियाँ तो आईं परन्तु उनसे उसका उतना अनिष्ट नहीं हुआ जितना पश्चिमी रोमन साम्राज्य का हुआ। जिन दिनों नोर्समेन का आक्रमण पश्चिमी साम्राज्य में हुआ उन्हीं दिनों पूर्वी साम्राज्य पर स्लाव (Slav) तथा बलगार लोगों (Bulgarians) का आक्रमण हुआ। स्लाव लोग बालकन प्रायद्वीप मे बस गये और ग्रीस तक घुस गये। बलगार लोग का हूणों से रक्त-सम्बन्ध था और वे बड़े भयंकर थे। उन्होंने आठवीं शताब्दी के अन्त में साम्राज्य में प्रवेश किया और डेन्यूब नदी तथा बाल्कन पर्वत के बीच के प्रदेश पर अधिकार करके वहीं बस गये। एक बार तो ऐसा प्रतीत हुआ कि वे सारे

बाल्कन प्रायद्वीप पर छा जॉयगे पर १०१४ मे रोमन सम्राट् वेसिल ने उन्हें परास्त कर बाल्कन पर्वत के उत्तर में ही रोक दिया।

पूर्व की ओर से साम्राज्य को मुसलमान अरबों के आक्रमणों का मुकावला करना पड़ा। आप देख चुके हैं कि अरबों ने अपने नये धार्मिक जोश की अदम्य शक्ति से मुहम्मद साहब की मृत्यु के बाद की शताब्दी में ही उनके उत्तराधिकारी खलीफ़ाओं के नेतृत्व में पूर्व में सिन्ध से लेकर पश्चिम में स्पेन तथा पोर्तुगाल तक एक विशाल साम्राज्य स्थापित कर लिया था। इस साम्राज्य-स्थापन में अरबों ने एशिया में स्थित रोमन साम्राज्य पर आक्रमण किया और उसके अधिकांश पर अधिकार कर लिया। ७१७ ई० में उन्होंने कॉन्स्टेन्टीनोपल पर भी आक्रमण किया परन्तु वे परास्त हुए और फिर सात शताब्दियों तक उन्होंने उधर मुख नही किया। अरबों की इस विजय के सिलसिले में ईसाइयों की धर्म-भूमि—पेलेस्टाइन—जहाँ ईसाई लोग सदा तीर्थयात्रा करने पहुँचते थे मुसलमानों के हाथों में पहुँच गई। परन्तु अरब लोग धर्म के मामलों में असहिष्णु नही थे। वे ईसाइयों को अपने तीर्थ-स्थानों की यात्रा वेखटके करने देते थे और उन्हें किसी प्रकार भी सताते नही थे। अतः ईसाइयों को यह अरब-विजय अधिक नहीं खटकी।

धर्म-युद्ध (Crusades)—

अरब लोगों ने सभ्यता के क्षेत्र में बहुत उन्नति की और अरब सभ्यता तत्कालीन योरोपियन सभ्यता से कहीं अधिक वैभवशाली और समृद्धि थी। परन्तु अरबों का साम्राज्य अधिक नहीं टिक सका। दसवीं शताब्दी में उस पर उत्तर-पूर्व की ओर से तुर्किस्तान के मैदानों के निवासी तुर्कों के भीषण आक्रमण हुए। अरबों का साम्राज्य इन असभ्य तुर्कों के आक्रमण के धक्कों को न सह सका। तुर्कों ने उसका विध्वंस कर दिया और उसकी जगह तुर्क सरदारों ने अनेक राज्य स्थापित कर लिये। पेलेस्टाइन भी इस प्रकार तुर्कों के हाथों में पहुँच गया। तुर्क लोगों ने इस्लाम ग्रहण कर लिया था परन्तु उन पर अरबों की संस्कृति और सभ्यता का अधिक प्रभाव न पड़ा। वे धार्मिक बातों में बड़े असहिष्णु थे। उन्होंने पेलेस्टाइन में पहुँचनेवाले ईसाई तीर्थयात्रियों पर अत्याचार करना आरंभ किया जिससे समस्त योरोप के ईसाई जगत में खलबली मच गई और अपने धर्म-स्थानों का उद्धार करने के लिये लोगों मे जोश फैला। रोम के पोप ने ईसाइयों का एक बड़ा सम्मेलन किया (१०९५) और योरोप के

विभिन्न राजाओं को अपने पारस्परिक युद्धों को बन्द कर अपनी धर्म-भूमि का उद्धार करने का आदेश दिया। पीटर नामक एक साधु ने भी घूम-घूमकर आन्दोलन किया और सर्वत्र लोग इस धर्म-युद्ध के लिये तैयार हो गये। जो लोग इस युद्ध के लिये जाते थे उनके वक्षस्थल पर या कन्धे पर लाल कपड़े का एक विशाल क्रॉस (Cross) होता था। इसी कारण ये युद्ध क्रूसेड (Crusade) के नाम से विख्यात हुए और उनमें भाग लेने वाले लोग क्रूसेडर कहलाये।

इस धर्म-युद्ध में सैनिक, कृषक, कारीगर, व्यापारी, राजा महाराजा सभी प्रकार के लोग बड़े उत्साह के साथ शामिल हुए। ईसाइयों का अपनी धर्म-भूमि के उद्धार का प्रयत्न कोई डेढ सौ वर्षों तक (१०६६ से १२५०) चलता रहा और कुल मिलाकर आठ क्रूसेड हुए। इन युद्धों में बड़ी मारकाट हुई। एक वार ईसाइयों ने जेरूसेलम विजय करके अपने अधिकार में कर लिया परन्तु वे उस पर अपना अधिकार अधिक दिनों तक न रख सके। तुर्कों ने उसे वापिस छीन लिया और अन्त में ईसाई तीर्थ स्थान तुर्कों के हाथों में ही बने रहे।

धर्म-युद्ध के परिणाम—

इस प्रकार ये धार्मिक युद्ध असफल हुए परन्तु उनसे अन्य कई प्रकार के लाभ अवश्य हुए। मध्य-युग में पश्चिमी योरोपवाले कूप-मण्डूक बन गये थे और वाह्य जगत से उनका सम्पर्क बिलकुल नहीं रहा था। इन युद्धों के कारण उनका पूर्वी देशों से सम्पर्क हुआ, यात्राओं तथा भौगोलिक अध्ययन को प्रोत्साहन मिला, क्रूसेडों में भाग लेने वाले व्यक्ति नये लोगों से मिले और उन्होंने उनसे नये विचार ग्रहण किये। जो वहाँ से लौटे उनका बौद्धिक क्षितिज अधिक विशद हो गया और उन्हें अपने सीमित जीवन से अरुचि हो गई। इन युद्धों के फल-स्वरूप पूर्वी देशों से व्यापार होने लगा, योरोप में नई-नई वस्तुएँ पहुँचने लगीं और इटली के वेनिस तथा जिनोआ नगर इस व्यापार के केन्द्र होने के कारण बड़े समृद्ध एवं वैभवशाली हो गये। विद्वान् लोग पूर्व की संस्कृति से आकर्षित हुए। एरिस्टॉटल के वैज्ञानिक ग्रन्थ, अरबी अंक, बीजगणित, दिग्दर्शक यंत्र और कागज पश्चिमी योरोप में क्रूसेडरों की खोजों के परिणाम-स्वरूप ही पहुँचे। मध्य-युग में लोगों का विश्वास था कि व्यक्ति के इहलौकिक तथा पारलौकिक जीवन की जितनी भी आवश्यकताएँ हैं वे सब चर्च तथा ईसाई धर्म के द्वारा पूर्ण हो सकती हैं तथा उसे और किसी की सहायता की

आवश्यकता नहीं है। एक दूसरी सभ्यता के सम्पर्क तथा नवीन अनुभव प्राप्त करके लौटनेवाले लोगों ने इस विश्वास का खण्डन किया और इस प्रकार लोगों के मस्तिष्क पर चर्च का जो अत्यधिक प्रभाव था, वह निर्बल पड़ने लगा। इन धर्म-युद्धों ने योरोप में नवीन विचारों का प्रसार करके तथा पुराने विचारों, विश्वासों एवं संस्थाओं को क्षति पहुँचा कर बड़ा भारी काम किया और इसी के फल-स्वरूप सांस्कृतिक नव-जागरण संभव हो सका। † इसके साथ मध्य-युग का भी अन्त होगया और योरोप ने अपने इतिहास के आधुनिक युग में प्रवेश किया।

---

† Swain : A History of World Civilization, pp. 348-349.

अध्याय ३

आधुनिक युग का आरंभ

(अ) सांस्कृतिक नव-जागरण

आधुनिक युग का आरभ सांस्कृतिक नव-जागरण के साथ होता है। इस शब्दावली से उन सब बौद्धिक परिवर्तनों का बोध होता है जो मध्य-युग के अन्त में दृष्टिगोचर हो रही थीं। यह कोई आकस्मिक घटना नहीं थी। इसका आरंभ धीरे-धीरे तेरहवीं शताब्दी में ही हो चुका था। मध्यकाल योरोप की एक लम्बी मोहनिद्रा का युग था। इस युग का जीवन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, मानसिक, आत्मिक तथा धार्मिक सभी दृष्टियों से अत्यन्त पिछड़ा हुआ था। राजनीतिक दृष्टि से यह युग अधिकांश में अराजकता का युग था और इसमें सुसंगठित शासन-व्यवस्था का अभाव था। सामाजिक जीवन अस्तव्यस्त था। साधारण जनता अधिकार-विहीन थी और तुच्छ समझी जाती थी। अधिकार केवल सामन्तों को ही प्राप्त थे। आर्थिक दृष्टि से भी किसानों का जीवन बड़ा दयनीय था। सामन्त लोग उनका शोषण करते थे और उनकी दशा दासों से भी बुरी थी। धार्मिक क्षेत्र में तो चर्च का प्राधान्य था ही, मानसिक तथा आत्मिक क्षेत्रों पर भी चर्च ने पूरा अधिकार जमा रखा था। उस युग में शिक्षा का प्रचार बहुत कम था और साधारण जनता प्रायः अशिक्षित थी। उन दिनों विद्या तथा ज्ञान के केन्द्र ईसाई चर्च और मठ हुआ करते थे। शिक्षा अधिकतर धार्मिक हुआ करती थी और लेटिन भाषा में दी जाती थी जो सभ्यता और संस्कृति की भाषा समझी जाती थी। मध्ययुग के उत्तरार्ध में शिक्षा का प्रचार बढ़ने लगा और ऑक्सफोर्ड, केम्ब्रिज, पेरिस, बोलोग्ना आदि विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई। आरंभ मे ये विश्वविद्यालय ईसाई मठों के ही अंग थे और उनमें मुख्यतः लेटिन तथा ईसाई धर्म-शास्त्रों की ही शिक्षा दी जाती थी। इनके अतिरिक्त व्याकरण, दर्शन, चिकित्साशास्त्र तथा तर्कशास्त्र भी शिक्षा के विषय थे। परन्तु इन विद्यापीठों में धर्माधिकारियों का प्राधान्य होने के कारण विज्ञान की अधिक उन्नति नहीं हुई क्योंकि विज्ञान जिज्ञासु होता है और परीक्षण करके सत्य का अनुसंधान करना चाहता है। धर्माधिकारी इस बात को पसन्द नहीं कर सकते थे। उनके लिए बाइबिल में जो कुछ लिखा हुआ था और

उसकी जो व्याख्या वे करते थे वह सर्वमान्य थी और उसमें शंका करना नास्तिकता का घोर अपराध था। इस प्रकार समाज का वौद्धिक एवं आत्मिक जीवन चर्च के शिकंजे मे जकड़ा हुआ था। ऐसी अवस्था मे उन्नति के सव स्रोत सूख गये थे और समाज की उन्नति कुण्ठित हो गई थी।

परन्तु मध्ययुग की अन्तिम दो शताब्दियों में हम योरोपीय समाज को अपनी लम्बी निद्रा में करवट लेते देखते हैं जिसका कारण था अरवों से सम्पर्क। अरवों ने स्पेन पर अधिकार कर लिया था और सिसिली का द्वीप भी वर्षों तक उनके अधिकार में रहा था। अरव लोगों की सभ्यता तत्कालीन योरोपीय सभ्यता से कहीं उन्नत थी। योरोप मे तो वर्वर आक्रमणों के साथ ही यूनानी साहित्य, विज्ञान और कला का लोप हो चुका था परन्तु अरव लोगों ने उन्हें जीवित रखा था। यूनानी लेखकों एव विचारकों के ग्रन्थों का उन्होंने अरवी भाषा में अनुवाद करके और सिसिली तथा स्पेन में स्थापित अपने विद्यालयों में उनके अध्ययन–अध्यापन द्वारा उनका प्रचार किया। प्लेटो, एरिस्टॉटल आदि यूनानी दार्शनिक ईसाई नहीं थे और उनके ग्रन्थों में विशुद्ध दर्शन एवं ज्ञान का प्रतिपादन किया गया था जिनका ईसाई या अन्य किसी धर्म से किसी प्रकार का सम्वन्ध न था। इन विद्यालयों में विचार की पूर्ण स्वतंत्रता थी और अरव विद्वान् वड़े उदार थे। उनके सम्पर्क से ईसाई विद्वानों मे भी उदारता तथा विचार–स्वातन्त्र्य की ओर प्रवृत्ति होने लगी और उनके दृष्टिकोण में परिवर्तन होने लगा। इसके साथ ही इन्हीं दिनों (तेरहवीं तथा चौदहवीं शताब्दियों मे) कुछ तो धर्म-युद्धों के कारण और कुछ अन्य कारणों से व्यापार और देशाटन वढ रहा था और वड़े-वड़े व्यापारिक नगरों का उत्थान हो रहा था। व्यापार तथा देशाटन के फल-स्वरूप लोगों का वाह्य सम्पर्क वढ रहा था और वे अपने सीमित विचारों के सकुचित दायरे से निकल कर एक व्यापक संसार मे प्रवेश कर रहे थे। उनका मानसिक एवं वौद्धिक क्षितिज विस्तृत हो रहा था; उनकी जिज्ञासा जागृत हो रही थी; सत्य के अनुसंधान की प्रेरणा मिल रही थी और उनका दृष्टिकोण दकियानूसी विचारों को त्याग कर उदार वन रहा था। इस प्रकार पश्चिमी योरोप के लोगों की मानसिक दासता की श्रंखलाएँ टूट रहीं थीं, उनमे आत्मिक साहस वढ़ रहा था और वे उन्नति के पथ पर अग्रसर हो रहे थे।

इसी अवस्था में एक महत्वपूर्ण घटना हुई जिसने इस प्रवृत्ति को और भी तीव्र कर दिया। १४५३ में तुर्कों ने पूर्वी रोमन साम्राज्य की राजधानी

कॉन्सेन्टीनोपल पर अधिकार कर लिया। उनके अत्याचार से बचने के लिये वहाँ जो सैकड़ों यूनानी और रोमन विद्वान् रहते थे वे अपने प्राचीन अमूल्य यूनानी ग्रन्थों को लेकर पश्चिमी योरोप की ओर चले गये। सर्वप्रथम वे इटली में जा बसे और वहाँ से धीरे धीरे सर्वत्र फैल गये। यूनानी साहित्य, दर्शन, विज्ञान, कला आदि का जो अध्ययन योरोप में पहलेसे हो रहा था उसमें अब अधिक उन्नति हुई। यूनानी जीवन का दृष्टिकोण मध्ययुगीन योरोपीय जीवन के दृष्टिकोण से विलकुल विपरीत था। मध्ययुग में चर्च ने लोगों को प्रमाण में विश्वास करना तथा चर्च की शिक्षाओं मे ही जीवन की समस्त समस्याओं का समाधान प्राप्त करने की शिक्षा दी थी। इसके अतिरिक्त ईसाई भिक्षुओं ने संसार को असार एवं क्षणभंगुर वतलाकर तथा परलौकिक जीवन को अधिक महत्व देकर सांसारिक जीवन के प्रति उपेक्षा का पाठ पढ़ाया था। सारांश में, मध्यकालीन योरोपवाले अन्धविश्वासी तथा प्रमाणवादी थे। इसके विपरीत यूनानियों का दृष्टिकोण वैज्ञानिक और मौलिक था। वे किसी वात को प्राचीन अथवा परपरागत होने के कारण स्वीकार नही करते थे। वे अपनी वुद्धि से सोचते थे, अनुसंधान करते थे और परीक्षण करके किसी वस्तु को ग्रहण करते थे। वे कष्टो को चुपचाप सहन करना नही, वरन् आनन्द का उपभोग करना अपना ध्येय समझते थे। वे स्वर्ग-नर्क के झगड़े में पड़कर अपनी शक्ति और अपने सुख का नाश नही करते थे। यूनानियों के इन विचारों ने योरोप के मानसिक जगत में महान् उथल-पुथल मचा दी और मध्ययुगीन योरोप की जड़ हिला दी। अन्धविश्वास, प्रमाणवाद तथा चर्च की प्रधानता को धक्का लगा, लोग सांसारिक जीवन से विरक्ति को त्याग कर उसमें अधिकाधिक रुचि लेने लगे। उनमें आत्मिक साहस का उदय हुआ और वे समझने लगे कि मनुष्य अपना जीवन स्वयं सुखी बना सकता है। इस प्रकार योरोपीय जीवन में स्फूर्ति आई। जीवन का दृष्टिकोण पारलौकिक से वदलकर भौतिक एवं मानववादी हुआ। वौद्धिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र—साहित्य, कला, विज्ञान आदि—में एक नये युग का आरम्भ हुआ और योरोपीय इतिहास ने आधुनिक युग में पदार्पण किया।

इस प्रकार योरोप मे यह मानसिक क्रान्ति और उसके फल-स्वरूप सांस्कृतिक नवजागरण हुआ जिसका प्रभाव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पड़ा। इन्हीं दिनों योरोपवासियों को मुद्रणकला का ज्ञान भी वाहर से मिला और धीरे धीरे मुद्रणालय खुलने लगे। पुस्तकें वड़ी संख्या में छपने लगी; लोग उन्हें
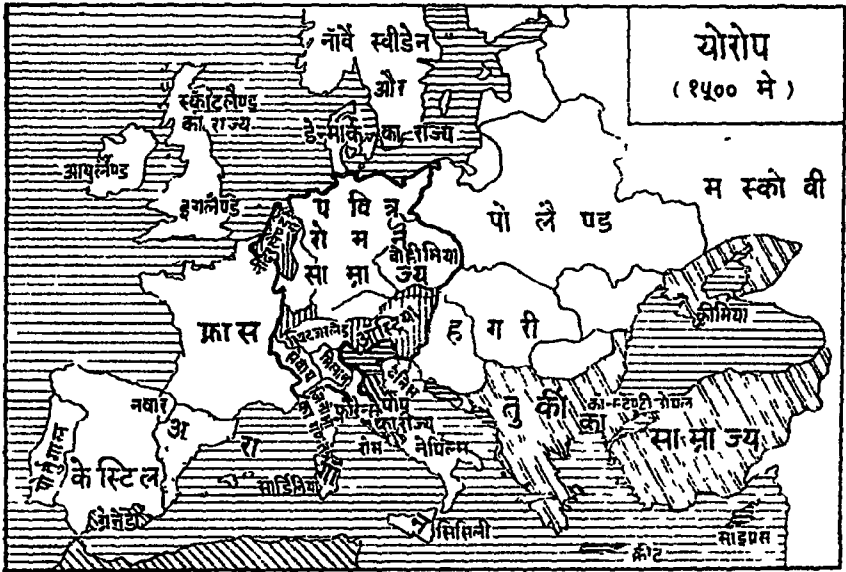
पढ़ने लगे और उनके ज्ञान तथा दृष्टिकोण में विस्तार होने लगा। दिग्दर्शक-यन्त्र से दूर दूर देशों को सामुद्रिक यात्राएँ सभव हो सकीं। मार्कोपोलो, कोलम्बस, वास्कोडीगामा जैसे साहसिक यात्री दूर दूर की यात्राओं पर जाने लगे। इस सिलसिले मे उन्होंने अमेरिका को खोज निकाला और भारतवर्ष का नया मार्ग मालूम कर लिया। इन यात्राओं तथा भौगोलिक खोजों से लोगों का ज्ञान तथा अनुभव बढ़ा और योरोप उन्नति के पथ पर बडी तेजी से आगे बढने लगा।

(आ) नवजागरण काल के राज्य

नवजागरण का प्रभाव जीवन के प्रायः सभी क्षेत्रों में हुआ था। बौद्धिक तथा कला के क्षेत्र में उसने मानववाद (Humanism) को पुनर्जीवित किया और मनुष्य के विचारों और भावनाओं के ऊपर जोर दिया जाने लगा। परन्तु हमारे अध्ययन की दृष्टि से उसका सबसे बड़ा प्रभाव राष्ट्रीयता की भावना को प्रोत्साहन तथा उसके आधार पर निर्मित राष्ट्रीय राज्यों के रूप में प्रकट हुआ। नवयुग के आरभ में हम कुछ शक्तिशाली राष्ट्रीय राज्यों का उदय देखते हैं। परन्तु यह ध्यान रखना चाहिये कि इस समय राष्ट्रीयता से व्यक्ति के अधिकारों का कोई सम्बन्ध नही था। उसका सम्बन्ध शक्ति से, एक राज्य को दूसरे राज्य से स्वतंत्र होकर काम करने की शक्ति अर्थात् प्रभुता से था। इसका प्रभाव विभिन्न राज्यों की पारस्परिक प्रतिस्पर्धा और अन्तर्राष्ट्रीय तनाव मे प्रकट होने लगा। †

राष्ट्रीय राज्यों का उत्थान—

राष्ट्रीय राज्यों का उत्थान सामन्तवाद की समाधि पर हुआ। विभिन्न देशों में शक्तिशाली सामन्त परस्पर लड़ा करते थे। जिसके फल-स्वरूप धीरे धीरे उनकी शक्ति क्षीण हो चुकी थी। बारूद के आविष्कार ने भी राष्ट्रीय राज्यों की उन्नति मे बड़ा योग दिया। अब बारूद और तोपों के सामने सामन्तों की गढियों का, जिनके बल पर सामन्त लोग राजाओं का सफलता से विरोध कर सकते थे, कोई मूल्य नही रहा और राजा लोग उनका दमन कर सके। राजाओं को व्यापारी नगरों तथा शान्ति के इच्छुक मध्यमवर्ग ने भी सहायता दी क्योंकि सामन्तों के युद्धों के कारण फैली हुई अशान्ति से व्यापार तथा उद्योग-धधों को बड़ी हानि पहुँच रही थी और वे समझते थे कि सुदृढ शक्तिशाली शासन के बिना शान्ति स्थापित नहीं हो सकती थी।

---

† Strong· Dynamic Europe, p. 138

नवीन युग के आरम्भ में इंगलैण्ड, फ्रान्स तथा स्पेन अच्छे सशक्त राष्ट्रीय राज्य बन गये थे। इङ्गलैण्ड में सप्तम हेनरी ने सामन्तों का दमनकर निरंकुश राज्य स्थापित कर लिया था। फ्रान्स में ग्यारहवें लुई ने भी यही करके समस्त फ्रान्स को राजनीतिक एकता के सूत्र में बाँध लिया था। इसी प्रकार स्पेन में समस्त देश के एकीकरण का कार्य एरेगॉन (Aragon) के शासक फर्डिनेण्ड ने केस्टिल (Castille) की रानी इसाबेला के साथ विवाह करके दोनों राज्यों को सम्मिलित करके किया। जर्मनी में कहने को तो पवित्र रोमन सम्राट् सार्वभौम था परन्तु वह निर्बल था और सभी राज्य प्रायः स्वतन्त्र थे। इसी प्रकार इटली में भी अनेक राज्य थे जो परस्पर झगड़ते रहते थे। इस प्रकार जर्मनी और इटली विभक्त और अशक्त बने रहे जिसका परिणाम यह हुआ कि पश्चिमी योरोप के शक्तिशाली राज्यों को पहले तो इटली में और बाद में जर्मनी में गड़बड़ी मचाने का अवसर मिल गया।

योरोप में आधुनिक युग का आरम्भ इटली पर आधिपत्य जमाने के लिये फ्रान्स और स्पेन की पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता से हुआ। पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त में (१४९४) दोनों में युद्ध आरम्भ हुआ जो कोई ६० वर्ष तक चलता रहा। यह युद्ध बिलकुल व्यर्थ हुआ परन्तु इन युद्धों के फल-स्वरूप हम आधुनिक युग के कुछ विशिष्ट लक्षणों को प्रकट होते हुए देखते हैं। यहीं से सशस्त्र अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा का श्रीगणेश होता है। किसी एक राज्य को अधिक शक्तिशाली बनने से रोकने के लिए उसके विरुद्ध गुट बनाना अर्थात् शक्ति-समतोलन (Balance of Power) के सिद्धान्त का जन्म भी इन युद्धों से ही हुआ। कूटनीति, शक्ति-समतोलन तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार के नियम आदि बातें ऐसी हैं जो आधुनिक युग की विशिष्ट बातें हैं और इस युग को मध्ययुग से अलग करती हैं। मध्ययुग के विश्वराज्य के सिद्धान्त के अन्तर्गत ये बातें असम्भव थीं। इनके साथ ही हम राजनीति का नैतिकता से सम्बन्ध-विच्छेद होता हुआ देखते हैं जिसके दुष्परिणाम आज स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं।*

(इ) धर्म-सुधार (Reformation)

कारण—

जब इस प्रकार योरोप मे मानसिक क्रान्ति हो रही थी और राष्ट्रीय राजा अपनी शक्ति बढ़ा रहे थे, उसी समय धर्म-सुधार का क्रान्तिकारी आन्दोलन

* Strong Dynamic Europe, pp. 139-142

आरम्भ हुआ। नवजागरण के फल-स्वरूप जो नये विचार और नवीन दृष्टिकोण योरोपवासियों को प्राप्त हुए उन्होंने कई प्रकार से विस्फोटक शक्तियों की तरह कार्य किया था। यह कार्य विशेषकर धर्म के क्षेत्र में बड़ा महत्वपूर्ण हुआ। मध्ययुग में लोग चर्च की शिक्षाओं और उसके आदेशों को अटल सत्य मानकर विना मीनमेष के स्वीकार करते थे परन्तु अब नवीन वैज्ञानिक दृष्टिकोण के फल-स्वरूप लोग प्राचीन विचारों, विश्वासों एव संस्थाओं की आलोचना करने लगे और उनमें उन्हें दोष दिखाई देने लगे। पोप तथा पादरियों का जीवन अधिकतर भ्रष्ट एव विलासी होगया था और धर्म में उन्होंने अनेक आडम्बर रच लिये थे जिनमें वास्तविक धर्म छिप गया था। चर्च के पास अपार सम्पत्ति थी परन्तु वह उस पर राज्य को कोई कर नहीं देता था। पादरी लोग ज़मीदार भी थे और वे कृषकों पर अत्याचार करते थे। राजाओं के सामन्त होते हुए भी उन पर राजाओं का कोई अधिकार नहीं था। पोप शासनकार्य में भी हस्तक्षेप करते थे। ये सब बातें राजाओं को और जनता को अखरती थीं और वे अब उन्हें सहन करने को तैयार नहीं थे। इस प्रकार इन दिनों साधारण जनता में चर्च के प्रति असन्तोष बढ़ रहा था। चर्च के अन्दर भी सच्चे ईसाई पोप तथा पादरियों के अनाचार तथा धार्मिक आडम्बर एवं कुरीतियों के कारण असन्तुष्ट थे और चर्च का सुधार करना चाहते थे। हम देख चुके हैं कि चौहदवीं शताब्दी से चर्च के इन दोषों के विरुद्ध आवाज़ उठने लगी थी। विक्लिफ, हस तथा सेवानरोला की चर्चा हम इसी सम्बन्ध में ऊपर कर चुके हैं।

मार्टिन ल्यूथर—

इस विरोध ने धीरे-धीरे धर्म-सुधार आन्दोलन का रूप धारण कर लिया। इस आन्दोलन की वास्तविक नींव डालने वाला एक जर्मन सन्यासी तथा बिटेनवर्ग विश्वविद्यालय का दर्शनाचार्य मार्टिन ल्यूथर (१४८३–१५४६) था। वह बड़ा ही धार्मिक व्यक्ति था और चर्च की बुराइयों से बड़ा असन्तुष्ट था। वह रोम में पोप के विलासी जीवन की झाँकी देख चुका था और उसमे सुधार करना चाहता था। १५१७ में उसे एक अवसर मिला। उस वर्ष पोप का एक दूत टेटजेल मुक्तिपत्र (Indulgences)† बेचता हुआ विटेनवर्ग पहुँचा। ल्यूथर ने उसका विरोध किया। इस पर पोप ने उसे रोम बुलाया परन्तु उसने

---

† यदि कोई ईसाई पाप करता था और सच्चे हृदय से उस पाप को स्वीकार करके नियमित प्रायश्चित करता था तो पादरी उसे मुक्तिपत्र दे देते थे

जाने से इन्कार कर दिया। पोप ने उसे धर्म-बहिष्कृत कर दिया परन्तु ल
को जर्मनी के कई शासकों का, विशेषकर सेक्सनी के शासक का, समर्थन
था और उसका पोप कुछ न बिगाड़ सका। धीरे-धीरे ल्यूथर के अनुया
की संख्या बढ़ती गई। अनेक राजाओं ने, जो चर्च के वैभव तथा सम्पि
ईर्ष्या की दृष्टि से देखते थे और उसकी सम्पत्ति छीनकर अपनी शक्ति ब
चाहते थे, इस आन्दोलन का समर्थन किया और बहुत शीघ्र ही योरोप
ईसाई जनता दो भागों में विभक्त होगई। पोप के समर्थक 'रोमन केथोरि
और उसके विरोधी 'प्रोटेस्टेएट' कहलाये।

केल्विन—

चर्च के दोषों से असन्तुष्ट और पोप विरोधी सुधारकों में ल्यूथर
अतिरिक्त दो महान् सुधारक और थे—ज़्विग्ली तथा केल्विन। ज़्विग्ली का प्रभ
तो अधिक नहीं रहा परन्तु केल्विन के अनुयायी अनेक थे। केल्विन ल्यू
की अपेक्षा कहीं अधिक कट्टर तथा विशुद्धतावादी था। धीरे धीरे सम
(पश्चिमी) योरोप में ल्यूथर और केल्विन के विचारों का प्रचार बढता गय
कई राजा-महाराजाओं ने धर्म-सुधार आन्दोलन की आड़ लेकर चर्च की सम्प
छीन ली और अपने राज्य में पोप के धार्मिक आधिपत्य का अन्त कर वे स्व
राज्य के चर्च के अधिपति बन गये। इस प्रकार कुछ तो लोगों की धर्म-सुधार की हार्दि
इच्छा और कुछ राजाओं के स्वार्थ के कारण प्रोटेस्टेएट धर्म ने बड़ी उन्नति की
ल्यूथर के अनुयायी उत्तरी जर्मनी के राज्यों में अधिक थे। वहाँ से उसके मत
प्रचार नॉर्वे, स्वीडन तथा हॉलैएड में हुआ। फ्रान्स, स्कॉटलैएड, बेल्जिय
स्विट्जरलैएड, पोलेएड तथा हंगरी में केल्विन के मत का प्रचार अधिक हुआ।
इंगलैएड में धर्मसुधार ने राजनीतिक रूप ग्रहण किया। वहाँ का राजा अष्ट
हेनरी अपनी पत्नी केथरीन का परित्याग करना चाहता था परन्तु जब पोप
उसके लिये अनुमति न दी तो वह रोम से अपना सम्बन्ध-विच्छेद करके स्व
इंगलैएड के चर्च का अधिपति बन गया। वहाँ कई वर्ष तक धार्मिक स्थि
अनिश्चित रही परन्तु सोलहवीं शताब्दी के अन्त में महारानी एलिजाबेथ प्रोटे
स्टेएट तथा केथोलिक चर्च के मध्यवर्ती एंग्लिकन चर्च की स्थापना कर
धार्मिक झगड़े का अन्त करके शान्ति स्थापित कर सकी। दक्षिणी जर्मनी, इटल
तथा स्पेन रोम के चर्च के अनुयायी बने रहे।

जिसका आशय यह होता था कि मृत्यु के बाद उस पाप का दण्ड नहीं मिलेगा
पोप ऐसे मुक्तिपत्र द्रव्य एकत्रित करने के लिये बेचा करता था।

धर्म-सुधार आन्दोलन की प्रतिक्रिया (Counter-Reformation)—

ल्यूथर वास्तव में रोम के चर्च से सम्बन्ध-विच्छेद करने का इच्छुक नहीं था परन्तु घटनाचक्र कुछ ऐसा चला कि उसे रोम के चर्च से अलग होना पड़ा और वह रोमन चर्चविरोधी आन्दोलन का प्रवर्तक बन गया। रोमन चर्च में अनेक सच्चे ईसाई ऐसे थे जो उसकी कुरीतियों का निवारण कर चर्च का अन्दर से ही सुधार चाहते थे। प्रोटेस्टेण्ट धर्म की तीव्र प्रगति को देखकर वे बड़े चिन्तित हुए और स्वयं पोप तथा पवित्र रोमन सम्राट् को भी रोमन चर्च मे कुछ आवश्यक सुधार करके प्रोटेस्टेण्ट धर्म की प्रगति को रोकने की चिन्ता हुई। इस उद्देश्य से ट्रेण्ट नामक स्थान पर एक धार्मिक सभा हुई (१५४५-१५६३) जिसमे धर्म के सिद्धान्तों की परिभाषा और व्याख्या की गई। मोटी-मोटी बुराइयों को दूर किया गया और पादरियों तथा सन्यासियों के जीवन को सुधारने के लिये कठोर अनुशासन के नियम बनाये गये। अनेक धर्म-प्रचारक संस्थाएँ भी धर्म-प्रचार का कार्य करने लगीं जिसमे 'जीसस का समाज' अथवा जेसुइट समाज (Jesuit Society) प्रमुख था। इसका संस्थापक स्पेननिवासी एक अवकाशप्राप्त सैनिक इग्नेटियस लायोला (Ignatius Loyola) था। इस समाज में बड़े उत्साही कार्य-कर्ता थे। इसने शिक्षा तथा धर्म-प्रचार द्वारा कैथोलिक धर्म की बड़ी सेवा की। इसके साथ ही पोप ने कैथोलिक धर्म के शत्रुओं को दण्ड देने के लिये एक विशेष धार्मिक न्यायालय (Inquisition) की स्थापना की जिसने स्पेन तथा इटली में हजारों व्यक्तियों को जीवित दशा में ही अग्नि में होमकर धर्म-द्रोह का दण्ड दिया।

सांस्कृतिक नवजागरण तथा धर्म-सुधार आन्दोलन ने मध्ययुग का अन्त कर दिया। उस युग में जैसा आप देख चुके हैं जीवन पर धर्म और चर्च का बड़ा प्रभाव था। इन दोनों आन्दोलनों ने पश्चिमी योरोप के ऊपर धर्म का जो पूर्ण अधिकार था और पोप का समस्त यूरोप का नेतृत्व करने का जो दावा था उन दोनों का अन्त कर दिया। अब पश्चिमी योरोप की सभ्यता अधिकाधिक धर्म-निरपेक्ष होती गई और राष्ट्रीय राज्यों का उत्थान बड़ी तेजी से होने लगा। अभी तक ईसाई धर्म-ग्रन्थ लेटिन भाषा में होते थे और जनता में शिक्षा का अभाव था। फलतः साधारण लोग उन ग्रन्थों को पढ़ नहीं पाते थे और पादरियों के चगुल में फँसे रहते थे। अब प्रादेशिक भाषाओं की उन्नति होने लगी, मुद्रणकला के प्रचार से पुस्तकें छपने लगी, बाइबिल के भी प्रादेशिक

भाषाओं में अनुवाद छपे, गिरजाघरों में उपासना भी प्रादेशिक भाषाओं में होने लगी और धर्म, जिस पर अभी तक पादरियों का एकाधिकार था, अब वास्तव में लोकप्रिय बन गया। सामाजिक जीवन नैतिक दृष्टि से अधिक उन्नत होगया। सम्पन्न मठों के टूट जाने से राष्ट्रीय राज्यों की सम्पत्ति और शक्ति बढी। जीवन के व्यापार आदि अन्य क्षेत्रों में भी जो बन्धन थे वे हट गये। इस प्रकार धर्म-सुधार आन्दोलन ने चर्च के शिकजे को तोड़कर धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक जीवन को मुक्त कर दिया। परन्तु आरम्भ में तो इस आन्दोलन ने योरोप में बड़ी अशान्ति मचादी। वह युग धार्मिक कट्टरता एव असहिष्णुता का था। इसके कारण प्रत्येक राज्य में धार्मिक युद्धों का आरम्भ हुआ जिनमें अन्य देश के राजा प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सहायता करते थे। पोप भी जहाँ-तहाँ इन युद्धों को प्रोत्साहन देते रहते थे। रोमन केथोलिक प्रोटेस्टेएट राजा के राज्य में और प्रोटेस्टेएट रोमन केथोलिक राजा के राज्य में बुरी तरह से सताये जाते थे और उन पर बड़े-बड़े अत्याचार किये जाते थे। राजाओं पर से पोप का डर उठ जाने से वे निरंकुश होगये, और योरोप में सर्वत्र राजाओं का निरकुश राज्य स्थापित होगया। इस प्रकार कुछ समय तक तो इस आन्दोलन के फल-स्वरूप बड़ी अशान्ति फैली और राजनीतिक तथा सांस्कृतिक उन्नति रुक गई। फिर भी सब कुछ देखते हुए धर्म-सुधार आन्दोलन ने योरोप के पुनरुत्थान में और आधुनिक योरोप के निर्माण में बडी सहायता की।

(ई) तीस-वर्षीय युद्ध (१६१८–४८)

धर्म-सुधार आन्दोलन के फल-स्वरूप जो अनेक धार्मिक युद्ध हुए उनमें से सबसे महत्वपूर्ण और युगान्तरकारी युद्ध जर्मनी* का तीस-वर्षीय युद्ध था। आप पढ़ चुके हैं कि उत्तरी जर्मनी के राजा प्रोटेस्टेएट थे और दक्षिणी जर्मनी के केथोलिक। दोनों सम्प्रदाय एक दूसरे के शत्रु थे परन्तु आरम्भ में ऑस्ट्रिया के सम्राट् (जो पवित्र रोमन सम्राट् भी था और इस प्रकार जर्मनी के समस्त राज्यों का अधिराज था) की सहिष्णुता एव उदारता की नीति के कारण कोई गड़बड़ नहीं हुई। किन्तु दोनों में तनाव बढ़ रहा था जिसका परिणाम यह हुआ कि १६१८ में जब बोहीमियावालों ने सम्राट् की इच्छा के विरुद्ध पेलेटिन

* उन दिनो जर्मनी आजकल की भाँति एक राज्य नहीं था। वह सारा प्रदेश जिसमें जर्मन भाषा बोली जाती थी जर्मनी कहलाता था। उसका अधिकांश पवित्र रोमन साम्राज्य में था और ऑस्ट्रिया भी उसमें सम्मिलित था।

के शासक (Elector) फ्रेडरिक को, जो प्रोटेस्टेण्ट राजाओं के संघ का नेता था, अपना शासक चुन लिया तो उनमें युद्ध छिड़ गया जो ३० वर्षों तक चलता रहा। इस लम्बे युद्ध का असली कारण तो धार्मिक तनाव था परन्तु इसके पीछे मुख्यतः राजनीतिक एवं आर्थिक हित काम कर रहे थे। सम्राट् अपनी शक्ति बढाना चाहता था और जर्मनी के छोटे-छोटे राजा अपनी स्वतन्त्रता कायम रखना चाहते थे। यह युद्ध आरम्भ मे जर्मनी का धार्मिक गृह-कलह मात्र था परन्तु धीरे-धीरे इसका रूप बदल गया और अन्त में यह धार्मिक हितों के स्थान पर राजवंशों के हितों का युद्ध बन गया जिनमें एक ओर ऑस्ट्रिया के हेप्सबुर्ग (Hapsburg) तथा दूसरी ओर फ्रान्स के बूर्वों (Bourbon) राजवंश एक दूसरे का नाश करने पर कटिबद्ध थे।* प्रोटेस्टेण्ट पक्ष को जर्मनी के बाहर डेनमार्क, स्वीडन तथा फ्रान्स से भी सहायता मिली और कैथोलिक पक्ष को स्पेन ने सहायता दी।

परिणाम—

इस युद्ध में दोनों ओर से बड़ी बर्बरता एवं नृशंसता बरती गई और जर्मनी का सर्वनाश होगया। परन्तु इसके परिणाम स्वरूप धार्मिक कलह का युग समाप्त होगया। इतने विनाश के बाद योरोपवालों की ऑखें खुलीं। उन्हें धार्मिक कलह की व्यर्थता मालूम होगई और सहिष्णुता की आवश्यकता अनुभव होने लगी। अभी तक इस युग की घटनाओं का आधार मुख्यतः धर्म था परन्तु अब धर्म के नाम पर युद्ध बन्द होगये और राजवशीय हितों एव राष्ट्रीय सीमाओं के विस्तार के लिये अन्तर्राष्ट्रीय युद्धों का युग आया।

वेस्टफेलिया की सन्धि—

वेस्टफेलिया की सन्धि (१६४८) से इस युगान्तरकारी युद्ध का अन्त हुआ। राजनीतिक दृष्टि से इस युद्ध के बड़े महत्वपूर्ण परिणाम हुए। जर्मनी का आर्थिक विनाश तो हो ही चुका था। इस सन्धि से राजनीतिक दृष्टि से भी उसके खण्ड-खण्ड होगये। वहाँ छोटे-बड़े सब प्रकार के कोई ३५० स्वतन्त्र राज्य स्वीकार कर लिये गये। अभी तक पवित्र रोमन साम्राज्य की जैसी-जैसी कुछ स्थिति थी परन्तु अब उसमें कोई वास्तविकता नहीं रही। इस बात के बड़े महत्वपूर्ण परिणाम हुए। जब तक योरोप में एक राज्य–पवित्र साम्राज्य या हेप्सबुर्ग वंशीय साम्राज्य–ऐसा था जो अन्य समस्त राज्यों से प्रतिष्ठा और बल में श्रेष्ठ था तब तक आधुनिक राज्य-

---

* C. J. H. Hayes · A Political and Cultural History of Modern Europe, Vol I, p. 273.

व्यवस्था, जिसमें सभी राज्य समान कोटि के समझे जाते हैं, स्थापित नहीं हो सकती थी। अब यह साम्राज्य अपनी श्रेष्ठता खोकर अन्य राज्यों के समान एक साधारण राज्य रह गया और योरोप की आधुनिक राज्य-व्यवस्था के निर्माण का मार्ग तैयार होगया।* इसके अतिरिक्त ऑस्ट्रिया के हेप्सबुर्ग वंशीय शासकों ने उत्तरी जर्मनी की ओर से ध्यान हटाकर अपने साम्राज्य के जर्मनी के बाहर के प्रदेशों की ओर ध्यान देना आरम्भ किया जिससे आगे चलकर प्रशा के प्रधान मंत्री बिस्मार्क के लिये प्रशा के नेतृत्व में समस्त जर्मनी का राजनीतिक एकीकरण का मार्ग तैयार होगया। इस सन्धि से उत्तरी जर्मनी के ब्रेण्डनवर्ग राज्य† को राइन नदी की ओर के कई प्रदेश मिल गये। उत्तरी जर्मनी में वह सबसे बड़ा राज्य होगया और ऑस्ट्रिया का सबसे प्रबल प्रतिद्वन्द्वी बन गया। फ़्रान्स को एलसास (Alsace) प्रान्त मिला जिससे उसकी सीमा भी राइन नदी तक पहुँच गई और उसे अपनी सीमा के विस्तार के लिये प्रोत्साहन मिला। इस प्रकार इस युद्ध ने जर्मनी और फ़्रान्स के भावी संघर्ष का बीज बो दिया। इसी सन्धि के अनुसार हॉलैण्ड‡ तथा स्विट्ज़रलैण्ड की स्वतन्त्रता भी स्वीकार करली गई। हॉलैण्ड अब उन्नति के पथ पर आगे बढ़ा और शीघ्र ही योरोप में एक प्रमुख नाविक शक्ति बन गया। स्वीडन को भी उत्तरी जर्मनी में कुछ प्रदेश मिले और कुछ समय के लिये वह योरोप के शक्तिशाली राष्ट्रों में गिना जाने लगा परन्तु उसकी शक्ति शीघ्र ही क्षीण होगई और योरोपीय राजनीति में उसका कोई विशिष्ट स्थान नहीं रहा। इस युद्ध के परिणामस्वरूप स्पेन की शक्ति का भी ह्रास हुआ और उसका स्थान योरोपीय राज्यों में गौण रह गया। जर्मनी की दुर्दशा तथा स्पेन के ह्रास से फ़्रान्स को अपनी सैनिक उच्चाकाक्षाओं की उन्नति का अवसर मिला जिससे चौदहवें लुई ने और आगे चलकर नेपोलियन ने पूरा पूरा लाभ उठाया। इस युद्ध के बाद का समय फ़्रान्स के उत्कर्ष का समय था।§

---

* Ibid., p. 274.

† आगे चलकर यही राज्य ब्रेण्डनवर्ग-प्रशा, फिर केवल प्रशा और अन्त में जर्मनी के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

‡ हॉलैण्ड स्पेन के साम्राज्य में था। उसके निवासी प्रोटेस्टेण्ट थे। उन्होंने स्पेन के विरुद्ध विद्रोह कर दिया था और बड़े घोर संघर्ष के बाद १५८१ में वे स्वतन्त्रता प्राप्त कर चुके थे।

§ Fisher : A History of Europe, p 630

इस प्रकार सांस्कृतिक नव-जागरण तथा धर्म-सुधार युगान्तरकारी आन्दोलन सिद्ध हुए। नव-जागरण ने योरोप को परस्पर लड़ते हुए अनेक खण्डों में विभक्त कर दिया और धर्मसुधार ने उसके और भी खण्ड-खण्ड कर दिये। नव-जागरण के फल-स्वरूप जो युद्धों का पहला सिलसिला आरम्भ हुआ उसने इटली को निर्बल कर दिया और उसकी राजनीतिक एकता दीर्घकाल के लिये असंभव करदी। ल्यूथर के विरोध से युद्धों का जो दूसरा सिलसला आरम्भ हुआ उससे स्पेन का पतन होगया और नीदरलैंण्ड के दो खण्ड होगये जिनमें से एक (हॉलैंड) स्वतंत्र होगया। तीसरे युद्ध ने जर्मनी का सर्वनाश कर दिया और उसे एक शताब्दी के लिये अशक्त एवं दयनीय बना दिया। परन्तु जहाँ इटली और जर्मनी की यह दुर्दशा हुई वहाँ फ़्रांस, इङ्गलैण्ड तथा हॉलैण्ड के उत्कर्ष के दिन आये। उन्होंने समुद्र पार अपने बड़े-बड़े साम्राज्य क़ायम कर लिये।

जहाँ नव-जागरण ने योरोप में युग-परिवर्तन कर दिया, वहाँ उसने एक महान् सामुद्रिक क्रान्ति भी उपस्थित करदी। पन्द्रहवीं शताब्दी के अधिकांश में बड़ी-बड़ी महत्वपूर्ण समुद्रयात्राएँ हुईं जिनके कारण नये नये प्रदेश खोज निकाले गये। इन यात्राओं का आरम्भ तो केवल पूर्वी देशों के लिये नया सामुद्रिक मार्ग ढूढ निकालने के लिये हुआ था, क्योंकि तुर्कों के कारण पश्चिमी एशिया का मार्ग संकटापन्न और प्रायः बन्द हो गया था, परन्तु इनके परिणाम बड़े क्रान्तिकारी हुए।

इन यात्राओं का पहला परिणाम तो नये नये देशों की खोज में प्रकट हुआ। थोड़े ही समय में साहसी नाविकों ने ऑस्ट्रेलिया को छोड़ कर समस्त ससार को खोज निकाला। एक बार नये नये देशों की खोज हो जाने पर उन देशों में उपनिवेश बसाने का क्रम आरंभ हुआ जिसमे स्पेन तथा पोर्तुगाल अग्रणी रहे। स्पेनवाले पश्चिम की ओर गये और उन्होंने मध्य तथा दक्षिणी अमेरिका पर अधिकार कर लिया। पोर्तुगालवाले पूर्व की ओर गये और उन्होंने भारत महासागर पर अपना प्राधान्य स्थापित कर लिया। परन्तु उन देशों का एकाधिकार बहुत दिनों तक स्थायी न रह सका। शीघ्र ही फ़्रान्स, इंगलैण्ड तथा हॉलैण्ड मैदान में आगये। पश्चिम की ओर उन्होंने उत्तरी अमेरिका में अपने उपनिवेश बसाये और वे पूर्व की ओर भी व्यापार करने के लिये जा पहुचे।

मध्ययुग के अन्त में व्यापार की उन्नति के फलस्वरूप योरोप में नगरों तथा मध्य-वर्ग का उत्थान आरम्भ हो गया था। इन यात्राओं और उपनिवेशों

के बस जाने के कारण व्यापार में अत्यधिक वृद्धि हुई और नगरों तथा मध्य-वर्ग की और भी उन्नति हुई। मध्य-वर्ग विशेषतः व्यापारिक तथा व्यावसायिक लोगों का था और इस विस्तार को उसी से प्रोत्साहन मिला था। स्पेन तथा पोर्तुगाल में मध्य-वर्ग अधिक नहीं पनपा और यह समस्त प्रयास अधिकांश में राज्य की ओर से हुआ था। इस कारण वे इस विस्तार से अधिक लाभ नहीं उठा सके और धीरे धीरे दौड़ में पिछड़ गयें। महाद्वीप के मध्यवर्ती तथा पूर्वी देश नये सामुद्रिक मार्गों से दूर होने के कारण सामुद्रिक व्यापार तथा विस्तार में भाग न ले सके। केवल फ्रान्स, इंगलैण्ड तथा हॉलैण्ड ही ऐसे देश थे जिनमें व्यावसायिक हित प्रधान थे और मध्य-वर्ग की सम्पत्ति तथा प्रभाव में वृद्धि हो रही थी। इसी वर्ग ने आगे चल कर राजनैतिक क्रान्ति का नेतृत्व किया और जनतन्त्र की स्थापना का आरम्भ किया। इन नये मार्गों की खोज से व्यापार का मार्ग बदल गया और भूमध्यसागर तथा उसके तट पर बसे हुए वेनिस तथा जिनोआ जैसे बड़े बड़े व्यापारी नगरों की अवनति हो गई। उनका स्थान लन्दन तथा एण्टवर्प जैसे नगरों ने ले लिया और अटलांटिक महासागर के तट पर बसे हुए देशों (स्पेन, पोर्तुगाल, फ्रान्स, हॉलैन्ड तथा इंगलैण्ड) का महत्व बढा।

निरंकुश शासन का युग (१६४८-१७८९)

तीस-वर्षीय युद्ध ने मध्यकालीन योरोप का बिल्कुल अन्त कर दिया और उसके आगे की शताब्दी में निरकुश शासकों के शासन में योरोप का नवनिर्माण हुआ और उसकी आधुनिक राज्य-व्यवस्था स्थापित हुई। वेस्टफेलिया की सन्धि के बाद के डेढसौ वर्षों में योरोप में प्रत्येक देश में निरंकुश शासन का विकास हुआ और शासकों की आक्रामक नीति के फल-स्वरूप सर्वत्र बड़ी अशान्ति रही जिसके परिणाम अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण तथा उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के क्रान्तिकारी परिवर्तनों में प्रकट हुए। हम यहाँ इस युग के प्रमुख राज्यों के सम्बन्ध में कुछ मुख्य बातों की चर्चा करेंगे।

फ्रान्स—

इस युग का सबसे प्रबल राज्य फ्रान्स था। धर्मसुधार आन्दोलन के फल-स्वरूप वहाँ वर्षों तक भीषण गृह-कलह मच रहा था परन्तु १५९८ में चतुर्थ हेनरी ने वहाँ के प्रोटेस्टेण्टों को स्वतन्त्रता देकर राज्य में शान्ति स्थापित की और अपने प्रतिभाशाली मन्त्री सली (Sully) की सहायता से अनेक सुधार करके उसे समृद्ध एवं शक्तिशाली राज्य बना दिया था। तीस वर्षीय युद्ध से उसकी स्थिति और भी अच्छी हो गई थी जिससे लाभ उठा कर चौदहवें लुई (१६६१-१७१५) ने फ्रान्स
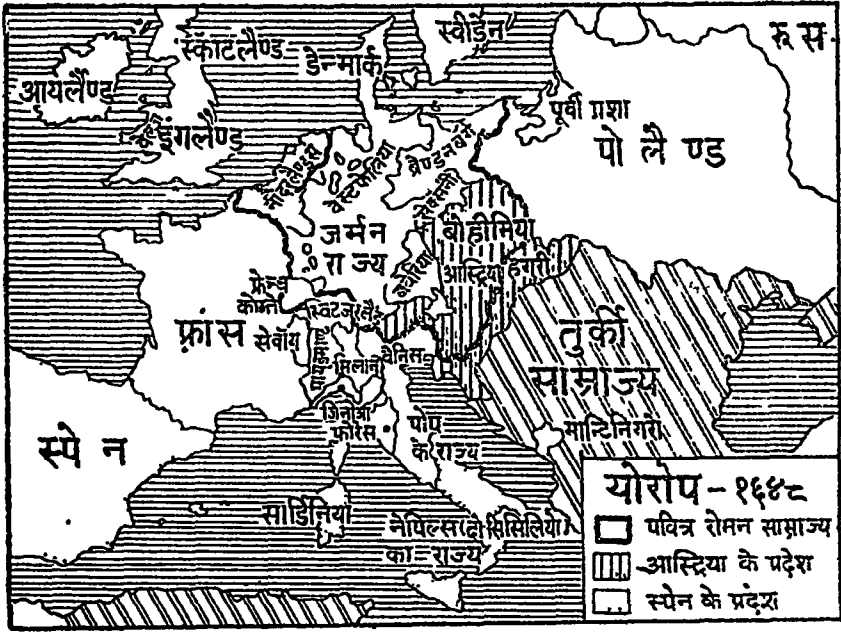
स्कॉटलैण्ड
डेन्मार्क
स्वीडन
रूस
आयलैण्ड
इंगलैण्ड
पूर्वी प्रशा
पोलैण्ड
जर्मन राज्य
बोहीमिया
आस्ट्रिया
हंगरी
फ्रान्स
स्विटजरलैंड
सेवॉय
मिलान
वेनिस
तुर्की साम्राज्य
स्पेन
पोप के राज्य
मान्टिनिग्रो
सार्डिनिया
नेपिल्स (दो सिसिलियों) का राज्य
योरोप - १६४८
पवित्र रोमन साम्राज्य
आस्ट्रिया के प्रदेश
स्पेन के प्रदेश

योरोप का प्रमुख राज्य बना दिया, यहाँ तक कि उसके शासन का समय रोपीय इतिहास में चौदहवें लुई का युग (Age of Louis XIV) कहलाता । उसने अपने लम्बे शासनकाल में अपने राज्य को उसकी प्राकृतिक सीमाओं राइन, आल्पस तथा पिरेनीज पर्वत) तक पहुँचाने के लिये चार बड़े युद्ध किये जनमें उसे स्पेन, ऑस्ट्रिया, हॉलैण्ड तथा इंगलैण्ड के विरोध का सामना करना ड़ा। लुई अन्त में विफल हुआ परन्तु इन युद्धों के बड़े महत्वपूर्ण परिणाम हुए। जहाँ इन युद्धों से अन्य राज्यों को लाभ पहुँचा, वहाँ फ्रान्स को बड़ी क्षति पहुँची। उसकी आर्थिक दशा ख़राब हो गई, राज्य का ऋण बहुत बढ गया और उसकी प्रतिष्ठा कम होगई। जनता में भी असतोष बढने लगा। उसका उत्तराधिकारी पन्द्रहवाँ लुई (१७१५-१७७४) आलसी और विलासी था। उसके मत्री भी योग्य नहीं थे और दरबार के विलासी जीवन तथा युद्धों के फल-स्वरूप फ्रान्स की आर्थिक दशा उत्तरोत्तर बिगड़ती रही। उसे दो महान् युद्धों—ऑस्ट्रिया के उत्तराधिकार के युद्ध (१७४०-४८) तथा सप्तवर्षीय युद्ध (१७५६-१७६३)—में भाग लेना पड़ा जिससे फ्रान्स की बड़ी क्षति हुई। फ्रान्स का सबसे प्रबल शत्रु इगलैण्ड था जिसने उसे महाद्वीप में फंसाये रखा और उसके साम्राज्य का बहुत बड़ा भाग (जिसमें उत्तरी अमेरिका में स्थित कनाडा भी था) छीन लिया। १७७४ में उसका पोता सोलहवाँ लुई सिंहासन पर बैठा। उसने उत्तरी अमेरिका के अंग्रेजी उपनिवेशों को इगलैण्ड के विरुद्ध सहायता दी और पुरानी पराजय का प्रतिशोध किया। इससे फ्रान्स की प्रतिष्ठा तो कुछ बढ़ी परन्तु उसकी आर्थिक दशा बिलकुल ही बिगड़ गई जिसके परिणाम-स्वरूप १७८९ में महान् राज्यक्रान्ति हुई और फ्रान्स मे पुरानी व्यवस्था (Ancient Regime) का अन्त हुआ।

इंगलैंड—

इगलैण्ड ने ट्यूडर वंश के शासन-काल (१४८५–१६०३) में अच्छी उन्नति करली थी। सप्तम हेनरी ने सामन्तों का दमन करके सुदृढ निरंकुश शासन की नीव डाली। अष्टम हेनरी ने यह कार्य जारी रखा और रोम के चर्च से इंगलैण्ड के चर्च का सबन्ध तोड़ कर तथा मठों की सम्पत्ति छीनकर वह स्वय चर्च का अध्यक्ष बन गया। इस प्रकार वहाँ धर्म-सुधार आन्दोलन शुरु हुआ। बीच में मेरी ट्यूडर (१५५३–१५५८) ने पोप से क्षमा मांग कर इंगलैण्ड के चर्च पर फिर से पोप का आधिपत्य स्थापित कर दिया परन्तु यह सम्बन्ध स्थायी नहीं रहा और एलिजबेथ (१५५८–१६०३) ने फिर से पोप से सम्बन्ध-विच्छेद करके मध्यवर्ती एंग्लिकन चर्च की स्थापना की।

एलिजवेथ के विरुद्ध केथोलिकों ने कई षड्यंत्र किये और स्पेन के केथोलिक राजा द्वितीय फ़िलिप ने भी आक्रमण किया परन्तु १५८८ में स्पेन की पराजय हुई और एलिज़वेथ निष्कंटक हो गई। इतना ही नहीं इससे इगलैण्ड की प्रतिष्ठा भी बढ़ी और उसकी समुद्रिक शक्ति बढ़ने लगी। ट्यूडरवश के बाद स्टुअर्ट वंशीय राजाओं ने भी निरकुश शासन करना आरंभ किया परन्तु अब इंगलैण्ड की जनता निरकुश शासन सहने को तैयार नहीं थी। अतः राजा और पार्लामेण्ट में सघर्ष होने लगा। प्रथम चार्ल्स के समय में यह संघर्ष तीव्र होगया और उसमें तथा पार्लामेण्ट में युद्ध छिड गया। आठ नौ वर्ष तक यह युद्ध चलता रहा। अन्त में चार्ल्स हारा। शक्ति सेना के हाथ मे पहुँच गई जिसने उसे मृत्युदण्ड दिया (१६४६)। इसके बाद कुछ समय तक इंगलैण्ड में गणतंत्रीय शासन रहा परन्तु शीघ्र ही सेनानायक क्रॉमवेल ने सारी शक्ति अपने हाथ मे लेली और कुछ वर्ष तक इगलैण्ड क्रॉमवेल के सैनिक शासन मे रहा। परन्तु इगलैण्ड की जनता इसे सहन न कर सकी। १६६० में उसने चार्ल्स के लड़के द्वितीय चार्ल्स को, जो भाग कर फ्रान्स चला गया था, वापस बुला लिया। स्टुअर्ट वशीय राजा कैथोलिक थे और वे येन केन प्रकारेण इंगलैण्ड में केथोलिक धर्म की पुनः स्थापना करना चाहते थे। इसी प्रश्न पर तनाव बढा और द्वितीय जेम्स १६८८ में सिंहासन छोड़ कर भाग गया। पार्लामेण्ट के नेताओं ने उसकी पुत्री मेरी को, जिस का हॉलैण्ड के शासक विलियम से विवाह हुआ था, उसके पति सहित बुलाया और उन दोनों को सयुक्त शासक बनाकर सिंहासन पर बिठा दिया। यह घटना इंगलैण्ड के इतिहास मे 'रक्तहीन क्रान्ति के' नाम मे प्रसिद्ध है। इसके फल-स्वरूप इंगलैण्ड में राजा के अधिकार सीमित होगये और वैधानिक शासन का युग आरभ हुआ। १७१४ में स्टुअर्ट वश का अन्त होगया और जर्मनी का हेनोवर वंशीय प्रथम जॉर्ज राजा बनाया गया। उसकी माता प्रथम जेम्स की सेवती थी।

इस युग में इंगलैण्ड ने अपनी सामुद्रिक शक्ति खूब बढ़ाई और एक बड़ा साम्राज्य स्थापित कर लिया। उसने योरोपीय राजनीति में भी भाग लिया और समय समय पर बननेवाले गुटों में भी सम्मिलित हुआ। परन्तु वह सदा फ्रान्स का विरोधी रहा। महाद्वीपीय शक्ति होने के कारण फ्रान्स तो महाद्वीप में ही उलझा रहा और इंगलैड ने उसके साम्राज्य का बहुत बड़ा भाग छीन लिया। फ्रान्स की सबसे बड़ी हानि अमेरिका में हुई जहॉ सप्तवर्षीय युद्ध के फल स्वरूप कनाडा उसके हाथ से निकल गया (१७६३)।

परन्तु यह विजय इंगलैण्ड को बड़ी मंहगी पड़ी। कनाडा के दक्षिण में अटलांटिक महासागर के पश्चिमी तट पर कई अंग्रेजी उपनिवेश थे जिन पर इंगलैंड कड़ा शासन करता था। जब तक फ्रान्स का उन्हें भय था तब तक तो वे चुप रहे परन्तु जब कनाडा अंग्रेजो के हाथ में चला गया तो वे कड़े शासन के विरुद्ध बिगड़ खड़े हुए। दोनों में युद्ध हुआ। फ्रान्स ने विद्रोही उपनिवेशों का साथ देकर अपनी पराजय का बदला लिया। इंगलैंड परास्त हुआ और उसे अमेरिका मे स्थित उपनिवेशों की स्वतंत्रता स्वीकार करनी पड़ी। इस प्रकार अमेरिका के संयुक्त राज्य का जन्म हुआ (१७८१)। इससे इंगलैंड की प्रतिष्ठा को बड़ी हानि पहुंची परन्तु तृतीय जॉर्ज के सुयोग्य मंत्री छोटे पिट के नेतृत्व मे इंगलैंड ने फ्रेञ्च क्रान्ति के आरंभ के समय तक अपनी पूर्व स्थिति फिर से प्राप्त करली थी। महाद्वीपीय राजाओं के समान तृतीय जॉर्ज भी वैधानिक शासन को अलग हटाकर निरकुश शासन स्थापित करना चहता था परन्तु उसका यह उद्देश्य सफल न होसका।

ऑस्ट्रिया—

महाद्वीप मे फ्रान्स का सबसे बड़ा शत्रु ऑस्ट्रिया था। फ्रान्स के बूर्वों वशीय राजा तथा ऑस्ट्रिया के हेप्सबुर्ग वशीय राजा सदा एक दूसरे का विनाश करने का प्रयत्न करते रहते थे। ऑस्ट्रिया के शासक पवित्र रोमन साम्राट्* भी हुआ करते थे। सम्राट् की हैसियत से सम्पूर्ण साम्राज्य पर उसका प्रभुत्व था परन्तु यह प्रभुत्व केवल नाम मात्र का था। साम्राज्य के अन्तर्गत जितने राज्य थे वे सब प्रायः स्वतत्र थे। स्वयं ऑस्ट्रिया का राज्य भी काफी विशाल था जिसमें अनेक जाति के लोग रहते थे। राज्य का मुख्य भाग स्वयं ऑस्ट्रिया था जिसमें जर्मन लोगों का निवास था। इसी भाग में ऑस्ट्रिया की राजधानी वियना थी। इसके उत्तर की ओर बोहीमिया तथा मोरेविया के प्रदेश थे जिनमें मुख्यतः चेक जाति के लोग रहते थे। पूर्व की ओर हंगरी का राज्य था जिसमे मगयार जाति प्रधान थी। उसकी स्थिति एक पृथक् राज्य के समान थी। उसकी शासन-व्यवस्था पृथक् थी परन्तु उसका राजा ऑस्ट्रिया का राजा ही होता था। मगयार लोगों

---

* पवित्र रोमन सम्राट् का पद वंशानुगत नहीं था। जर्मनी के सात बड़े राज्यों (जिनकी संख्या आगे चल कर आठ हो गई थी) के शासक उसका निर्वाचन करते थे। इसी कारण वे शासक इलेक्टर (Elector) कहलाते थे। परन्तु कई शताब्दियों तक कुछ ऐसा रहा कि इस पद पर सदा ऑस्ट्रिया के हेप्सबुर्ग वशीय राजा ही चुने जाते रहे।

के अतिरिक्त इस प्रदेश में रुमानियन, क्रोट तथा सर्व जाति के लोगों की संख्या काफी थी। आल्प्स पर्वत के दक्षिण में मिलान का प्रदेश भी ऑस्ट्रिया के अधिकार में था। वहाँ इटालियन लोग निवास करते थे जो सब प्रकार से अन्य लोगों से भिन्न थे। इन सब प्रदेशों के अतिरिक्त बेल्जियम का प्रदेश भी ऑस्ट्रिया के अधीन था जिसके निवासी कुछ तो फ्रेञ्च जाति के और कुछ फ्लेमिश थे। यह प्रदेश उसे स्पेन से प्राप्त हुआ था। इस प्रकार ऑस्ट्रिया का राज्य 'भानमती का कुनबा' था। विविध जातियों के जो लोग उसमें रहने थे वे सन्तुष्ट नहीं थे। उनका असन्तोष राज्य की निर्बलता का एक बहुत बड़ा कारण था।

सत्रहवीं शताब्दी के मध्य तक ऑस्ट्रिया योरोप का प्रमुख राज्य था किन्तु वेस्टफेलिया की सन्धि के बाद से उसका प्राधान्य जाता रहा। जर्मनी मे वास्तविक सत्ता स्थापित करने के उद्देश्य में निराश होकर अब हेप्सबुर्ग वशीय राजाओं ने जर्मनी के बाहर के प्रदेशों को सगठित करने तथा पूर्व की ओर तुर्की के साम्राज्य को हड़पने का विचार किया। परन्तु इसके साथ ही वे फ्रान्स के बूर्बों वश से अपनी शत्रुता को न भुला सके। अतः अब उनका उद्देश्य पूर्व की ओर अपने राज्य का विस्तार करना और फ्रान्स की शक्ति को कुचलना बन गया। फ्रेञ्च क्रान्ति के समय ऑस्ट्रिया के सिंहासन पर सम्राट् छठे चार्ल्स (१७११-४०) की कन्या मेरिया थिरीसा (१७४०-६५) का पुत्र द्वितीय जोजेफ (१७६५-१७६०) था। चार्ल्स के कोई पुत्र नहीं था। इस कारण उसने योरोप के विभिन्न राजाओं से मेरिया थिरीसा को अपनी उत्तराधिकारिणी मानने का वचन लिया। परन्तु चार्ल्स की मृत्यु के बाद प्रशा के शासक महान् फ्रेडरिक ने उससे साइलेशिया प्रान्त छीन लिया। जोजेफ बड़ा योग्य शासक था। उसका मुख्य उद्देश्य अपने राज्य के अन्तर्गत जाति, धर्म तथा भाषा के समस्त भेदों को मिटाकर उसका एकीकरण करना और उस पर निरकुश शासन करना था। वह निरकुश शासक तो था परन्तु वह प्रजा का हित चाहता था। उसने कई सुधार भी किये परन्तु उन सुधारों से प्रजा का सन्तुष्ट होना तो अलग रहा, उल्टे असन्तोष बढता गया। सदाशय एव प्रबुद्ध (Enlightened) होते हुए भी उसने प्रशा और रूस से मिलकर पोलेण्ड के प्रथम विभाजन (१७७२) में भाग लिया और उसका बहुत सा भाग अपने राज्य मे शामिल कर लिया। उसने रूस की तुर्की के विभाजन की योजना में सहयोग दिया और उससे सन्धि करके १७८८ में तुर्की के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करदी। फ्रेञ्च क्रान्ति के आरंभ के समय यह युद्ध चल रहा था।

प्रशा—

पवित्र रोमन साम्राज्य में ऑस्ट्रिया के अतिरिक्त छोटे-बड़े कोई ३५० राज्य थे जिनमें से प्रशा, बेवेरिया, हैनोवर, सेक्सनी आदि बड़े थे। इनमें से सबसे मुख्य और शक्तिशाली प्रशा का राज्य था। वेस्टफेलिया की सन्धि के अनुसार इसके राज्य का काफी विस्तार हो गया था। प्रशा के राजा हॉहेनत्सॉलर्न वंश के थे। इस युग में इस वंश का सबसे प्रतिभाशाली राजा महान् फ्रेडरिक था (१७४०-८६) जिसने प्रशा को शक्तिशाली बनाकर योरोप के एक प्रमुख राज्य के पद पर ला बिठाया। उसने अपनी सेना का बड़ा अच्छा संगठन किया और उसके बल पर राज्य का काफी विस्तार किया। ऑस्ट्रिया से उसने साइलेशिया का प्रान्त छीन लिया और पश्चिमी प्रशा का प्रदेश भी अपने राज्य में मिला लिया। वह भी द्वितीय जोजेफ के समान प्रजा का हितैषी तथा निरकुश शासक था। वह अपने आप को अपनी प्रजा का प्रथम सेवक कहता था। परन्तु राज्य-विस्तार के लिये वह किसी भी साधन का प्रयोग करने में नहीं हिचकता था। १७७२ में उसने रूस तथा ऑस्ट्रिया से मिलकर पोलैण्ड का प्रथम विभाजन किया और उसका एक बहुत बड़ा भाग हड़प लिया। उसने प्रशा को जर्मनी में ऑस्ट्रिया का प्रबल प्रतिद्वन्द्वी बना दिया और सदा उसके मनसूबों को विफल करने का प्रयत्न करता रहा।

रूस—

सत्रहवीं शताब्दी के अन्त तक रूस एक बर्बर एशियाई राज्य समझा जाता था परन्तु महान् पीटर (१६८९-१७२५) के अनेक सुधारों के फल-स्वरूप वह एक आधुनिक राज्य बनकर योरोप के राजनीतिक क्षेत्र में प्रविष्ट हुआ। वह रूस की सीमा का बाल्टिक सागर तथा काले सागर तक विस्तार करना चाहता था। बाल्टिक सागर तक तो उसने रूस की सीमा पहुँचा दी थी परन्तु वह दक्षिण की ओर नहीं बढ सका था। यह काम द्वितीय केथरीन (१७६२-९६) ने पूरा किया। उसने ऑस्ट्रिया तथा प्रशा से मिलकर पोलैण्ड के प्रथम विभाजन में भाग लिया और तुर्की से युद्ध करके अपनी सीमा काले सागर तक पहुँचा दी और क्रीमिया प्रायद्वीप पर अधिकार कर लिया। फ्रेञ्च क्रान्ति के आरंभ-काल में वह ऑस्ट्रिया से मिलकर तुर्की से युद्ध करने में संलग्न थी।

इस समय के अन्य राज्य स्पेन, पुर्तगाल, हॉलैण्ड, डेन्मार्क, स्वीडन, तथा स्विट्जरलैण्ड थे। इटली जर्मनी की भाँति ही कई राज्यों में विभक्त था और उस पर फ्रान्स तथा आस्ट्रिया का प्रभाव था। दक्षिण-पूर्व में तुर्की साम्राज्य था जिसकी ओर रूस और ऑस्ट्रिया की आँखें लगी हुई थीं। प्रशा, ऑस्ट्रिया तथा रूस

से घिरा हुआ पोलेण्ड का बड़ा किन्तु निर्बल राज्य था जिसका बहुत सा भाग इन तीनों पड़ौसी राज्यों ने १७७२ में हड़प लिया था।

शासन-व्यवस्था—

इस युग में अधिकांश राज्यों में शासन का प्रचलित रूप निरकुश एकतन्त्र था। प्रायः सर्वत्र सामन्त-पद्धति विद्यमान् थी परन्तु उसका रूप विकृत हो चुका था। सामन्तों को उनके विशेषाधिकार तो प्राप्त थे परन्तु उनके कर्तव्य बन्द हो चुके थे। अब वे राजा के आज्ञाकारी चाटुकार दर्बारी थे। वे ही राजा के परामर्श-दाता थे और उसके आदेशानुसार वे ही शासन-संचालन करते थे। स्वभावतः शासन राजा और इन्हीं थोड़े से व्यक्तियों के हित में होता था और जनता के कल्याण की ओर किसी का ध्यान नहीं था। प्रजातन्त्र का कहीं नाम भी नहीं था। इङ्गलैण्ड में, तथा वेनिस, जिनोआ जैसे गणतंत्रों में भी यही दशा थी। वहाँ शासन का रूप प्रजातन्त्रीय अवश्य था, परन्तु शासन कुलीनों तथा उच्च वर्गों के हित में ही होता था। अठारहवीं शताब्दी में महान् फ्रेडरिक, द्वितीय जोजेफ, द्वितीय केथरीन जैसे कुछ शासक निरकुश होते हुए भी सदाशय तथा इस समय प्रचलित नवीन विचारों से प्रभावित थे और उन्हें प्रजा के हित का ध्यान था। उन्होंने कुछ सुधार भी किये परन्तु इस सम्बन्ध में अपनी प्रजा से परामर्श करना चाहिये यह बात उन्हें नहीं सूझती थी।

शासन में निपुणता बिलकुल नहीं थी। अत्याचार तथा भ्रष्टाचार का बोलबाला था। उसमें जनता की स्वतन्त्रता तथा उसके आर्थिक, बौद्धिक एवं नैतिक कल्याण के लिये कोई स्थान नहीं था। नैतिक दृष्टि से भी शासन बड़ा पतित था। उन दिनों अन्तर्राष्ट्रीय नैतिकता जैसी कोई वस्तु थी ही नहीं। राजा लोग अपने राज्य-विस्तार तथा स्वार्थ-साधन में दूसरों के अधिकारों तथा अपने दिये हुए वचनों की बिलकुल परवाह नहीं करते थे, सन्धियाँ तोड़ने, वचन भंग करने तथा विश्वासघात में उन्हें कोई अनौचित्य नहीं दिखाई देता था। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध का नियमन शक्ति-समतोलन के सिद्धान्त पर होता था जिसके अनुसार यदि कोई राज्य इतना शक्तिशाली होजाता जिससे दूसरे राज्यों की सुरक्षा को भय उत्पन्न होता तो अन्य राज्य उसके विरुद्ध गुट बनाकर उसे दबाने का प्रयत्न करते थे। परन्तु अठारहवीं शताब्दी में यह सिद्धान्त विकृत हो गया और सबल राष्ट्र निर्बल राष्ट्रों को हड़पने के लिये गुट बनाने लगे। १७४० में महान् फ्रेडरिक ने मेरिया थिरीसा से साइलेशिया का प्रान्त छीन लिया। ऑस्ट्रिया, प्रशा तथा रूस ने पोलेण्ड का विभाजन कर लिया। रूस और ऑस्ट्रिया तुर्की को हड़पने का जाल रच रहे थे। सारांश में, राजनीतिक

सदाचार के लिये उन दिनों कोई गुञ्जायश नहीं थी। शासन की इच्छा और बल ही सब कुछ थे। इस प्रकार फ्रेञ्च क्रान्ति के पूर्व योरोप के स्वतंत्र और परस्पर असम्बद्ध राज्य अपने तात्कालिक हित तथा शक्ति-समतोलन सिद्धान्त के अनुकूल अस्थायी गुटों का निर्माण करते हुए और अपने सार्वजनिक जीवन में धर्म के किसी भी नियंत्रण तथा मानवता के प्रति किसी भी दायित्व को अस्वीकार करते हुए अपने हित-साधन में सलग्न थे।* यह सिद्धान्तहीन एवं अनैतिक व्यवस्था योरोपीय इतिहास मे 'पुरातन व्यवस्था' कहलाती है। वास्तव मे यह सिद्धान्तहीन नहीं थी। प्रतिष्ठित एवं परम्परागत पुरातन संस्थाओं का आदर, वैधानिकता तथा सधियों एवं वचनों का पालन तथा अधिकारियों के प्रति भक्ति इस व्यवस्था के आधारभूत सिद्धान्त थे। परन्तु अठारहवीं शताब्दी के शासकों ने इन सिद्धान्तों को उठा कर ताक मे रख दिया था।† ऐसी अवस्था मे कोई राज्य सुरक्षित नहीं था। जो व्यवस्था अपने आधारभूत सिद्धान्त के प्रति इतनी उदासीन हो उसका विनाश अधिक रुक नहीं सकता। फ्रान्स में यह निराधार व्यवस्था क्रान्ति के प्रथम धक्के मे ही ढह गई।

सामाजिक व्यवस्था—जमींदार—

प्रायः सर्वत्र साधारण जनता की दशा अत्यन्त दयनीय थी। अधिकाश जनता गाँवों में तथा छोटे कस्बों मे रहती थी और उसका मुख्य व्यवसाय खेती था। ग्राम्य समाज प्रायः दो परस्पर विरोधी वर्गों—जमींदार और कृषक—मे विभक्त था। जमींदार लोग मध्य-कालीन सामन्तों के वशज थे। बड़े बड़े जमींदारों का रहन सहन बड़े ठाट-बाट का था और राजा तथा राजपरिवार के व्यक्तियो के बाद समाज में उनका स्थान सर्वोच्च था। उन्हे सामन्तीय विशेषाधिकार अब भी उसी प्रकार प्राप्त थे और वे अब भी राजकरों एव दायित्वों से उसी प्रकार मुक्त थे जैसे उनके पूर्वज। किन्तु समाज के प्रति जो कर्तव्य उनके पूर्वज किया करते थे, वे अब नहीं रहे थे। यह परआश्रयी वर्ग समाज के ऊपर भार था और जनता में इसके प्रति बड़ा असतोष था।

कृषक—

कृषक दो प्रकार के थे—स्वतंत्र तथा अर्धदास (Serf)। मध्य योरोप तथा पूर्वी योरोप में अधिकांश कृषक अब भी अर्ध-दास अवस्था मे थे और उन्हें

* Grant and Temperley Europe in the Nineteenth and Twentieth Centuries, p. 10.

† Hazen . Modern European History, p. 28

कानून अथवा रिवाज के अनुसार अब भी अपना बहुत सा समय अपने स्वामी के खेतों में काम करने मे लगाना पड़ता था। जहाँ (जैसे फ्रान्स में) यह अर्ध-दास व्यवस्था (Serfdom) टूट चुकी थी वहाँ भी कृषक करों के अत्यधिक भार से दबे हुए थे। उन्हें राजा को कर देने पड़ते थे, अपने स्वामियों को अनेक प्रकार की भेंट देनी पड़ती थी और चर्च उनसे कई कर वसूल करता था। सब प्रकार के करों को चुकाने के बाद उनके पास इतना ही बचता था कि किसी प्रकार वे जीवित रह सकते थे।

पादरी—

इनके अतिरिक्त समाज मे एक वर्ग पादरियों का था जो स्वय दो श्रेणियों मे विभक्त थे। एक श्रेणी तो बड़े-बड़े ऊँचे पादरियों की थी जो चर्च की अपार सम्पत्ति का उपभोग करते थे और धर्म मे नाता तोड़कर कुलीन रईसों तथा जागीरदारों की तरह विलासमय जीवन व्यतीत करते थे। दूसरी श्रेणी मे असंख्य छोटे-छोटे पादरी थे जो अपने धार्मिक कर्तव्य करते हुए साधारण भिक्षुओं की तरह जीवन व्यतीत करते थे। बड़े पादरियों के समक्ष उनकी स्थिति बड़ी हीन थी। उन्हें अकर्मण्य तथा विलासी बड़े पादरियों के जीवन के मुकाबले में अपनी हीन दशा अखरती थी और वे अपनी स्थिति से बड़े असतुष्ट थे। आप देखेंगे कि फ्रान्स में जब क्रान्ति हुई तो जहाँ बड़े पादरियों ने राजा तथा रईसों का साथ दिया वहाँ निम्न पादरियों ने क्रान्तिकारियों का साथ दिया।

मध्य-वर्ग—

इन वर्गों के अतिरिक्त समाज में एक मध्य-वर्ग था जो नगरों में रहता था। इस वर्ग मे समृद्ध व्यापारी वर्ग तथा वकील, डॉक्टर, सरकारी नौकर, अध्यापक आदि लोग थे। देहात के छोटे जागीरदार तथा बड़े जागीरदारों के छोटेपुत्र-पौत्र भी जिन्हें जागीर का भाग नहीं मिलता था और जो इन्हीं पेशों को करके अपना निर्वाह करते थे, इस वर्ग में शामिल थे। इस वर्ग की आर्थिक स्थिति अच्छी थी और इस दृष्टि से वे कुलीनों (रईसों और जमीदारों) की बराबरी के थे और शिक्षित भी थे परन्तु वे सामाजिक तथा राजनीतिक क्षेत्र में कुलीनों से नीचे थे और उन्हें न उनका सन्मान और न उनके अधिकार ही प्राप्त थे। अतः यह वर्ग बड़ा असन्तुष्ट था और उसके विचार क्रान्तिकारी थे। हम देखेंगे कि आगे चल कर क्रान्ति का नेतृत्व इसी वर्ग ने किया।

नगरों में एक वर्ग शिल्पियों एवं कारीगरों का था। ये लोग अपने घरों पर ही अपने हाथों से या हाथ से चालित मशीनों से काम करके चीजें बनाते थे

और बाजार में स्वयं वेच कर अपना निर्वाह करते थे। सभी व्यवसाय श्रेणियों (Guild) में संगठित थे। प्रत्येक व्यवसाय की एक श्रेणी होती थी जो उस व्यवसाय सम्बन्धी सभी बातों का निर्णय करती थी। माल कैसा बने, कितना बने किस मूल्य पर वेचा जाय आदि सभी बातों का निर्णय श्रेणी करती थी। इस प्रकार व्यवसाय तथा उद्योग-धन्धों में प्रतिस्पर्द्धा नहीं थी और माल अच्छा तैयार होता था। परन्तु जहाँ एक ओर इस श्रेणी-पद्धति के ये गुण थे, वहां दूसरी ओर इसमे अनेक अवगुण भी थे। इस नियंत्रण के कारण कारीगरों को बिलकुल स्वतंत्रता नहीं थी और वे अपनी इच्छानुसार व्यवसाय नहीं कर सकते थे। यह व्यवस्था मध्य-युग से चली आ रही थी।

व्यावसायिक क्रान्ति—

परन्तु अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में एक व्यावसायिक क्रान्ति हो रही थी जिसका श्रीगणेश इंगलैण्ड में कई यान्त्रिक आविष्कारों तथा कोयले के प्रयोग और भाप की शक्ति के अविष्कार के फल-स्वरूप हुआ। इन आविष्कारों के परिणाम-स्वरूप बहुत थोड़े समय में और बहुत बडे परिमाण मे माल तैयार होसकता था। अतः पूंजीपतियों ने बड़े बड़े कारखाने बनाना आरम्भ किया जिनमें वे शिल्पियों को नौकर रख कर बड़ी मात्रा में माल तैयार करने लगे। यह माल सस्ता होता था और अपने ही घरों में अपनी पूंजी और अपने औजारों से काम करने वाले कारीगर उसका मुकाबला नहीं कर सकते थे। ऐसी स्थिति मे श्रेणी-पद्धति ढीली पड़ने लगी थी, परन्तु इससे कारीगरों की दशा सुधरने के स्थान पर और बिगड़ने लगी थी। अब तक वे अपनी पूजी और अपने औज़ारों से माल बनाते थे और उनका लाभ उन्हीं को प्राप्त होता था परन्तु अब यह बात जाती रही और वे पूजीपतियों के क्रीत दास की तरह होने लगे। व्यवसायों की तरह व्यापार की भी दशा अच्छी नहीं थी। यातायात के साधन कम और असन्तोषजनक थे और जगह जगह चुंगी की बाधाएँ थीं। व्यापारियों को अत्यधिक कर देने पड़ते थे और बडी असुविधाओं का सामना करना पड़ता था।

बौद्धिक क्रान्ति—

इधर तो समाज की यह दशा थी और राजा तथा राज्याधिकारी वर्ग अपने स्वार्थ मे रत थे, उधर समाज के एक वर्ग में बिलकुल विपरीत ढग की विचारधारा चल रही थी। इस युग का सबसे क्रान्तिकारी लक्षण राजनीतिज्ञों के व्यवहार तथा उस युग के सर्वोत्तम एव प्रभावशाली विचार का घोर विरोध

है।* अठारहवीं शताब्दी में एक बौद्धिक आन्दोलन चल रहा था। दार्शनिक, वैज्ञानिक तथा विचारक मध्यकालीन अन्धविश्वासों से मुक्त होकर स्वतन्त्र रूप से विचार करने लगे थे और प्रत्येक बात को बुद्धि की कसौटी पर कसते थे। वे पहले से चली आई हुई राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक तथा न्यायिक संस्थाओं की तर्क तथा उनकी उपयोगिता के आधार पर परीक्षा करते थे और उनके दोषों का उद्घाटन कर समाज का ध्यान उनकी ओर आकर्षित करते थे। ऐसे विचारक प्रायः सभी देशों में थे परन्तु उनमें सबसे मुख्य फ्रान्स के विचारक थे।† इनके विषय में आप अगले अध्याय में पढ़ेंगे। ऐसे विचारक मुख्यतः मध्यम वर्ग के थे और वे ही सुधार की मांग करने में सबसे आगे थे। ऐसे विचार धीरे धीरे विशेषाधिकारभोगी वर्ग को भी प्रभावित कर रहे थे और कुछ कुलीन तथा पादरी लोग भी सुधार के पक्षपाती हो चले थे। ऊपर हम बतला चुके हैं कि अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में प्रशा का द्वितीय फ्रेडरिक, ऑस्ट्रिया का द्वितीय जोजेफ, रूस की द्वितीय केथरीन आदि कुछ शासक भी ऐसे हुए जो प्रजा के कष्टों का निवारण करना चाहते थे और जिन्होंने अपने राज्यों में कई प्रकार के सुधार भी किये। इस बौद्धिक क्रान्ति तथा मध्यम वर्ग के उत्थान के फल-स्वरूप योरोपीय समाज में भारी परिवर्तन अनिवार्य सा हो रहा था। कुछ समय तक तो प्रायः सभी देशों में ऐसा मालूम होता था मानों प्रबुद्ध मध्यम वर्ग तथा प्रबुद्ध कुलीनों एवं पादरियों के समर्थन से प्रबुद्ध राजाओं द्वारा शनैः शनैः किये हुए सुधारों द्वारा ही यह परिवर्तन हो जायगा। केवल फ्रान्स में ही यह शंका करने के लिये कारण विद्यमान् था कि वहां शायद सुधार के पहले क्रान्ति हो जाय।§

---

* Grant and Temperley Europe in the Nineteenth and Twentieth Centuries, p 10.

† F. Schevill A History of Europe, p. 369.

§ C. J H Hayes A Political and Cultural History of Modern Europe, Vol I, p 588

फ्रैञ्च राज्यक्रान्ति

(१७८९–१७९९)

अध्याय ४

राज्यक्रान्ति के पूर्व फ्रान्स की दशा

पिछले अध्याय में आप देख चुके है कि अठारहवीं शताब्दी की बौद्धिक क्रान्ति तथा मध्यम वर्ग के उत्थान के फल-स्वरूप योरोपीय समाज में महान् परिवर्तन अनिवार्य हो रहा था। उसका आरम्भ १७८६ मे फ्रान्स में एक महान् क्रान्तिकारी घटना के साथ हुआ जिसने योरोप की 'पुरातन व्यवस्था' (Ancient Regime) की जड़ हिला दी। यह घटना फ्रान्स की प्राचीन सभा एस्टेट्स-जनरल (Estates-General) का १७५ वर्ष बाद होनेवाला अधिवेशन और उससे आरम्भ होने वाली फ्रान्स की महान् क्रान्ति थी। यह क्रान्ति सामन्तवाद की जीर्ण शीर्ण सामाजिक व्यवस्था, वर्गीय विशेषाधिकार तथा निरंकुश शासन एव नौकरशाही के विरोध का तथा मनुष्य मात्र की समानता के दावे और अधिकार के नवीन सिद्धान्तों के आधार पर मानव समाज के नव-निर्माण के प्रयत्न का साकार रूप था।*

सोलहवाँ लुई—

उन दिनों फ्रान्स में सोलहवें लुई का शासन था जो १७७४ में अपने पितामह की मृत्यु के बाद बड़ी कठिन परिस्थिति में सिंहासन पर आरूढ हुआ। कोष खाली था और चौदहवें तथा पन्द्रहवें लुई के समय का ऋण राज्य पर लदा हुआ था। प्रति वर्ष राज्य का व्यय आमदनी से अधिक हो रहा था और राजपरिवार तथा दरबार के अनापशनाप खर्च में किसी प्रकार की कमी नहीं हो रही थी। आय करों से ही बढ सकती थी परन्तु जिन लोगों से कर लिया जाना वे पहले से ही करों के अत्यधिक भार से पिसे जा रहे थे और उन पर कर बढ़ाना असम्भव था। ऐसी कठिन परिस्थिति में किसी सुयोग्य समझदार तथा निर्भीक राजा की आवश्यकता थी परन्तु सोलहवाँ लुई ऐसी परिस्थिति का सामना करने के बिलकुल अयोग्य था। वह सज्जन था, उसके इरादे अच्छे थे और उसमें कर्त्तव्य की भावना भी थी। वह एक उदार प्रबुद्ध शासक की भाँति शासन करने का इच्छुक था और सुधार करके प्रजा का हित करना चाहता था। परन्तु सिंहासन पर बैठने के समय उसकी अवस्था २० वर्ष की भी नहीं थी। उसे शिक्षा भी उचित नहीं मिली थी। इसके अतिरिक्त वह डरपोक एवं अस्थिरचित्त था

---

* Ramsay Muir : A Short History of the British Common-Wealth, Vol. II, p. 149.

और उसकी निर्णयशक्ति अत्यन्त दुर्बल थी। वह दूसरों के प्रभाव में बड़ी सरलता से आजाता था। समस्त बूर्बों राजाओं के समान उस पर भी उसकी पत्नी मेरी ऑत्वानेत (Marie Antoinette) का बड़ा भारी प्रभाव था। मेरी ऑस्ट्रिया की सम्राज्ञी मेरिया थिरीसा की सुन्दरी पुत्री थी। उसकी इच्छाशक्ति बड़ी दृढ़ थी, उसमें साहस था, और वह तुरन्त निर्णय भी कर सकती थी। इस प्रकार जो गुण राजा में नहीं थे वे उसमें विद्यमान् थे परन्तु उसमें भी इतनी योग्यता नहीं थी कि शासन की समस्याओं को समझ सकती और उनका समाधान कर सकती। उसे अपने आमोद-प्रमोद से मतलब था। वह सदा लोभी चाटुकारों से घिरी रहती थी जो उस समय की व्यवस्था से लाभ उठाते थे और इसी कारण सुधार के शत्रु थे। वह शासन-कार्य में हस्तक्षेप करती रहती थी, मन्त्रियों की नियुक्ति में दखल देती थी और सदा षड्यंत्रों में लगी रहती थी जिसके परिणाम सदा फ्रान्स के हित के विपरीत होते थे। इन कारणों से तथा उसके विलासमय जीवन एव अत्यधिक खर्चीले रहन-सहन से राज्य की कठिनाइयाँ बढती रहीं। *

आर्थिक स्थिति को सुधारने का प्रयत्न—

सिंहासन पर बैठते ही लुई ने राज्य की आर्थिक व्यवस्था का भार एक सुयोग्य एव साहसी अर्थ-मंत्री तुर्गो (Turgot) को सौंपा (१७७४-७६)। उसकी आर्थिक नीति संक्षेप में थी—'दिवालियापन, कर-वृद्धि तथा ऋण इन तीनों का निषेध।' † उसने राज्य की आर्थिक व्यवस्था को सुधारने के लिये खर्च में कमी करने तथा सार्वजनिक सम्पत्ति की उन्नति करने का निश्चय किया जिससे राज्य की आमदनी में वृद्धि हो। अपने दूसरे उद्देश्य की सिद्धि के लिये उसने अन्न के व्यापार पर जितने भी नियंत्रणकारी कानून थे उन्हें रद्द कर दिया और अनाज का व्यापार स्वतंत्र कर दिया। व्यवसायों की उन्नति के लिये श्रेणियों (Guilds) का दमन कर दिया गया, किसानों से जो बेगार ली जाती थी वह बन्द करदी गई, उनसे जो काम लिया जाता था उसके लिये उनको मजदूरी देने और उसके लिये समस्त भूमिपतियों से कर लेने की व्यवस्था की गई। इन सुधारों से व्यापार तथा उद्योग-धन्धों को लाभ हुआ और कर-व्यवस्था में भी कुछ समानता आई परन्तु इससे वे लोग बड़े क्रुद्ध हुए जो उन दूषित कानूनों से लाभ उठाते थे और उन्होंने इन सुधारों का विरोध किया। इसके साथ ही अपने प्रथम उद्देश्य की

* Hassall : The Balance of Power, p. 403.

† Hazen The French Revolution, vol. I, p. 116.

पूर्ति के लिये उसने कई अनावश्यक खर्चों को बन्द कर दिया और ऐसा करने में कई ऐसे पद तोड़ दिये जिनके लिये भारी वेतन दिये जाते थे परन्तु जिनका काम कुछ नही था। ऐसे लोग राजा तथा रानी के कृपापात्र थे। वे भी विरोध में शामिल हो गये। राजा ने इस विरोध का पहले तो सामना किया परन्तु अन्त में दब कर उसने तुर्गो को बरखास्त कर दिया।

अब उसने नेकर (Necker) को अपना अर्थ-मंत्री बनाया (१७७६-१७८१)। उसने आरंभ में कुछ छोटे छोटे सुधार करके कुछ बचत की परन्तु १७७८ में फ्रान्स ने इगलैंड के विरुद्ध अमेरिकन उपनिवेशों का साथ देना शुरू किया। युद्ध का खर्च बहुत था और उसकी व्यवस्था ऋण से ही की जा सकती थी। ऋण की व्यवस्था की गई, परन्तु उसके अत्यधिक व्याज के भार से दशा और भी खराब हो गई। इस पर नेकर ने तुर्गो की योजना पर काम करना आरभ किया जिस पर विरोधियों ने फिर शोर मचाया और राजा को १७८१ में उसे भी बरखास्त करना पड़ा।

नेकर के बाद केलोन (Calonne) अर्थ-मंत्री बनाया गया। वह राजदरबार का कृपापात्र था। पहले तो उसने दरबार को प्रसन्न करने के लिये भारी-भारी ऋण लिये परन्तु अन्त में ऋण देनेवाला भी कोई नहीं रहा और उसने फ्रान्स की समस्त जनता पर एक सामान्य कर लगाने का प्रस्ताव किया। विशेषाधिकारयुक्त वर्गों ने उसका भी विरोध किया और उसने त्यागपत्र दे दिया (१७८६)। उसके बाद के अर्थमंत्री ब्रिएँन (Lomenie de Brienne) की भी यही दशा हुई। जब उसने नये करों का प्रस्ताव किया तो पेरिस की पार्लमाँ (न्यायालय) ने उसका विरोध किया, और इस सिद्धान्त पर कि कर वही लगा सकते हैं जिन्हें उन करों को देना पड़ता है, एस्टेट्स-जनरल के अधिवेशन की मांग की। पहले तो राजा ने पार्लमाँ को धमकाने का प्रयत्न किया, परन्तु, जब उसने राजा के आदेश का भी पालन नहीं किया और वह अपनी मांग पर अड़ी रही तथा देश में भी उस माग का अधिकाधिक समर्थन होने लगा तो राजा ने दबकर १ मई १७८६ को एस्टेट्स-जनरल का अधिवेशन बुलाया। तुर्गो की मृत्यु हो चुकी थी। उसके बाद सुधारकों मे नेकर ही मुख्य था। राजा ने उसे वापस बुलाकर अपना मुख्य मंत्री बनाया।

एस्टेट्स-जनरल का अधिवेशन—एक क्रान्तिकारी घटना—

एस्टेट्स-जनरल का अन्तिम अधिवेशन १६१४ में हुआ था और अब १७५ वर्ष बाद उसका अधिवेशन फिर होना था। इस संस्था में कुलीन वर्ग

(Nobility), पादरी वर्ग (Clergy) तथा सर्वसाधारण जनता (Tiers-Etat=Third Estate or Commons) के प्रतिनिधि हुआ करते थे। प्रत्येक वर्ग के प्रतिनिधि अलग-अलग भवनों में बैठते थे और अलग-अलग विचार करते तथा मत देते थे। दो भवनों की अनुमति किसी बात की स्वीकृति के लिये पर्याप्त थी। इस सभा का काम केवल राजा को परामर्श देना था। वह न कानून बना सकती थी और न आय-व्यय पर ही उसका नियन्त्रण था। वह बिलकुल राजा की इच्छा पर निर्भर थी। उसका अधिवेशन करना या न करना उसी की इच्छा पर था। यह सभा फ्रान्स की पुरातन व्यवस्था का ही एक अंग थी और वैसे देखा जाय तो इसका अधिवेशन बुलाने में पुरातन व्यवस्था को कोई चोट नहीं पहुँचती थी। परन्तु १६१४ के बाद से राजाओं ने उससे कभी परामर्श नहीं लिया और उसका कभी अधिवेशन नहीं किया; राजा लोग उसके बिना ही कार्य करते रहे। इस प्रकार वह एक मृत संस्था हो चुकी थी। परन्तु अब विवश होकर राजा को उसका अधिवेशन करना पड़ा जिसका स्पष्ट अर्थ यह था कि अब राजा का निरकुश शासन असफल हो चुका था और उसे अब जनता के प्रतिनिधियों के परामर्श की आवश्यकता थी। यदि जनता के प्रतिनिधि केवल परामर्श देकर और आर्थिक कठिनाइयों का हल बता कर बिदा हो जाते तो कोई क्रान्ति नहीं होती। परन्तु, जैसा आप आगे देखेंगे, जनता के प्रतिनिधियों ने केवल परामर्श देने से इन्कार कर के अपने भाग्य का निर्माण अपने ही हाथों में ले लिया और पुरातन व्यवस्था का अन्त कर दिया। इस प्रकार वैधानिक दृष्टि से एक साधारण घटना होते हुए भी एस्टेट्स-जनरल के अधिवेशन का यह निमंत्रण स्वय एक क्रान्तिकारी घटना था। एस्टेट्स-जनरल के अधिवेशन के साथ ही फ्रेंञ्च राज्यक्रान्ति आरम्भ होती है।

क्रान्ति के कारण—

अठारहवीं शताब्दी मे कुछ अपवादों को छोड़ प्रायः समस्त योरोप की राजनीतिक, आर्थिक एव सामाजिक दशा एकसी थी, परन्तु यह क्रान्ति फ्रान्स में सर्वप्रथम क्यों हुई इसका समुचित उत्तर प्राप्त करने के लिये फ्रान्स की तत्कालीन परिस्थिति की मुख्य-मुख्य बातों पर दृष्टि डालना आवश्यक है।

पुरातन व्यवस्था—

उस समय का सम्पूर्ण समाज सामन्तवादी आधार पर श्रेणि-बद्ध था, जिसमें ऊपर से नीचे तक विभिन्न श्रेणियाँ थीं, जिनमें से प्रत्येक के वैधानिक

अधिकार, सुख प्राप्त करने तथा उन्नति करने के अवसर तथा शक्ति आदि भिन्न-भिन्न थे।

निरंकुश एकतंत्र—

इस व्यवस्था में सबसे ऊपर राजा था जिसका पद वंशक्रमानुगत होता था। उसका दावा दैवी अधिकार से शासन करने का था और वह ईश्वर को छोड़ अपने आपको किसी के प्रति उत्तरदायी नहीं समझता था। अतः शासन में वह अत्यन्त निरंकुश था और उसकी इच्छा ही कानून थी जिसका उल्लघन करना प्रजा के लिये दैवी आदेश के उल्लंघन करने के समान पाप था। वह अपनी इच्छानुसार कानून बनाता था, प्रजा से कर वसूल करता था और अपनी इच्छा के अनुसार ही राजकीय आय को खर्च करता था। किसी भी देश से युद्ध या सन्धि करना उसकी इच्छा पर निर्भर था। इन बातों में उसे अपनी प्रजा से परामर्श करने की कोई आवश्यकता नहीं थी। वह अपने राज्य मे जिसे चाहता कैद कर सकता था और बिना उस पर मुकदमा चलाये चाहे जो सज़ा दे सकता था। राजा ही नहीं, उसका कोई भी कृपापात्र इस अधिकार का उपभोग कर सकता था। इसके लिये उसे केवल राजा की मुद्रा वाले पत्र (Letters de Catchet) की आवश्यकता थी। ऐसे पत्र राजा की ओर से किसी व्यक्ति को गिरफ्तार करने और उसे दण्ड देने के लिये जारी किये जाते थे। परन्तु राजा के कृपापात्र ऐसे मुद्रायुक्त पत्र प्राप्त कर लेते थे जिनमे गिरफ़्तार किये जाने वाले व्यक्ति के नाम का स्थान खाली रहता था। जिसको वे गिरफ़्तार करना चाहते उसका नाम उसमें लिखकर वे उसे गिरफ्तार करवा लेते और अपनी इच्छानुसार उसे सजा दे देते थे। ऐसी अवस्था में किसी भी व्यक्ति की स्वतन्त्रता सुरक्षित नहीं थी और न न्याय की ही वह आशा कर सकता था। सारांश में, राज्य के समस्त अधिकार राजा के हाथों में थे और वह अत्यन्त निरंकुश एवं स्वेच्छाचारी था। इंगलैण्ड की पार्लामेंण्ट के समान उस पर किसी प्रकार का भी अंकुश लगानेवाली जनता के प्रतिनिधियों की कोई सभा नहीं थी। इस प्रकार की एक सभा अवश्य थी जिसका नाम एस्टेस्ट्स-जनरल (Estates-General) था, परन्तु उसका अन्तिम अधिवेशन १६१४ मे हुआ था और अब तो लोग यह भी नहीं जानते थे कि उसका संगठन कैसा था। यदि कोई संस्था ऐसी थी जो राजा के स्वेच्छाचार पर कुछ अंकुश लगा सकती थी तो वह थी पार्लमॉ (Parlement) जो संख्या में तेरह थीं। वे इंगलैण्ड की पार्लामेण्ट की तरह नहीं थीं। वे न्यायालय थीं। उनके न्यायाधीश वे लोग थे जिन्होंने इन पदों को खरीद

कर कुलीनता प्राप्त करली थी। ये पद वंशक्रमानुगत होगये थे। न्याय करने के अतिरिक्त उनका एक कार्य राजा के नये कानूनों की अपने रजिस्टरों में रजिस्ट्री करना था। कोई भी कानून जब तक वह इस प्रकार रजिस्टर में लिख नहीं लिया जाता था तब तक लागू नहीं किया जा सकता था। इन न्यायालयों में पेरिस का न्यायालय सबसे महत्त्वपूर्ण था। वह प्रायः नये क़ानूनों को दर्ज करने से इन्कार कर देता था। परन्तु यदि बाद में राजा आदेश देता था तो उसे उस क़ानून की रजिस्ट्री करनी पड़ती थी। इस प्रकार राज्य का सारा जीवन राजा की मुट्ठी मे था। जनता उसके विरुद्ध किसी प्रकार की आवाज भी नहीं उठा सकती थी क्योंकि भाषण, लेखन तथा प्रकाशन पर उसने जबरदस्त प्रतिबन्ध लगा रखे थे।

राजा का विलासी जीवन—

राजा का जीवन भी अत्यन्त शानशौकत का और खर्चीला था। अपने परिवार तथा असख्य रईसों, अनुचरों तथा कर्मचारियों सहित पेरिस से १२ मील दूर वार्साय (Versailles) नामक नगर में वह एक भव्य विशाल प्रासाद में रहता था। उसके दरबार में १८ हजार आदमी थे जिनमें से १६००० तो उसके तथा उसके परिवार के सेवक ही थे और शेष २००० दरबारी लोग, मेहमान और राजा की सेवा में रहने वाले चाटुकार सामन्त होते थे। राजा के पास रहने वाले सामन्त भी रहन-सहन मे उसी के आदर्श का अनुकरण करते थे। १७८६ मे राजा के इस ठाट-बाट, आमोद-प्रमोद तथा विलासी जीवन का खर्च ६ करोड़ रुपये के लगभग था। इतना ही नहीं, अपने इस अपार खर्च के साथ वह अपने कृपापात्रों को बड़े-बड़े पारितोषिक, पेन्शन आदि दिया करता था। अनुमान किया जाता है कि सोलहवें लुई ने क्रान्ति के पूर्व के अपने शासन के १५ वर्ष में इस प्रकार ३० करोड़ रुपया लुटाया था।* बेचारी प्रजा की गाढी कमाई का पैसा इस तरह पानी की तरह बहाया जाता था।

अव्यवस्थित शासन—

शासन भी बड़ा अक्षम, अव्यवस्थित और खर्चीला था। शासन का प्रमुख राजा था। उसकी सहायता के लिये पॉच समितियॉ होती थीं जो क़ानून बनाती थीं, राज्यादेश निकालती थीं और राज्य का समस्त आन्तरिक एवं बाह्य कार्य-सचालन करती थीं। यह व्यवस्था तो राजधानी में थी। प्रान्तीय शासन के लिये समस्त देश दो प्रकार के प्रान्तों मे बॅटा हुआ था। एक प्रकार

* Hazen : Modern European History, p. 34.

के प्रान्त तो गवर्नमेण्ट कहलाते थे। उनकी संख्या ४० थी और उनमें से अधिकांश फ्रान्स के प्राचीन प्रान्त थे। उनका शासन में कोई भाग नहीं होता था। उनके गवर्नर उच्च वर्ग के कुलीन लोग होते थे जो मोटी तनख्वाह पाते थे और राजधानी में राजा की सेवा में ऐश करते थे। शासन का वास्तविक कार्य दूसरे प्रकार के ३६ प्रान्तों में होता था जो जनरेलिटी (Generality) कहलाते थे। प्रत्येक जनरेलिटी में राजा द्वारा नियुक्त एक कर्मचारी होता था जो इन्टेन्डेण्ट (Intendent) कहलाता था। ये कर्मचारी मध्य-वर्ग के लोग हुआ करते थे और राजा के आदेशों का पालन करते थे। उन्हें जनता की आवश्यकताओं की ओर ध्यान देने की बिलकुल स्वतंत्रता नहीं थी। फलतः वे और उनके अधीन कार्य करनेवाले कर्मचारी जनता में बड़े अप्रिय थे। सरकारी पदों पर नियुक्ति योग्यता के आधार पर नहीं होती थी। कुलीन तथा अमीर लोग उन्हें ख़रीद लेते थे और उन्हें सम्मान तथा अपनी आय बढाने के साधन समझते थे। जनता की सेवा से उन्हें कोई मतलब नहीं था। स्थानीय स्वशासन का तो नाम भी नहीं था, स्थानीय कर्मचारियों को जरा-जरा सी बातों के लिये राजधानी से आदेश प्राप्त करना पड़ता था। इस प्रकार शासन में जनता का कहीं भी कोई हाथ नहीं था जिससे उसे किसी प्रकार की राजनैतिक शिक्षा या अनुभव प्राप्त होता। यही कारण है कि क्रान्ति-काल में जब जनता ने शासन-सूत्र अपने हाथ में लिया तो उसने भयकर भूलें कीं।*

इस प्रकार फ्रान्स का शासन अत्यन्त केन्द्रित था परन्तु उसमें एकरूपता नहीं थी। देश का शासन एक व्यक्ति के हाथ में होते हुए भी उसके भिन्न-भिन्न प्रान्तों मे भिन्न-भिन्न प्रकार के कानून थे। सारे देश में कानूनी रिवाजों के २८५ भिन्न-भिन्न सग्रह थे जो भिन्न-भिन्न भागों में प्रचलित थे। देश के विभिन्न भागों में कर भी भिन्न-भिन्न प्रकार के थे।

आर्थिक व्यवस्था—

राज्य की आर्थिक दशा भी दयनीय थी। राज्य की आम्दनी का एक बड़ा भाग तो राजा पर खर्च होता ही था, और समस्त राष्ट्रीय आय का आधा राज्य के ऋण के व्याज में चला जाता था। प्रति वर्ष आय से व्यय अधिक होता था और राज्य का काम ऋण लेकर चलाया जाता था। बात यह नहीं थी कि राज्य की आमदनी बढ नहीं सकती थी। आय करों से होती थी परन्तु राज्य की कर-व्यवस्था असमानता और पक्षपात के सिद्धान्त पर निर्मित होने के कारण

* Ibid., p. 36.

अत्यन्त दूषित थी। कर दो प्रकार के थे—प्रत्यक्ष और परोक्ष। प्रत्यक्ष कर जायदाद, व्यक्तिगत सम्पत्ति तथा आय पर लिये जाते थे। कुलीन वर्ग और पादरी इनमें से कुछ करों से तो बिलकुल मुक्त थे और शेष करों से प्राय: मुक्त थे, क्योंकि कर निर्धारण करने वाले राज्य-कर्मचारी डर कर उन पर नाम मात्र का कर लगाया करते थे। उसकी सारी कमी शेष जनता पर कर लगा कर पूरी की जाती थी और इस प्रकार उस पर करों का अत्यधिक भार था। कुलीन वर्ग और पादरी जो सम्पन्न थे रुपये में तीन आने भी कर नहीं देते थे जब कि मध्य-वर्ग के व्यक्ति से प्राय: दसगुना वसूल कर लिया जाता था। परोक्ष करों में मुख्य कर नमक, शराब, तमाखू आदि पर लिये जाने वाले थे। इनमें से नमक-कर बड़ा ही दु:खदायी था। नमक के व्यापार का एकाधिकार एक कम्पनी ने राज्य से खरीद रखा था और कानून के अनुसार सात वर्ष से अधिक अवस्था वाले प्रत्येक व्यक्ति को वर्ष में सात पौंड नमक अवश्य खरीदना पड़ता था। इसे वह खाने के काम में ही ला सकता था। पशुओं को खिलाने तथा अन्य कामों के लिये उसे अतिरिक्त नमक खरीदना पड़ता था। कम्पनी मनमाने भाव पर नमक बेचती थी और जो व्यक्ति नमक की नियमित मात्रा नहीं खरीदता था उसे राज्य से दण्ड मिलता था।* केवल नमक-कर का ही यह हाल नहीं था। प्रत्येक कर की वसूली ठेकेदार करते थे जो राज्य को एक निश्चित रकम देकर कर वसूल करने का अधिकार प्राप्त कर लेते थे और मनमानी रकम वसूल करते थे। इस प्रकार राज्य की कर-व्यवस्था अत्यन्त असन्तोषजनक एवं अन्यायपूर्ण थी। जो सम्पन्न थे वे कुछ नहीं या बहुत कम देते थे और गरीबों का बुरी तरह शोषण होता था। इससे जनता तो असन्तुष्ट थी ही, साथ ही राज्य के कोष में राष्ट्रीय आय का जो उचित भाग पहुँचना चाहिये था, वह नहीं पहुँच पाता था। अतः राज्य का सदा दिवालिया बना-रहना कोई आश्चर्य की बात नहीं थी।

दूषित कर-व्यवस्था के फल-स्वरूप राज्य जनता की सम्पत्ति का राष्ट्रीय कामों के लिये उपयोग नहीं कर सकता था। उसकी वाणिज्य नीति भी ऐसी थी जिससे राज्य में सम्पत्ति की उत्पत्ति भी पूरी तरह से नहीं हो पाती थी। फ्रेञ्च व्यापार अभी पूरी तरह से उन्नति नहीं कर पाया था। वस्तुओं के

---

* नमक के गैर-कानूनी व्यापार के लिये अनुमानतः प्रति वर्ष ३०००० आदमियों को कारावास तथा ५०० आदमियों को मृत्यु दण्ड मिलता था। Hazen The French Revolution, Vol. I, p 70.

उत्पादन पर अभी तक मध्य-काल से चली आ रही श्रेणियों (Guilds) के नियन्त्रण लगे हुए थे। जो वस्तुएँ उत्पन्न होती थीं उनको देश में ही इधर-उधर लेजाने में प्रत्येक प्रान्त की सीमा पर चुंगी देनी पड़ती थी जिससे वे बाजार में बहुत मँहगी बिकती थीं। ऐसे नियन्त्रणों में व्यापार की उन्नति असम्भव थी। इस प्रकार की अन्यायपूर्ण एवं अत्याचारपूर्ण आर्थिक व्यवस्था सबको अखरती थी और लोग, यहाँ तक कि कुलीन वर्ग में से भी कई, इसकी बड़ी आलोचना करते थे।

सामाजिक व्यवस्था—

इस प्रकार राजनीतिक व्यवस्था तथा आर्थिक व्यवस्था में तो असमानता, विशेषाधिकार और पक्षपात का जोर था ही, ये दोष सामाजिक व्यवस्था के भी रोम-रोम में व्याप्त थे।

कुलीन वर्ग—

हम ऊपर बतला चुके हैं कि समस्त समाज सामन्तवादी पद्धति पर असमानता एवं विशेषाधिकार के आधारभूत सिद्धान्तों पर श्रेणिवद्ध था जिनमें प्रत्येक वर्ग के अधिकार एवं कर्तव्य भिन्न-भिन्न थे। राजा और राजपरिवार सर्वोपरि थे। उनके नीचे कुलीन वर्ग था। संख्या में इस वर्ग के लोग बहुत कम थे परन्तु राज्य में उनकी स्थिति बहुत ऊँची थी। फ्रान्स की समस्त भूमि के चतुर्थांश के लगभग उनके पास था। राज्य के शासन, उसकी सेना तथा चर्च में ऊँचे-ऊँचे पद उन्हीं लोगों को मिलते थे और इस प्रकार शासन पर उनका बड़ा प्रभाव रहता था। सम्पन्न होते हुए भी उन्हें बहुत कम कर देने पड़ते थे। उन्हें समस्त सामन्तीय अधिकार प्राप्त थे परन्तु अब उनके कर्तव्य सब लुप्त हो चुके थे। उनका कार्य राजा के दरबार में शान-शौकत से रहना और मौज उड़ाना तथा दरबार के षड्यंत्रों में लगे रहना था। वे अपनी जागीर में नहीं रहते थे। उनके कारिन्दे किसानों से भूमि का लगान वसूल करते थे और उन्हें नाना प्रकार के कष्ट देते थे। बहुत से कुलीन लोग छोटे और निर्धन थे जो गाँवों मे ही रहते थे। उनकी दशा साधारण कृषकों से अच्छी नहीं थी परन्तु वे अपनी कुलीनता की परम्परा को बनाये रखना चाहते थे और किसानों से अपने सभी विशेषाधिकार प्राप्त करते थे। यह बात कृषकों को बहुत अखरती थी। कई कुलीन लोग तो प्राचीन सामन्तों के वंशज थे, परन्तु कई लोग उन साधारण व्यक्तियों में से थे जिन्होंने राजा की कृपा से कुलीनता प्राप्त कर ली थी और उस श्रेणी में

पहुँच गये थे। न्यायालयों के न्यायाधीश, जिनकी चर्चा हमने ऊपर की है, इसी प्रकार के कुलीन थे। उन लोगों को भी सभी सामन्तीय विशेषाधिकार प्राप्त थे। मध्य-काल में यदि सामन्त लोग अपने विशेषाधिकार का उपभोग करते थे तो इसके साथ ही वे अपने अनेक प्रकार के कर्तव्य भी उनके प्रति करते थे और जनता उनसे प्रेम करती थी तथा उनका आदर करती थी। परन्तु अब उन्होंने अपना कर्तव्य भी करना बन्द कर दिया था और जनता उन्हें केवल निर्दय शोषक समझती थी। परन्तु यह शिकायत और यह दुर्भावना केवल बड़े, लोभी एवं स्वार्थी कुलीनों के ही प्रति थी। छोटे कुलीन लोग प्रायः असन्तुष्ट थे और इस व्यवस्था में सुधार की कामना करते थे।

पादरी वर्ग—

कुलीनों के अतिरिक्त दूसरी विशेषाधिकारयुक्त श्रेणी पादरियों की थी। यह श्रेणी कुलीनों से भी अधिक अप्रिय थी। पादरी भी कुलीनों के समान दो प्रकार के थे—बड़े तथा छोटे। बड़े पादरियों का प्रभाव राज्य में बड़ा जबरदस्त था। चर्च की अपार सम्पत्ति का वे ही लोग उपभोग करते थे। अनुमानतः चर्च के पास समस्त देश की भूमि का पाँचवाँ भाग था जिससे उसे बड़ी भारी आय होती थी। इस आय के साथ ही चर्च को उसकी भूमि जोतनेवाले कृषकों से अनेक प्रकार के सामन्तीय कर तथा भेंटें मिलती थीं। इस समस्त भूमि तथा आमदनी पर उसे राज्य को कोई कर नहीं देना पड़ता था। बड़े पादरी चर्च के ऊँचे-ऊँचे पदों पर थे और अधिकांश पादरियों की वार्षिक आय डेढ़-दो लाख रुपये से कम नहीं थी, किसी-किसी की वार्षिक आय नौ-दस लाख तक पहुँचती थी। यह समस्त आय ऐश-आराम में खर्च होती थी। इन ऊँचे पदों पर प्रायः कुलीनों के छोटे लड़के हुआ करते थे जो इस आमदनी और प्रभाव के लोभ से पादरी वर्ग में दीक्षा ले लिया करते थे। उन्हें आमोद-प्रमोद से मतलब होता था, न कि अपने पद के धार्मिक कर्तव्यों तथा दीनों एवं पीड़ितों की सेवा से। वे अन्य कुलीनों की भाँति राजा के दरबार में विलासमय जीवन व्यतीत करते थे।

इसके विपरीत असंख्य छोटे पादरी, जो चर्च के वास्तविक धार्मिक कर्तव्यों का सम्पादन करते थे, बड़ी हीन दशा में थे। उनकी आमदनी बहुत कम होती थी जिससे जीवन-निर्वाह भी कठिन होता था। वे लोग सर्वसाधारण जनता में से लिये जाते थे और अपनी दशा से उसी प्रकार असन्तुष्ट थे जैसे साधारण जनता के लोग। उन्हें साधारण जनता से सहानुभूति थी और आगे चल कर क्रान्ति में उन्होंने उसी का समर्थन करके क्रान्ति को आरम्भ में सफल बनाने में बड़ी सहायता दी।

चर्च का प्रभाव—

चर्च का जनता पर बड़ा प्रभाव था। यह चर्च रोमन केथोलिक था। परन्तु फ्रान्स के कानून के अनुसार राज्य के समस्त नागरिक चाहे वे रोमन केथोलिक हों या प्रोटेस्टेन्ट, चर्च के अधीन होते थे और उन्हें चर्च के कर देना पड़ता था। राज्य में धार्मिक स्वतंत्रता बिलकुल नहीं थी। आप ऊपर देख चुके हैं कि चर्च के अपने कानून और अपने न्यायालय होते थे और राज्य के कानून चर्च के आदमियों पर लागू नहीं होते थे। चर्च एक प्रकार से राज्य के अन्दर दूसरा राज्य था। ऐसा धार्मिक स्वतन्त्रता का विरोधी तथा कर्तव्यहीन चर्च जनता में अप्रिय था। जनता की घृणा विशेषकर बड़े पादरियों के प्रति थी। कुलीनों के समान इन बड़े पादरियों के विशेषाधिकार भी जनता को असह्य थे। वास्तव में जब क्रान्ति हुई तो वह मुख्यतः राजा के निरंकुश एकतन्त्र के विरुद्ध नहीं, वरन् इन विशेषाधिकारयुक्त वर्गों—कुलीनों एवं पादरियों—के विरुद्ध हुई थी * और क्रान्तिकारियों ने आरम्भ में उन्हीं को समाप्त किया।

सर्वसाधारण वर्ग—

इन दोनों श्रेणियों के बाद समाज में एक तृतीय श्रेणी (Third Estate) थी जिसमें राज्य की ९६/१०० जनता शामिल थी। इसमें कई प्रकार के लोग थे, जैसे उच्च मध्यम वर्ग के लोग, शिल्पी, मजदूर तथा कृषक। उच्च मध्यम वर्ग में समाज के सम्पन्न, शिक्षित, बुद्धिमान् तथा अध्यवसायी लोग थे, जैसे व्यापारी, कारखानों के मालिक, साहूकार, शिक्षक, डॉक्टर, वकील, सरकारी नौकर आदि। इस वर्ग की आर्थिक दशा अच्छी थी और शासन के ऊँचे पदों को छोड़ शेष पद इन्हीं लोगों के हाथों में थे। परन्तु सुयोग्य और सम्पन्न होते हुए भी उन्हें कुलीन के से अधिकार तथा उनके जैसा सम्मान प्राप्त नहीं था और इस कारण यह वर्ग बड़ा असन्तुष्ट था। फ्रान्स के अधिकांश विचारक, लेखक तथा दार्शनिक इसी वर्ग के थे और वे इस दूषित व्यवस्था के विरुद्ध लोकमत तैयार कर रहे थे। क्रान्ति का नेतृत्व और उसके प्रारम्भिक दिनों में मुख्य कार्य इसी वर्ग ने किया था। शिल्पियों और मजदूरों की दशा भी अच्छी नहीं थी और वे मध्यम वर्ग के पूँजीपतियों (Bourgeois) की दया पर थे जो अपनी श्रेणियों (Guilds) तथा निग[illegible] porations) के द्वारा उद्योग-धन्धों तथा व्या[illegible] ...ाद।

* Marriott : The Remaking of Modern E[illegible]

नियत्रण रखते थे। उन लोगों में मजदूरों की दशा विशेष कर बुरी थी जिन्होंने क्रान्ति के दिनों में बड़ी गड़बड़ मचाई।

कृषक लोगों की संख्या देश में सबसे अधिक—समस्त जनता के ८/१० के लगभग अर्थात् २ करोड़ के लगभग—थी, परन्तु उनकी दशा सबसे अधिक खराब एव दयनीय थी। उनमे से कोई दस लाख अर्ध-दास थे; शेष स्वतन्त्र थे, परन्तु फिर भी उनकी दशा अच्छी नहीं थी।* उन्हें राज्य, चर्च तथा ज़मींदार को अनेक प्रकार के कर तथा नज़राने देने पड़ते थे और इसके अतिरिक्त अपने जमींदार की अनेक सेवाएँ करनी पड़ती थीं। इन सब प्रकार की अदायगियों में किसान की आमदनी का ८० प्रतिशत चला जाता था। इतना ही नहीं, अन्य प्रकार से भी वे बड़े तग थे। उन्हें अपना नाज जमींदार की चक्की पर पिसाना पड़ता था, अपने जैतून का तेल जमीदार के कोल्हू में पेरना पड़ता था, अपनी रोटी जमीदार के तन्दूर में सेकनी पड़ती थी, और माँस के लिये अपने पशुओं का वध भी जमीदार के बूचड़खाने में करना पडता था। इन सब कामों के लिये उसे अपने गाँव से प्रायः कई मील दूर जाना पड़ता था जिसमें बड़ा समय नष्ट होता था। यह कार्य भी मुफ्त नहीं होता था; उसके लिये भारी फीस देनी पड़ती थी। ज़मींदारों को जो विशेषाधिकार कृषकों को सबसे अधिक अखरता था वह था शिकार करने का एकाधिकार। जमींदार का शिकार किसानों के खेतों मे घुस जाता था पर वेचारा किसान उसे उसमे से निकाल नहीं सकता था। शिकारी आते थे, उनके घोड़े खड़ी फसलें नष्ट कर देते थे पर वेचारा किसान चूँ तक नहीं कर सकता था।

इस प्रकार फ्रेञ्च समाज में सर्वत्र महान् असमानता व्याप्त थी और पद, प्रतिष्ठा तथा उन्नति के अवसरों मे जनता के विभिन्न वर्गों में बड़े विषम भेद विद्यमान् थे। साथ ही जनता को साधारण नागरिक अधिकार भी प्राप्त नहीं थे। उसे धार्मिक स्वतत्रता नहीं थी जिसकी ऊपर चर्चा की जा चुकी है। लोगों को अपने विचार प्रकट करने की स्वतन्त्रता भी नहीं थी। छापाखानों के ऊपर बड़े नियत्रण थे और कोई पुस्तक या समाचारपत्रों मे कोई लेख सरकारी निरीक्षक की अनुमति के विना छापा या प्रकाशित नहीं किया जा सकता था। न उन्हें सभा-सोसायटी बनाने या सार्वजनिक सभाएँ करने तथा उनमें भाषण देने की स्वतन्त्रता ही थी। यहां तक कि, जैसा आप ऊपर देख चुके हैं, किसी व्यक्ति को व्यक्तिगत स्वतत्रता भी नहीं थी। सरकारी कर्मचारी अथवा राजा के कृपापात्र

* Hazen The French Revolution, Vol. I, p. 79

मुद्रायुक्त पत्रों द्वारा किसी को भी गिरफ़्तार कर सकते थे और उस पर मुकद्दमा चलाये विना उसे अनिश्चित काल के लिये कारागार में सड़ा सकते थे। ऐसी अवस्था में घोर असन्तोष होना और जनता का स्वतन्त्रता एवं समानता के लिये तरसना स्वाभाविक था।

बौद्धिक आन्दोलन—

यह असन्तोष मौन नही था। एक शताब्दी से फ्रान्स मे बड़े-बड़े प्रतिभाशाली लेखक और विचारक सामाजिक जीवन की इन कठिनाइयों और बुराइयों पर प्रकाश डाल रहे थे और उनकी कड़ी आलोचनाएँ करके जनता के असन्तोष, रोष तथा उसकी आकांक्षाओं को व्यक्त कर रहे थे। ऐसे अनेक विचारकों में मॉंतेस्क्यू, वोल्तेयर तथा रूसो मुख्य थे।

मॉंतेस्क्यू (१६८५-१७५५)—

मॉंतेस्क्यू स्वयं कुलीन था और वोर्दों की पार्लमॉं का न्यायाधीश था। उसने विदेशों में ख़ूब भ्रमण किया था और इंगलैंड में कुछ वर्ष रह कर वहां के विधान का अच्छी तरह अध्ययन किया था। उसने वैधानिक समस्याओं का गभीर अध्ययन किया था जिसका निचोड़ उसने एक पुस्तक (Spirit of Laws) में प्रकाशित किया। उसने राजा के दैवी अधिकार के सिद्धान्त और पुरातन संस्थाओं के प्रतिष्ठित एवं प्राचीन होने के कारण ही उनके पवित्रता एव अभेद्यता के दावे का वड़े तिरस्कारपूर्वक खण्डन किया। उसने फ्रेञ्च सस्थाओं एव रीतिरिवाजों की बड़े व्यगपूर्वक कड़ी आलोचना की और इंगलैड की सस्थाओं से उनकी तुलना करके उन्हें हेय बतलाया। उसका कथन था कि इगलैण्ड का शासन ससार में सर्वोत्तम था क्योंकि वहॉं जनता की स्वतत्रता सुरक्षित थी। इसका कारण यह था कि वहॉं शासन राजा का निरंकुश एकतंत्र नहीं, वरन् जनता के प्रतिनिधियों की सभा (पार्लमेण्ट) द्वारा मर्यादित एकतत्र था। उसने यह भी वतलाया कि जनता की स्वतंत्रता की सुरक्षा के लिये यह आवश्यक है कि शासन की विभिन्न शक्तियॉं—कार्यपालिका, व्यवस्थापिका तथा न्यायपालिका—पृथक्-पृथक् व्यक्तियों के हाथों में हों। परन्तु फ्रान्स में सभी शक्तियॉं एक ही व्यक्ति (राजा) के हाथों में केन्द्रित थी जो पृथ्वी पर किसी के प्रति भी उत्तरदायी नहीं था। इसी कारण फ्रान्स की जनता स्वतत्रता से वचित थी। इस प्रकार से उसने शक्ति-पार्थक्य के प्रसिद्ध सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। उसके समय में तो इस सिद्धान्त का कोई प्रभाव नहीं हुआ, परन्तु उसके बाद

अमेरिका में और क्रान्ति के बाद निर्मित फ्रान्स के विधानों के निर्माण में उसने बड़ा प्रभाव डाला। इस प्रकार उसने एकतंत्र की निन्दा कर स्वतंत्रता के लिये राजा की शक्तियों पर मर्यादाएँ लगाना आवश्यक बतलाया।

वोल्तेयर (१६६४-१७७८)—

वोल्तेयर समस्त लेखकों में सबसे अधिक प्रभावशाली था। वह मध्यम वर्ग का था और अपने समय की अन्यायी व्यवस्था का शिकार बनकर कई बार कारागार का दण्ड भोग चुका था। उसे कई वर्ष तक फ्रान्स से भाग कर बाहर रहना पड़ा था। उसने तत्कालीन समाज की दशा का खूब अध्ययन किया था। पग-पग पर अत्याचार, अन्याय, निर्दयता, शोषण आदि के उसे जो दर्शन हुए उससे वह बड़ा दुःखी हुआ और उसने अपनी पुस्तिकाओं, लेखों, व्यंगात्मक कृतियों, पत्रों आदि मे अपने विचार प्रगट किये और सुधार की आवश्यकता पर जोर दिया। उसके आक्रमण अत्याचार, अन्याय, असहिष्णुता तथा अन्धविश्वास पर होते थे, परन्तु उसकी मुख्य चोट केथोलिक चर्च पर हुई जिसे वह अन्धविश्वास एव असहिष्णुता का गढ तथा विचार-स्वातन्त्र्य का कट्टर शत्रु समझता था। वह प्रत्येक वस्तु को बुद्धि की कसौटी पर कसने और इस प्रकार पूरी उतरने पर ही ग्रहण करने पर ज़ोर देता था। स्पष्टतः फ्रान्स की राजनीतिक सस्थाएँ, कानून, चर्च के रीतिरिवाज आदि बुद्धि की कसौटी पर बिलकुल नहीं कसे जा सकते थे। फलत उसके लेखों के प्रभाव से राज्य तथा चर्च के लिये जनता के हृदय में जो आदर-भावना थी और उनका उस पर जो प्रभाव था उसमें निर्बलता आ गई। उसके विचार गहन नहीं थे परन्तु उसने अपनी प्रभावकारी शैली से इन विचारों का बड़ा प्रचार किया। राजनीति में उसके विचार उदार या प्रजातंत्रीय नहीं थे। उसे प्रजा की सुधार कर सकने की शक्ति में बिल्कुल विश्वास नहीं था। वह आवश्यक सुधार करने के लिये राजा को ही उपयुक्त समझता था। प्रशा के महान् फ्रेडरिक के प्रबुद्ध निरंकुश शासन को वह शासन का आदर्श रूप मानता था।

रूसो (१७१२-१७७८)—

रूसो वोल्तेयर से भिन्न था। वोल्तेयर तो बुद्धि-प्रधान था परन्तु रूसो भावना-प्रधान था। वोल्तेयर केवल दूषित सस्थाओं का विध्वंस चाहता था, रूसो एक नवीन समाज का संगठन करना चाहता था। वह जनीवा

के एक घड़ीसाज का पुत्र था। उसके पिता का गार्हस्थ्य जीवन बड़ा कलुषित था जिसका उस पर बड़ा प्रभाव पड़ा। उसे स्वयं जीवन में बड़े धक्के खाने पड़े और दुःख उठाने पड़े। उसके विचारों में एकसूत्रता नहीं थी और आज तक उसके वास्तविक मन्तव्यों के विषय में एकमत नहीं हो सका है। उसका मुख्य ग्रन्थ सोशल कन्ट्राक्ट (Contrat Social) है। इस पुस्तक का आरम्भिक वाक्य है—'मनुष्य स्वतन्त्र उत्पन्न हुआ था परन्तु वह सर्वत्र शृङ्खलाओं में जकड़ा हुआ है।' ऐसा क्यों है और मनुष्य का बन्धन किस प्रकार न्याय्य हो सकता है इन प्रश्नों का उत्तर उसने इस पुस्तक में देने का प्रयत्न किया है। उसका सारांश यह है कि समाज का निर्माण व्यक्तियों के समझौते से हुआ है। बहुत प्राचीन काल में मनुष्य प्राकृतिक अवस्था में रहता था जिसकी असुविधाओं से मुक्ति पाने के लिये लोगों ने समझौता करके एक शासन के अधीन रहना स्वीकार कर लिया ताकि उनका जीवन तथा उनकी सम्पत्ति सुरक्षित रह सके। उसके विचार में वर्तमान समझौता अन्यायपूर्ण था क्योंकि उसमें विशेषाधिकारयुक्त वर्ग को अनुचित लाभ प्राप्त थे। इस कारण वह चाहता था कि लोग आधुनिक समाज को नष्ट कर फिर प्राकृतिक अवस्था में पहुँच जाँय और एक नया तथा अधिक सन्तोषजनक समझौता करके एक नवीन समाज की सृष्टि करें। उसका सिद्धान्त था कि जनता ही सर्वोपरि है, समस्त सत्ता उसी के हाथ में है, किसी एक व्यक्ति या वर्ग के हाथों में नहीं। सब व्यक्ति स्वतन्त्र और समान हैं और शासन का मुख्य कार्य प्रत्येक व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा करना है। सार्वभौम सत्ता जनता की इच्छा में निहित है और वह राज्य के कानून में व्यक्त होती है। कानूनों का पालन करने में व्यक्ति अपनी ही सदिच्छा का पालन करते हैं और इस प्रकार वे दिखाई तो बन्धन में देते हैं परन्तु वास्तव में स्वतन्त्र हैं। जनता की इच्छा सर्वदा सही होती है और प्रत्येक व्यक्ति को उसका पालन करना चाहिये। उसके सिद्धान्त में अनेक दोष हैं जिनमें से सबसे बड़ा दोष यह है कि उसके द्वारा प्रतिपादित राज्य में अल्पमत को बहुमत के अत्याचार से कोई सुरक्षा प्राप्त नहीं होती। उसे इसमें कोई बुराई नहीं दिखाई देती। वह यह भूल जाता है कि बहुमत का अत्याचार भी उतना ही बुरा और कष्टदायक हो सकता है जितना एक अत्याचारी शासक का। उसके विचारों में अनेक त्रुटियाँ होते हुए भी उसने दो महान् विचारों—जनता की सार्वभौम सत्ता तथा समस्त नागरिकों की राजनीतिक समानता—का प्रतिपादन किया जो तत्कालीन योरोपियन राज्यों के लिये घातक थे और जिन्होंने लोगों को बड़ा प्रभावित किया।* उस निरंकुश

* Hazen : The French Revolution, *Vol. 1, p. 104.*

शासन के युग में ये सिद्धान्त बड़े आक
क्रान्तिकारी बन गये जिन्होंने फ्रेञ्च संस्थ
पर नई सस्थाओं के निर्माण का बीड़ा
विचारों का बड़ा प्रभाव रहा और
बना हुआ है।*

दिदरो का विश्वकोष—

उपर्युक्त तीन लेखकों के समान कि
का ध्यान आकर्षित नहीं किया परन्तु उन
लेखक और विचारक हुए जिनका प्रभाव
की भावना को जन्म दिया। उनमें से ए
का सम्पादक दिदरो (१७१३-१७८४)।
सभी दोषों का निराकरण और सुख की वृ
का सम्पादन आरंभ किया ताकि विभिन्न
डाला जा सके और लोगों को उनका स
१७५१ से १७७२ तक १७ खण्डों में
दिदरो के लिखे हुए थे। इस कार्य में उ
हुआ। वोल्तेयर ने इतिहास पर, दा
पर तथा केसने ने अर्थशास्त्र पर उसमें
का उद्घाटन करने के कारण सरकार
हुआ। दिदरो को सरकार ने बड़ा परेशा
पड़ा परन्तु उसका प्रयत्न चलता रहा।
साथ एकतन्त्र शासन, सामन्त-प्रथा, क
कानून, दास-प्रथा आदि पर बड़े विशद
के सामने उनके सही रूप तथा उनके गु
अकेला कर रहा था उसमें इस विश्वकोप

अर्थशास्त्री—

इस विश्वकोप का एक सहयोगी

में क्रान्तिकारी नेता मिरावो का पिता भी था और सोलहवें लुई का अर्थ-मंत्री तुर्गो भी उसके सिद्धान्तों का आदर करता था। इन अर्थशास्त्रियों का विश्वास था कि राष्ट्र की सम्पत्ति की उत्पत्ति कृषि और खानों से होती है; व्यापारी तथा वस्तुएँ वनानेवाले सम्पत्ति का उत्पादन नहीं करते, वे केवल उनका विनिमय करते हैं या उनका रूप वदलते हैं। अतः व्यापार तथा उद्योग-धन्धों का सरकारी नियंत्रण केवल अस्वाभाविक ही नहीं, प्रत्युत राष्ट्र के सर्वोच्च आर्थिक हितों अर्थात् कृषि के हितों के लिये हानिकर है। सरकारी नियंत्रण कम से कम होना चाहिये और व्यापार तथा उद्योग-धन्धों को स्वतंत्र छोड़ देना चाहिये (Laissez Faire)। उनके विचार में पूर्णतया मुक्त व्यापार तथा सार्वलौकिक शिक्षा की व्यवस्था की तात्कालिक आवश्यकता थी और अन्य सव प्रकार के करों को उठा कर केवल भूमि-कर रखना उचित था। इन अर्थशास्त्रियों का क्रान्ति की प्रगति पर काफी प्रभाव पड़ा था परन्तु वोल्तेयर तथा रूसो के अनुयायियों के समान वे कभी प्रभावशाली नहीं रहे।

इन लेखकों का प्रभाव तो वड़ा ज़बरदस्त था ही, उनके अतिरिक्त उस समय अनेक लोग अपने समय की समस्याओं पर विचार करते थे और छोटी-छोटी पुस्तकों तथा पुस्तिकाओं में अपने विचार प्रकट करते थे। लोग उन्हें पढ़ते थे, उन पर विचार करते थे और वादविवाद करते थे। इस प्रकार जनता का ध्यान सामाजिक एवं राजनीतिक अन्यायों की तरफ आकर्षित हो रहा था और उसमें एक अभूतपूर्व हलचल मच रही थी। इस प्रकार इस वौद्धिक आन्दोलन के फल-स्वरूप तत्कालीन व्यवस्था के दोष प्रकाशित हुए, जनता सव वातों को सशंक एवं आलोचनात्मक दृष्टि से देखने लगी और तत्कालीन व्यवस्था में क्रान्तिकारी परिवर्तन के लिये मनोवैज्ञानिक आधार तैयार हो गया।

वौद्धिक आन्दोलन का प्रभाव—

किन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिये कि क्रान्ति के जन्मदाता ये लेखक तथा विचारक थे। क्रान्ति का स्रोत तो उस समय के राष्ट्रीय जीवन के दोषों में तथा सरकार की भूलों में था। * उन्होंने दोषों को प्रकाशित किया, जनता का ध्यान उनकी ओर आकर्षित करके उन पर वहस करने के लिये उसे प्रेरित किया और उसमें जोश उत्पन्न किया। जिस साहित्य से सारा देश आप्लावित हो रहा था वह एक नवीन प्रकार का साहित्य था। वह राजनीतिक एवं आलोचना-

* Hazen: The French Revolution, Vol. 1, p. 105.

त्मक था और उसमें प्रचलित राजनीतिक विचारों एवं सिद्धान्तों का बड़ा आलोचनात्मक अध्ययन किया गया था। वह विश्लेषणात्मक था और उसमें सब प्रकार के विचारों एव संस्थाओं का बड़ा सूक्ष्म विश्लेषण करके ज़रा-ज़रा सी बातें तक खोलकर जनता के सामने रख दी गई थी। इस साहित्य में प्राचीन प्रतिष्ठित बातों के लिये जरा भी आदर-भावना नहीं थी, बल्कि उनके प्रति बड़ी घृणा प्रकट की गई और उनका उपहास करके तत्कालीन व्यवस्था के आधार को निर्बल बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी गई। इस प्रकार यह साहित्य विनाशकारी था। उसने लोगों के विश्वासों को हिला दिया, उनके दृष्टिकोण को बदल दिया और उन्हें क्रान्तिकारी परिवर्तनों के लिये तैयार कर दिया। परन्तु वह केवल विनाशकारी ही नहीं, रचनात्मक भी था। इन लेखकों ने अपने विचार प्रकट करके क्रान्ति के नेताओं को तैयार किया, उन्हें कुछ सिद्धान्तों की शिक्षा दी तथा उपयुक्त तर्क और सूत्रों से सुसज्जित किया, उनके मस्तिष्कों को एक विशेष ढाचे में ढाला, उनके सामने कुछ आदर्श रखे और उनमें भूमि पर स्वर्ग का निर्माण करने की आशा का सचार किया।

अमेरिका का प्रभाव—

इस प्रकार फ़्रान्स क्रान्ति के लिये तैयार था। इन्हीं दिनों उत्तरी अमेरिका के अंग्रेजी उपनिवेशों ने इंगलैण्ड के विरुद्ध विद्रोह कर दिया (१७७५) और आठ वर्ष के लम्बे सघर्ष के बाद इगलैण्ड के अत्याचार से स्वतन्त्रता प्राप्त की (१७८३)। फ़्रान्स ने इगलैण्ड के विरुद्ध उपनिवेशों की सहायता की और अपनी पराजय का प्रतिशोध किया परन्तु यह प्रतिशोध स्वय उसी के लिये घातक हो गया। फ़्रान्स के स्वयसेवक सैनिक अमेरिका में जाकर लड़े थे और लोगों को अत्याचार के विरुद्ध लड़ कर उससे मुक्ति पाते हुए तथा अपने ही विचारक रूसो तथा मॉतेस्क्यू के सिद्धान्तों को कार्यान्वित होते हुए देख कर फ़्रान्स लौटे थे। अमेरिका की स्वतन्त्रता के युद्ध का असर फ़्रान्सवासियों पर पड़े बिना न रहा और उनमें भी निरंकुश शासन का अन्त करके एक नवीन स्वतंत्र राष्ट्र के निर्माण के लिये उत्साह उत्पन्न हुआ। इसके अतिरिक्त फ़्रान्स की आर्थिक व्यवस्था वर्षों से खराब चली आ रही थी। इस युद्ध के भारी खर्च से वह ऐसी बिगड़ी कि अनेक प्रयत्न करने पर भी वह नहीं सुधरी और अन्त में क्रान्ति के श्रीगणेश का तात्कालिक कारण बन गई। *

---

* F. J. C Hearnshaw : Main Currents of European History, p.45.

इङ्गलैण्ड का प्रभाव—

अमेरिका के समान इंगलिश चैनल के पार इंगलैण्ड की घटनाओं का भी फ्रान्स पर काफी प्रभाव पड़ा था। आयलैंडवालों ने, जो एक शताब्दी से अमेरिकावालों से भी अधिक कष्टदायक नियंत्रणों से पीड़ित थे, संघर्ष करके १७७६ से १७८२ तक उन नियंत्रणों में काफी कमी करवाली थी। यह तो एक तात्कालिक घटना मात्र थी जिसने फ्रान्सवालों के सामने मुक्ति प्राप्त करने का एक क्रियात्मक उदाहरण प्रस्तुत किया था। परन्तु उससे भी गहरी प्रेरणा उन्हें इंगलैंड की राजनीतिक विचारधारा तथा उसके वैधानिक इतिहास से प्राप्त हुई थी। मॉतेस्क्यू इंगलैंड के वैधानिक शासन से बड़ा प्रभावित हुआ था और उसे यह विश्वास होगया था कि इंगलैण्ड के नागरिकों की स्वतत्रता वहाँ के मर्यादित एकतत्र के ही कारण थी। इंगलैण्ड के सुप्रसिद्ध विचारक लॉक(Locke) का शक्ति-पार्थक्य का सिद्धान्त मॉतेस्क्यू के इसी नाम के सिद्धान्त का आधार था। लॉक का प्रभाव रूसो पर भी काफी था। उसने लॉक के ही सम्मति पर आधारित शासन' के सिद्धान्त को विकसित करके 'जनता के प्रभुत्व के सिद्धान्त' का प्रतिपादन किया। १६८८ में इंगलैण्ड में रक्तहीन राजनीतिक क्रान्ति के फल-स्वरूप जो वैधानिक शासन स्थापित हुआ उसकी तुलना में फ्रान्सवालों को अपना निरंकुश एकतंत्र असह्य प्रतीत होने लगा। फ्रान्स के अर्थशास्त्रियों पर भी, जिनका उल्लेख हमने ऊपर किया है, इंगलैण्ड के प्रख्यात अर्थशास्त्री स्मिथ का बड़ा भारी प्रभाव था।

क्रान्ति का आरंभ फ्रान्स में क्यों हुआ?—

इस प्रकार हम देखते है कि फ्रान्स में इस समय एक साथ ही कई ऐसी बातें विद्यमान् थीं जो किसी देश को क्रान्ति की ओर ले जाती हैं-निरंकुश किन्तु निर्बल एकतंत्र; भ्रष्ट, सांसारिक चर्च; पराश्रयी, कर्तव्यहीन तथा अत्याचारी कुलीन वर्ग; शिक्षित,सम्पन्न किन्तु असन्तुष्ट मध्यम वर्ग; पीड़ित तथा दलित कृषक वर्ग; खाली और कर्ज से लदा हुआ राज्य-कोष; शासन तथा आर्थिक व्यवस्था में अराजकता; कुशासन एवं पारस्परिक शंका से विभक्त राष्ट्र; प्रगतिशील विचार तथा उच्च कोटि की सभ्यता।

फ्रान्स के राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक जीवन में अनेक बुराइयाँ थीं किन्तु केवल इन बुराइयों के ही कारण क्रान्ति नहीं हो सकती थी। योरोप केअन्य देशों में भी यही हाल था, बल्कि वहाँ कई बातों में इससे भी खराब दशा थी। प्रशा, ऑस्ट्रिया, पोलैण्ड, रूस आदि देशों में उस

समय भी कृषक अर्ध-दास अवस्था में थे और सामन्त-पद्धति विद्यमान् थी। फ्रान्स में अधिकांश कृषक स्वतत्र थे और अन्य देशों के कृषकों की अपेक्षा उनकी दशा अच्छी थी। इसके साथ ही फ्रान्स में सामन्त-प्रथा भी भग्न दशा में थी। सत्रहवीं शताब्दी के आरम में रिशल्यू (Richelieu) ने कुलीनों की राजनीतिक सत्ताएँ छीन ली थीं। इस प्रकार सामन्तवाद का राजनीतिक रूप नष्ट हो चुका था परन्तु उसका सामाजिक रूप विद्यमान् था। कुलीनों के विशेषाधिकार अब भी मौजूद थे, यद्यपि अब वे अपने कर्तव्य नहीं करते थे। जब तक कुलीन लोग शासन करते थे, अपनी प्रजा की रक्षा करते थे और उनकी आवश्यकताओं का ध्यान रखते थे तब तक उनकी स्थिति मजबूत थी और उन्हें कोई भय नहीं था। पन्तु अब न तो वे शासन करते थे और न अपनी प्रजा के साथ अपनी जागीर में ही रहते थे। इसके साथ ही कृषक स्वतत्र थे और अपनी भूमि के स्वामी थे। ऐसी दशा में उनके विशेषाधिकार कृषकों को अखरते थे। क्रान्ति सामन्त-पद्धति के नहीं, वरन् उसके जीर्ण-शीर्ण अवशेषों के नाश पर तुली हुई थी।*

कृषकों की संख्या ८० प्रतिशत से अधिक थी परन्तु यह बहुसख्यक असन्तुष्ट कृषक वर्ग क्रान्ति नहीं कर सकता था। उसे नेतृत्व की आवश्यकता थी। यह नेतृत्व उसे मध्यम वर्ग से मिला जो ब्रिटेन तथा हॉलैंड को छोड़ अन्य देशों के मध्यम वर्ग से कहीं अधिक बड़ा, सुशिक्षित एव सम्पन्न था। उस समय के बौद्धिक आन्दोलन के नेता इसी वर्ग के थे और उनके विचार प्रगतिशील एवं क्रान्तिकारी थे। वे अपनी स्थिति से असन्तुष्ट थे और उसमें सुधार चाहते थे। वे देश की विशाल पीड़ित जनता के स्वाभाविक नेता थे। इस प्रकार फ्रान्स में क्रान्ति के लिये आवश्यक नेतृत्व विद्यमान् था जिसका अन्य देशों में अभाव था। इसके साथ ही अन्य देशों के लोगों की अपेक्षा फ्रान्स के लोग सामान्यतया अधिक उन्नत विचारवाले थे। इस कारण उन्हें बुराइयाँ अधिक अखरती थीं। ऐसा राष्ट्र ही जो नये विचार ग्रहण कर सके मॉतेस्क्यू, वोल्तेयर, रूसो जैसे व्यक्तियों को उत्पन्न कर सकता है, और उत्पन्न कर उनकी बातों को सुन सकता है। अन्य किसी देश में लोकमत इतना जागृत और आलोचनात्मक नहीं था परन्तु आलोचकों को प्रतिनिधि-

*Lodge : A History of Modern Europe, pp. 474-75.

सभाओं के अभाव में अपने सिद्धान्तों को शासन के कामों में लागू करने के अवसर प्राप्त नहीं थे। इस प्रकार कृषकों की सापेक्ष दृष्टि से अच्छी अवस्था, सुशिक्षित एवं सुयोग्य मध्यम वर्ग के नेतृत्व तथा सामान्यतया उच्च कोटि की सभ्यता के कारण ही क्रान्ति सर्वप्रथम फ्रान्स में हुई।†

---

† Marriott : The Remaking of Modern Europe, pp. 14-15 ; Ketelbey : A History of Modern Times, p. 25-26.

अध्याय ५

क्रान्ति का आरंभ

राष्ट्रीय (विधान) सभा
National (Constituent) Assembly
(मई १७८९ – सितम्बर १७९१)

एस्टेट्स-जनरल के तीन विभाग थे जिनमें कुलीन वर्ग, पादरी वर्ग तथा सर्वसाधारण वर्ग के प्रतिनिधि अलग-अलग बैठकर मत देते थे। तीनों वर्गों के प्रतिनिधियों की संख्या प्राय: बराबर थी। इस व्यवस्था में कुलीन वर्ग तथा पादरी वर्ग के दो मत हो जाते थे और सर्वसाधारण वर्ग अल्पमत में रह जाता था। जनता इस स्थिति से असन्तुष्ट थी। यह देखकर नेकर ने सर्वसाधारण जनता के प्रतिनिधियों की संख्या दुगनी करदी परन्तु सभा के तीनों विभाग अलग-अलग बैठकर विचार करेंगे या एक साथ बैठकर इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर वह मौन रहा।

एस्टेट्स-जनरल का चुनाव—

१७८९ की वसन्त ऋतु में देश मे सामान्य निर्वाचन हुआ। देश के प्रत्येक विभाग में समाज की तीनों श्रेणियों के प्रौढ मतदाताओं ने अपनी अपनी शिकायतों एव आदेशों के स्मृति-पत्र (Cahiers) तैयार किये और अपनी अपनी श्रेणियों के प्रतिनिधि चुने। ऐसे स्मृति-पत्र हज़ारों की संख्या में थे। परन्तु किसी भी स्मृति-पत्र में एकतत्र के या बूर्बों वंश के विरुद्ध कोई शिकायत नहीं थी। प्रत्येक वर्ग की मागें अलग अलग थीं परन्तु कइ बातों में तीनों वर्गों की मांगे समान थीं। प्राय सभी में वैधानिक शासन की अर्थात् एक विधान द्वारा शासन की मर्यादाएं स्थिर करने और राजा तथा जनता के अधिकारों को निश्चित करने की, व्यक्तिगत स्वतंत्रता, भाषण तथा लेखन की स्वतंत्रता, मुद्रायुक्त पत्रों के व्यवहार के अन्त, एस्टेट्स-जनरल के नियमित अधिवेशन तथा क़ानून बनाने और कर स्वीकृत करने के उसके अधिकार, क़ानून के सामने सब की समानता, सरकारी नौकरियों का द्वार सबके लिये समान रूप से खुले रहने, करों को सब से समान रूप से वसूल करने आदि की मांगे थीं। सर्वसाधारण वर्ग कुलीनों का सम्मान और उनके अधिकारों को छीनना नही चाहता था परन्तु सामन्तीय

विशेषाधिकारों एवं करों से जो मुक्ति उन्हें प्राप्त थी उसका अन्त करना चाहता था। आश्चर्य की बात तो यह थी कि पादरी वर्ग तथा कुलीन वर्ग भी करों से जो मुक्ति उन्हें अभी तक प्राप्त थी उसका त्याग करने के लिये तैयार थे। इस प्रकार सभी वर्ग काफ़ी सुधार चाहते थे और आशा करते थे कि अब समस्त भेद-भाव मिट जायगा, समस्त वर्गों के दिल मिल जॉयगे और राष्ट्र का उस दयनीय अवस्था से उद्धार हो जायगा।*

प्रथम अधिवेशन—

५ मई १७८६ को एस्टेट्स-जनरल का अधिवेशन हुआ। उसमें कुल मिलाकर १२०० के लगभग सदस्य थे। सदस्यों को राजनीतिक अनुभव नहीं था परन्तु यदि राजा उनका कुशलतापूर्वक नेतृत्व करता तो सारी समस्याएँ सरलता से सुलझ जातीं और कोई गड़बड़ नहीं होती। जैसा स्मृति-पत्रों से मालूम होता है, एस्टेट्स-जनरल का शासन को पलटने तथा एकतन्त्र और कुलीन वर्ग के विनाश का इरादा नहीं था। परन्तु उसे यह आशा थी कि उसके सामने सुधार के प्रस्ताव पेश किये जॉयगे जिनको स्वीकार करके वह शासन का सुधार कर सकेगी और आर्थिक व्यवस्था ठीक कर सकेगी। यदि सरकार सुधार की योजना उसके सामने रखती तो इसमें कोई शंका नहीं थी कि सभा उस पर विचार करती, शायद उसमें संशोधन करती और उसे स्वीकार कर लेती। परन्तु न राजा और न नेकर ही इस बात को समझ पाये। राजा उसे केवल परामर्श दनेवाली सभा समझता था और अपने विशेषाधिकारों को अक्षुण्ण बनाये रखना चाहता था। नेकर ने भी कोई सुधार-योजना सभा के सामने न रखी और आरंभ से ही गड़बड़ होने लगी।

संघर्ष का श्रीगणेश—

दूसरे ही दिन (६ मई) यह प्रश्न उठ खड़ा हुआ कि सदस्य किस प्रकार मत देंगे—अलग अलग भवनों में या सब एक साथ एक भवन में। कुलीन वर्ग तथा पादरी वर्ग ने अपने अपने भवन का अलग निर्माण कर लिया परन्तु सर्व साधारण वर्ग ने अलग बैठने से इन्कार कर दिया। तनाव बढा परन्तु सरकार ने स्थिति को सुधारने का कोई प्रयत्न नहीं किया। कोई डेढ महीने तक गतिरोध बना रहा और कोई काम नहीं हुआ। सर्व-

* J. M. Thompson : The French Revolution, p 10-13

साधारण वर्ग ने बार बार अन्य वर्गों को उसके साथ बैठने के लिये आमन्त्रित किया परन्तु वे अड़े रहे। धीरे धीरे छोटे पादरी सर्वसाधारण वर्ग के पास आने लगे और १६ जून को सर्वसाधारण वर्ग के प्रतिनिधियों ने अपने आप को राष्ट्रीय सभा (National Assembly) घोषित करके एक क्रान्तिकारी कदम उठाया। उन्होंने अन्य वर्गों के प्रतिनिधियों को राष्ट्रीय सभा में सम्मिलित होने के लिये फिर निमंत्रित किया। यह कदम वास्तव में क्रान्तिकारी था क्योंकि पुराने विधान में इसके लिये कोई व्यवस्था नहीं थी। *

इस पर दरबारियों के प्रभाव में आकर लुई ने सेना भेजकर सभा-भवन बन्द कर दिया (२० जून)। जब सर्वसाधारण सदस्य वहाँ पहुँचे और उन्होंने सभा-भवन बन्द पाया तो उन्होंने पास ही के टेनिस के मैदान में एकत्रित होकर शपथ ली कि जब तक हम अपने देश के लिये एक नया शासन-विधान नहीं बना लेंगे तब तक विसर्जित नहीं होंगे। लुई ने सभा-भवन बन्द करके बड़ी भूल की थी। अब भी यदि वह दरबारियों के प्रभाव से मुक्त होकर सर्वसाधारण वर्ग का साथ देता तो फ़्रान्स का इतिहास ही दूसरा होता परन्तु वह दुराग्रही दरबारियों के प्रभाव में बना रहा और ग़लती पर ग़लती करता रहा।

२३ जून को उसने तीनों वर्गों की सम्मिलित सभा की और उसके सामने एक लंबी-चौड़ी सुधार-योजना प्रस्तुत की परन्तु इसके साथ ही सर्वसाधारण वर्ग के उस समय तक के कामों को अवैधानिक एवं ग़लत बताकर राष्ट्रीय सभा को स्वीकार करने से इन्कार करके तीनों भवनों को अलग अगल अपने अधिवेशन करने का आदेश दिया। कुलीन वर्ग तथा पादरी वर्ग उठ कर चला गया परन्तु सर्वसाधारण वर्ग बैठा रहा। जब राजा के कर्मचारी ने उसे चले जाने को कहा तो उसके एक कुलीन वर्गीय नेता—मिराबो—ने उत्तर दिया कि अपने स्वामी से जाकर कह दीजिये कि हम यहाँ जनता की शक्ति से उपस्थित हैं और तलवार की नोक पर ही यहाँ से हट सकते हैं।

जनता की प्रथम विजय—

लुई की स्थिति बड़ी कठिन थी। धीरे धीरे कई पादरी और कुछ कुलीन लोग राष्ट्रीय सभा में सम्मिलित होगये। लुई को दबना पड़ा और

*Hazen: The French Revolution, Vol, p. 227.

२६ जून को उसने कुलीन वर्ग को सर्वसाधारण वर्ग के साथ बैठने का आदेश दिया। यह जनता की पहली विजय थी। उस दिन राजा की सत्ता उसके हाथ से खिसक कर राष्ट्रीय सभा के हाथ में चली गई।*

राष्ट्रीय सभा—

राष्ट्रीय सभा में सुधारवादियों का असंदिग्ध बहुमत था। सर्वसाधारण वर्ग तो सुधारवादी था ही, पादरियों का बहुमत तथा काफी कुलीन भी उनके साथी थे। उनके हाथ में बड़ा महत्वपूर्ण अवसर था परन्तु उनमें व्यावहारिक अनुभव की बड़ी कमी थी और किसी को भी शासन की समस्याओं को हल करने का व्यावहारिक ज्ञान नहीं था। अतः वे प्रत्येक बात पर विशुद्ध सिद्धान्तिक दृष्टि से विचार करते थे और उनकी योजनाएँ अव्यावहारिक होती थीं।

राष्ट्रीय सभा का कार्य विधान निर्माण था और इसके लिये आवश्यक था कि वह शान्तचित्त होकर गम्भीरतापूर्वक बिना किसी बाहरी हस्तक्षेप के विचार करे परन्तु उन दिनों देश में बड़ा जोश था और पेरिस में उस समय असंख्य बेकार तथा बेघरबार लोग एकत्रित थे। दुर्भाग्यवश सभा पर इस भीड़ का दबाव पड़ने लगा और शान्त एवं गंभीर विचार असंभव हो गया। हम आगे चल कर देखेंगे कि पेरिस की इस भीड़ के प्राधान्य के कारण क्रान्ति का रूप विकृत हो गया।

इसके लिये राजा तथा सभा दोनों ही उत्तरदायी थे। निरंकुश शासन के यकायक असफल हो जाने से शासन निर्बल हो गया था और सारे देश में अव्यवस्था फैल गई थी। लोग प्रायः सरकारी कर्मचारियों पर आक्रमण कर देते थे और उन्हें मार डालते थे। कृषक अपने भूमिपतियों की गढ़ियों को लूट लेते थे और जला देते थे। ऐसी स्थिति में राजा तथा सभा दोनों को परस्पर सहयोग करके शान्ति तथा व्यवस्था कायम रखने का प्रयत्न करना चाहिये था। परन्तु राजा अपनी रानी तथा दरबारियों के प्रभाव में था जो सभा की विजय के कारण उससे नाराज थे और सभा भी राजा तथा उसके दरबार के षड्यंत्रों से डरती थी। इस प्रकार पारस्परिक शंका के कारण दोनों में सहयोग असंभव होगया और धीरे-धीरे स्थिति बिगड़ती गई।

---

*Schevill. A History of Europe, p.134.

वास्तिल का पतन—

सभा की शंका निर्मूल नहीं थी। उसकी विजय से रुष्ट होकर राजा को दरबार-पार्टी ने सेना के बल पर अपने अधिकार को फिर से स्थापित करने के लिये राजी कर लिया। उसने पेरिस में सेना एकत्रित की ताकि जनता की भीड़ दबी रहे और वह अपने मंत्री नेकर तथा सभा का विसर्जन कर सके। नेकर लोकप्रिय हो गया था। उसको बरखास्त करने की खबर से जनता में बड़ी उत्तेजना फैली। सेना को देखकर, जिसमें बहुत से विदेशी सैनिक थे, वह भड़क उठी। ११ जुलाई को नेकर बरखास्त कर दिया गया। इस पर जनता में जोश फैला। जगह जगह दंगे होने लगे। भावी आपत्ति का सामना करने के लिये पेरिस के निर्वाचक-गण (जिन्होंने राष्ट्रीय सभा के लिये सदस्य चुने थे) एकत्रित हुए और नगर के शासन तथा उसकी राजा की सेना तथा उत्तेजित भीड़ से रक्षा करने के लिये आयोजन करने लगे। उन्होंने एक नागरिक रक्षक-दल बनाया, सरकारी शस्त्रागार से शस्त्र निकाल लिये और वे अपनी रक्षा के लिये तैयार हो गये। नागरिक रक्षक-दल से भी अधिक आश्वासन उन्हें पेरिस की राजकीय सेना से मिला। उसके सैनिक फ्रेन्च थे और क्रान्ति की भावना से परिपूर्ण थे। वे पेरिसवालों की तरफ शामिल हो गये। जोश बढता गया और १४ जुलाई को एक भीड़ ने वास्तिल (Bastille) के पुराने किले पर, जो अब कारागार की तरह काम में आ रहा था और जिसे लोग अत्याचार का गढ समझते थे, आक्रमण कर दिया। पाँच घण्टे की लडाई के बाद जिसमें जनता के २०० व्यक्ति मारे गये वास्तिल के किलेदार ने दरवाजा खोल दिया और हथियार डाल दिये। जनता के आनन्द का पारावार नहीं रहा। फ्रान्स मे तथा उसके बाहर वास्तिल के पतन का स्वतंत्रता की विजय तथा निरकुश स्वेच्छाचारी एकतत्र के, जिसका वह प्रतीक समझा जाता था, विनाश के रूप मे स्वागत हुआ। यह घटना निरकुश शासन के अन्त की सूचक अवश्य थी परन्तु इसके साथ ही उससे यह भी सूचना मिल रही थी कि फ्रान्स में भीड़ का शासन आरंभ हो रहा है।

परिणाम—

वास्तिल के पतन का तात्कालिक परिणाम तो यह हुआ कि दरबार-पार्टी समझ गई कि क्रान्ति की बाढ शस्त्रबल से रोकी नहीं जा सकती।

उसकी पराजय स्पष्ट थी। उसके उग्र सदस्य जिनका नेता लुई का भाई आर्तुआ का काउण्ट (Count of Artois) था, देश छोड़ कर चले गये। राजा स्वयं पेरिस पहुँचा (१७ जुलाई)। जनता के हृदय में भी राजा के प्रति भक्ति मौजूद थी। उसने उसका स्वागत किया। राजा ने पेरिस की जनता ने अभी तक जो कुछ किया था उसे स्वीकार कर लिया, सेना को नगर से हटा लिया और नेकर को वापस बुला लिया। इस बीच में पेरिस-वालों ने नगर के शासन के लिये म्यूनिसिपेलिटी स्थापित करली थी जिसका अध्यक्ष बैली (Bailly) था। नागरिक रक्षक-दल का भी ठीक तरह से संगठन कर लिया गया था और उसका नाम राष्ट्रीय रक्षक-दल (National Guard) रख दिया गया था जिसका सचालक लाफायेत नियुक्त किया गया था। इसके साथ ही बूर्वों वंशीय सफेद झण्डे की जगह उन्होंने एक तिरगा (नीला, लाल तथा सफेद) झण्डा स्वीकार कर लिया था। राजा ने भी इन सब बातों को स्वीकार कर लिया।

जब बास्तिल के पतन की खबर प्रान्तों मे फैली तो सभी जगह लोगों ने पेरिस-वासियों का अनुकरण करके म्यूनिसिपल शासन तथा अपने रक्षक दल बना लिये। नगरों के बाहर गॉवो में कृषक सामन्तवाद के विरुद्ध उठ खड़े हुए। उन्होंने जागीरदारों की गढ़ियाँ लूटली और उनके सब पत्र जला दिये। लोगों ने मठों को भी लूट लिया। जगह जगह राजकीय सेनाएँ भी लोगों से जा मिलीं। इस प्रकार बास्तिल के पतन के परिणाम-स्वरूप पुरानी शासन-पद्धति तथा सामन्तवाद दोनों का पतन हो गया।

सामन्तवाद की अन्त्येष्टि—

देश भर से इन बातों की सूचना राष्ट्रीय सभा को जिसने अपना नाम अब विधान-सभा (Constituent Assembly) रख लिया था मिलने लगी और उसका उत्साह बढने लगा। उसका वातावरण भी बदल गया। समस्त सभा में सुधार की उमंग की बाढ आ गई। सबमे आश्चर्य की बात तो यह थी कि इस प्रयत्न मे कुलीनों ने नेतृत्व किया। उन्होंने सामन्त-वाद की प्रथाओं से जनता को जो कष्ट था उसे स्वीकार किया और जो कर तथा नजराने कृषक ज़मीदारों को देते थे उन्हे बन्द कर देने का प्रस्ताव किया। पादरियों ने भी अपने विशेषाधिकार छोड़ देने की घोषणा की। इसी प्रकार जिन जिन लोगों के जो जो विशेषाधिकार थे उन लोगों ने

उन सबको त्याग देने की घोषणा की। ४ अगस्त को कई प्रस्ताव स्वीकृत हुए जिनके फल-स्वरूप सामन्तवाद के जितने अवशेष थे वे सब नष्ट हो गये। अर्ध-दास प्रथा, बेगार, जितने प्रकार की सेवा कृषक लोग अपने भूमिपतियों की किया करते थे, जितने प्रकार के कर तथा नजराने वे दिया करते थे, भूमिपतियों का शिकार का एकाधिकार आदि जितनी भी कष्टप्रद बातें थीं सब नष्ट हो गईं। चर्च को जो कर दिये जाते थे वे बद कर दिये गये। श्रेणियाँ (Guilds) बन्द कर दी गईं। कानून के सामने सब लोगों की समानता स्थापित हो गई। सरकारी पद योग्यता के आधार पर सब के लिये खुल गये और निःशुल्क न्याय सबके लिये सुलभ हो गया। इस प्रकार सामन्तवाद की अन्त्येष्टि हो गई, समस्त वर्ग-भेद नष्ट हो गये और समानता का सिद्धान्त राज्य तथा समाज का आधार बन गया।

आधारभूत अधिकारों की घोषणा—

यह तो हुआ खण्डहरों को साफ करने का कार्य। विधान सभा को नव-निर्माण का कार्य भी करना था। सभा विनाश कार्य में तो तेज थी किन्तु निर्माण कार्य में उसकी गति धीमी थी। पुरानी व्यवस्था के स्थान पर नवीन व्यवस्था न होने से अराजकता अनिवार्य होती है परन्तु यहीं सभा ने भूल की* और नवीन विधान बनाने की जगह वह अपना समय व्यर्थ वादविवाद में नष्ट करती रही। उसने कई सप्ताह के वादविवाद के बाद २७ अगस्त को 'मनुष्य के आधारभूत अधिकारों' की १७ धाराओं में घोषणा की। इन अधिकारों में स्वतन्त्रता, सम्पत्ति, सुरक्षा तथा अत्याचार के विरोध का अधिकार, कानून के समक्ष समानता तथा क़ानून बनाने के कार्य में व्यक्ति को स्वयं या अपने प्रतिनिधि के द्वारा भाग लेने का अधिकार, ग़ैर-कानूनी गिरफ्तारी से मुक्ति, धर्म, भाषण, लेखन तथा प्रकाशन की स्वतंत्रता आदि मुख्य थे। इस प्रकार राष्ट्रीय सभा ने नवीन विधान के आधारभूत सिद्धान्तों—स्वतन्त्रता, समानता तथा जनता के प्रभुत्व—की घोषणा की।†

नवीन विधान—

विधान के निर्माण के लिये सभा ने ६ जुलाई को एक समिति नियुक्त की थी जिसने दो सिद्धान्तों—जनता की प्रभुता तथा शक्ति-पार्थक्य (कार्य

* Stephens Revolutionary Europe, p. 60.

† Grant and Temperley: Europe in the Nineteenth and Twentieth Centuries, p. 24.

पालिका, व्यवस्थापिका तथा न्यायपालिका को पृथक् रखने का सिद्धान्त)—के आधार पर नया विधान तैयार किया। इस विधान में मॉतेस्क्यू के विचारों का प्रभाव स्पष्ट था।

व्यवस्थापिका—

नये विधान ने एक भवनवाली व्यवस्थापिका की योजना की जिसमें दो वर्ष के लिये परोक्ष रूप से निर्वाचित ७४५ सदस्य रखे गये। निर्वाचन के लिये नागरिक दो भागों में विभक्त किये गये। जिन नागरिकों की अवस्था कम से कम २५ वर्ष की थी, जो कम से कम ३ दिन की आय कर के रूप में देते थे और जिनका नाम म्यूनिसिपल रजिस्टरों में तथा राष्ट्रीय रक्षक-दल में दर्ज थे वे 'सक्रिय' (Active) नागरिक की कोटि में रखे गये। शेष 'निष्क्रिय' (Passive) नागरिक रहे। सक्रिय नागरिक प्रति सौ नागरिकों के लिये एक निर्वाचक चुनते थे और इन निर्वाचकों का 'निर्वाचक-मंडल' प्रतिनिधि (Deputy) चुनता था। निर्वाचक के लिये यह आवश्यक था कि वह सम्पत्ति का स्वामी या आसामी हो और वर्ष में १० दिन की आय करके रूप में देता हो। प्रतिनिधि कोई भी सक्रिय नागरिक चुना जा सकता था यदि वह भूमि का स्वामी हो और ५४ फ्रेंक करके रूप में देता हो।* परन्तु न्यायिक अथवा शासन के पद पर नियुक्त कोई भी व्यक्ति व्यवस्थापिका का सदस्य नहीं हो सकता था।

इस व्यवस्थापिका सभा को क़ानून-निर्माण के पूर्ण अधिकार थे। उस पर एकमात्र नियन्त्रण राजा के 'स्थगनकारी निषेध' (Suspensive Veto) का था। राजा किसी भी कानून को दो सत्रों (Sessions) के लिये स्वीकार करने से इन्कार कर सकता था † परन्तु उसका यह अधिकार आर्थिक बातों मे लागू नहीं होता था। शान्ति, व्यापार तथा मित्रता सम्बन्धी सन्धियों के लिये व्यवस्थापिका सभा की स्वीकृति आवश्यक रखी गई।

कार्यपालिका—

राजा शासन का प्रमुख बना रहा। उसे अपने मन्त्रियों की नियुक्ति, सेना का नेतृत्व तथा विदेशी सम्बन्ध के संचालन के अधिकार मिले परन्तु व्यवस्थापिका पर उसका कोई अधिकार नहीं रहा। वह व्यवस्थापिका सभा के अधिवेशन आमन्त्रित नहीं कर सकता था, न उसे भंग कर सकता था और न उसके सामने क़ानून के प्रस्ताव ही प्रस्तुत कर सकता था। उसे केवल स्थगनकारी निषेध का अधिकार मिला। न्यायालयों तथा न्यायाधीशों पर भी उसका कोई अधिकार नहीं

* Hazen: The French Revolution, Vol.1, p. 330.

† Thompson : The French Revolution, p. 90

रहा। उसके मंत्री व्यवस्थापिका सभा के सदस्य नहीं हो सकते थे और इस तर
उन पर उसका कोई नियत्रण नहीं था।

इस प्रकार राष्ट्रीय सभा ने इंगलैण्ड का अनुकरण करके वैधानिक एकत
स्थापित किया परन्तु इसके साथ मॉतेस्क्यू के सिद्धान्त तथा अमेरिका के उदाहर
के अनुसार कार्यपालिका तथा व्यवस्थापिका का परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं रखा

स्थानीय शासन—

सभा ने स्थानीय शासन का भी पुनः सगठन किया। वह पिछले ज़मा
की प्रत्येक बात को नष्ट करके नवीन निर्माण करना चाहती थी। अतः उस
पुरानी व्यवस्था तथा स्थानीय शासन-व्यवस्था नष्ट कर दी और उसके स्थान
जनता के प्रभुत्व, एकरूपता तथा विकेन्द्रीकरण के सिद्धान्तों के आधार पर नवी
व्यवस्था की। समस्त देश ८३ प्रांतों (Department) में विभक्त किया ग
जो ३७४ जिलों (Canton) में बाँटे गये। इनके उपविभाग कम्यून थे जिन
सख्या ४४००० थी। इन विभागों एव उपविभागों के लिये सर्वत्र स्थानीय त
प्रान्तीय कौंसिलों की योजना की गई जिनमें सक्रिय नागरिकों के द्वारा निर्वाचि
सदस्य रखे गये। इस प्रकार स्थानीय शासन की नई व्यवस्था करके सभा
स्थानीय शासन पर राजा को जो सीधा अधिकार था वह नष्ट कर दिया औ
सारे देश मे समान शासन-व्यवस्था स्थापित करके एकरुपता ला दी।

न्याय-व्यवस्था—

इसी प्रकार उसने पुरानी न्याय व्यवस्था तोडकर नये केन्द्रीय त
स्थानीय न्यायालयों का निर्माण किया जिनके न्यायाधीशों के भी सक्रिय नागरि
द्वारा निर्वाचन की व्यवस्था की गई। मुद्रायुक्त पत्रों का चलन बन्द कर दिया ग
और जूरी द्वारा मुकद्दमे करने की व्यवस्था भी की गई।

चर्च की व्यवस्था—

चर्च की भी नई व्यवस्था की गई। प्रत्येक प्रान्त के लिये एक चर्च र
गया जिसके विशप का अब जनता द्वारा चुनाव होने लगा। चर्च की सम्पत्ति छ
लीगई और विशप तथा चर्च के अन्य कर्मचारी राज्य के कर्मचारी हो गये औ
उनकी नियुक्ति के लिये पोप या राजा की स्वीकृति की आवश्यकता न रही।

सभा मुख्य कर आर्थिक स्थिति को सम्हालने के लिये आमंत्रित की
थी। उसने कोष को भरने के लिये ऋण लेने का प्रयत्न किया और अन्य उपाय
किये परन्तु सभी प्रयत्न निष्फल हुए। तव उसने चर्च की समस्त भूमि जब्त कर
और उसे राष्ट्रीय सम्पत्ति घोषित कर दिया। यह सम्पत्ति कोई १५ करोड़ रूपये
थी। इस सम्पत्ति को जमानत पर पत्र-मुद्रा (Assignat) जारी की गई।

समीक्षा—

इस प्रकार राष्ट्रीय सभा ने पुरानी व्यवस्था का विनाश कर नई व्यवस्था का निर्माण किया परन्तु, जैसा हम ऊपर बतला चुके हैं, विधान के निर्माता बुद्धिमान् एवं योग्य होते हुए भी राजनीतिक अनुभव से हीन कोरे सैद्धान्तिक थे। उन्होंने कुछ सिद्धान्त स्थिर करके उनके अनुसार विधान बना डाला परन्तु व्यवहार में उसमें क्या कठिनाइयाँ उपस्थित होंगी इस बात की ओर उनका ध्यान नहीं गया। सभा में मिराबो ही अकेला ऐसा व्यक्ति था जो इन बातों को खूब समझता था परन्तु उसकी सलाह किसी ने नहीं मानी। * पुरानी निरंकुश स्वेच्छाचारी व्यवस्था की जिन बातों से जनता को कष्ट थे उन सब को नष्ट करना तथा उसके स्थान पर आदर्श व्यवस्था स्थापित करना उसका लक्ष्य था। इसमे उसने अनेक भूलें की।

सर्वप्रथम उसने नागरिक के आधारभूत अधिकारों की घोषणा करने में ही बड़ी ग़लती की। मिराबो ने इसकी आलोचना करते हुए कहा था कि तत्कालीन स्थिति में जनता को उसके अधिकारों की जगह उसके नागरिक कर्तव्यों की याद दिलाना चाहिये था। उसमें कई त्रुटियाँ थी और कई अधिकार बड़े अस्पष्ट थे। यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि यह घोषणा मात्र थी। उसका आशय यह नहीं था कि नागरिकों को वे सब अधिकार तत्काल मिल जायँगे। वस्तुतः उनमें से बहुत से अधिकार फ्रान्सवासियों को अभी तक नहीं मिले हैं। † उसने जनता के सामने एक आदर्श प्रस्तुत किया था परन्तु ऐसा करने में उसने जनता में ऐसी आशाएँ उत्पन्न करदीं जिनको विधान में वह स्वयं पूरी नहीं कर सकी। उसे नागरिकों को सक्रिय तथा निष्क्रिय कोटि में विभाजित करना पड़ा और इस प्रकार जो अधिकार उसने समस्त जनता को दिये थे, वे प्रायः आधे लोगों से तुरन्त ही छीन लिये गये। निर्वाचक बनने के लिये सम्पत्ति का स्वामी होना आवश्यक था। इस शर्त के अनुसार कुल ४३००० नागरिक निर्वाचक बन सकते थे। इतना अवश्य था कि प्रतिनिधि कोई भी सक्रिय नागरिक बना सकता था परन्तु सम्पत्तिशाली लोगों से यही आशा हो सकती थी कि वे अपने ही वर्ग के लोगों में से प्रतिनिधि चुनेंगे। हुआ भी यही। यही लोग न्यायधीशों को भी

* इस सभा के अधिकांश सदस्य आदर्शवादी होने के कारण कई लोग बड़े तिरस्कारपूर्वक इसे 'घृणित आध्यात्मिक सभा' कहा करते थे। Madelin: The Revolutionaries, p 113.

† Thompson: The French Revolution, p. 89.

चुनते थे। इस प्रकार न केवल नागरिकों से समानता का अधिकार छीन लिया गया, वरन् पुराने विशेषाधिकारों की जगह नये विशेषाधिकार स्थापित कर दिये गये। इसके फल-स्वरूप जनता में एक असन्तुष्ट वर्ग उत्पन्न हो गया।

राजा की शक्ति कम करने के उत्साह में उसने केवल उसके अधिकार ही कम नहीं किये, उसका व्यवस्थापिका से कोई सम्बन्ध ही नहीं रखा। उसके मन्त्री व्यवस्थापिका के सदस्य नहीं हो सकते थे। इस प्रकार शासन की आवश्यकता बतलाने वाला तथा शासन के प्रति शंकाओं का निवारण करनेवाला कोई व्यक्ति व्यवस्थापिका में नहीं हो सकता था। अतः दोनों में मतभेद की सम्भावना बनी रही। मतभेद के समय राजा के लिये व्यवस्थापिका का भंग कर मतभेद के मामले का निर्णय जनता पर छोड़ देने का अधिकार भी उसके हाथ में नही था। इस प्रकार दोनों में संघर्ष की सम्भावना रही जिसका निर्णय केवल क्रान्ति द्वारा ही हो सकता था।

इसके साथ ही इस भय से कि राजा अपने पुराने अधिकार फिर से प्राप्त न कर ले उसने शासन का विकेन्द्रीकरण करके उसे बिलकुल निर्बल कर दिया। स्थानीय कर्मचारी तथा न्यायाधीश सब चुने हुए होने लगे जिन्हें शासन का कोई अनुभव नहीं था। शासन अस्तव्यस्त हो गया और देश में अराजकता व्याप्त हो गई।

चर्च का नया संगठन (Civil Constitution of the Clergy) भी एक महान् भूल थी। इसमें केथोलिक पादरियों का चुनाव प्रोटेस्टेएट लोगों तथा नास्तिकों के द्वारा भी हो सकता था। इस बात से धार्मिक प्रवृत्ति के लोगों की भावनाओं को बड़ी चोट पहुंची। पादरियों को निर्वाचन के बाद नये विधान के समर्थन की शपथ लेना पड़ता था। अधिकांश पादरियों ने शपथ लेने से इन्कार कर दिया। उनमें वे छोटे पादरी भी थे जिन्होंने आरम्भ से ही सर्वसाधारण वर्ग तथा क्रान्ति का साथ दिया था। वे रुष्ट होकर अलग हो गये और क्रान्ति के विरोधी बन गये। देश की जनता अधिकांश में केथोलिक थी और पादरियों के प्रभाव में थी। इस प्रकार सारे राष्ट्र में फूट पड़ गई, क्रान्ति का पक्ष निर्बल हो गया और क्रान्ति-विरोधी दल की शक्ति और उसके हौसले बढ़े। राजा ने समय की गतिविधि देख कर किसी प्रकार क्रान्ति को स्वीकार कर लिया था। परन्तु वह पक्का केथोलिक था और इस व्यवस्था को सहन न कर सका। आगे चलकर उसने कुछ अंश तक इसी कारण से देश छोड़कर भागने का प्रयत्न किया जिससे क्रान्ति का रूप ही बदल गया।

हम आगे देखेंगे कि इन सब दोषों के कारण यह विधान असफल रहा और उसमें कई बार परिवर्तन किये गये। परन्तु इतना हमें मानना पड़ेगा कि उसकी बहुतसी बातें मूल्यवान् थीं और उनमें से कई बातें आज तक विद्यमान् हैं। उसने विशेषाधिकार तथा असमानता के सिद्धान्तों के आधार पर स्थिर सामाजिक व्यवस्था को नष्ट कर समानता के सिद्धान्त पर नये समाज की आंशिक सृष्टि की और फ्रान्स के पुराने प्रान्तीय विभागों को हटाकर नये प्रान्त बनाये जो अभी तक वैसे ही बने हुए हैं। जैसा हम ऊपर देख चुके हैं, यह विधान पूर्ण समानता स्थापित नहीं कर सका। उसने राजा के अधिकारों पर मर्यादाएँ लगाकर मर्यादित (वैधानिक) एकतंत्र स्थापित किया परन्तु उसमें शक्ति जनता के हाथों में न होकर पूंजीपति मध्यम वर्ग के हाथों में रही। इस प्रकार यह विधान मध्यम वर्गीय विधान था।

यह विधान कई महीनों में बन पाया था परन्तु सुविधा की दृष्टि से हमने इसका पूरा विवरण एक साथ ही दे दिया है। इसका वर्णन करने में हम बहुत आगे निकल आये है। जिन दिनों विधान बन रहा था उन दिनों फ्रान्स में अनेक महत्वपूर्ण घटनाएँ घट रही थीं।

वार्साय पर स्त्रियों का आक्रमण—

बास्तिल के पतन के बाद राजा और प्रजा में समझौता होगया था और राष्ट्रीय सभा ने ४ अगस्त की बैठक के अन्त में लुई को फ्रेन्च स्वतंत्रता का पुनः स्थापक घोषित किया था। परन्तु रानी मेरी ऑत्वानेत तथा अनेक दरबारियों ने अपने षड्यंत्र जारी रखे और वे राजा पर अपना अनिष्टकारी प्रभाव डालते रहे। ४ अगस्त को सभा ने जो आदेश (Decrees) सामन्तवाद की समाप्ति के लिये स्वीकार किये थे उन पर राजा ने अभी हस्ताक्षर नहीं किये थे। इससे सभा के सदस्यों तथा जनता में शंका उत्पन्न हो रही थी। उधर अफवाह उड़ने लगी कि राजा वार्साय छोड़ कर मेत्ज (Metz) के लिये प्रस्थान करनेवाला है और पेरिस में राजभक्त सेना एकत्रित करने का विचार कर रहा है। वार्साय में सेना को एक भोज भी दिया गया था जिससे शंका और भी बढी। यह भी अफवाह उड़ी कि उस भोज में राष्ट्रीय तिरंगे झण्डे को सैनिकों ने पैरों तले कुचला था। इस पर क्रुद्ध होकर ५ अक्टूबर को एक बड़ी भीड़ जिसमें आगे आगे रोटी के नारे लगाती हुई उत्तेजित स्त्रियों का एक झुण्ड

था, वार्साय की ओर बढी। उसने महल को घेर लिया। कुछ लोग महल में घुस गये। अन्त में कुछ समझदार लोगों के समझाने से राजा अपनी रानी तथा अपने पुत्र के साथ उस भीड के साथ पेरिस के लिये रवाना हो गया (६ अक्टूबर) और वहीं अपने परिवार के साथ वस्तुतः एक कैदी की तरह एक महल (Tuilleries) में रहने लगा। विधान सभा भी वार्साय से हट कर पेरिस चली आई और राजा तथा सभा दोनों एक प्रकार से पेरिस की जनता के बन्दी हो गये। इस समय से क्रान्ति की गतिविधि पर पेरिस की जनता का प्रभाव बढने लगा। पेरिस की जनता, जिसमें नगों-भूखों के अतिरिक्त गुण्डे और बदमाश बहुत बड़ी संख्या में थे, सदा सभा को घेरे रहती थी, शोर मचाती थी और उसके निर्णयों को प्रभावित करती थी। इस प्रकार राष्ट्रीय सभा, जो राष्ट्र की प्रतिनिधि थी, अकेले पेरिस नगर के प्रभाव मे काम करने लगी।

सकट के बादल—

क्रान्ति के आरभ से ही शासन बिगड़ गया था और धीरे-धीरे देश में अराजकता बढ़ती जा रही थी। सब तरफ संकट और कठिनाइयाँ बढ रही थीं। देश के अन्दर असन्तोष बढ रहा था और बाहर से भी संकट के बादल उठते हुए दिखाई दे रहे थे। विधान सभा ने अनेक प्रकार के लोगों पर प्रहार किया था। जिन लोगों के विशेषाधिकार छीन लिये गये थे वे सब असन्तुष्ट थे। चर्च नये सगठन के कारण विद्रोही हो रहा था। पत्र-मुद्रा से व्यापार में अनिश्चितता आ गई थी और नये कानूनों के कारण व्यापारिक वर्ग किंकर्तव्यविमूढ़ हो रहा था, देश की आधी दूकानें तथा एक-तिहाई कारखाने बन्द थे; ग़रीबी तथा आर्थिक अव्यवस्था बढ़ रही थी। केन्द्रीय शासन के अव्यवस्थित हो जाने से शासन की प्रतिष्ठा जाती रही थी। स्थानीय शासन अनुभवहीन व्यक्तियों के हाथों में था। सेना और नौ-सेना मे अनुशासन बिलकुल नहीं रहा था, वह विद्रोही हो रही थी और राष्ट्रीय रक्षक-दल के साथ खुले आम मिलती थी। राजा के लिये वह बिलकुल बेकार हो गई थी और साथ ही राष्ट्रीय सभा के लिये भी परेशानी पैदा कर रही थी। सारा देश राजनीति से ऊब उठा था और चाहता था कि पुनः शान्ति एव व्यवस्था स्थापित हो और लोग अपना नियमित जीवन बिता सकें। विधान सभा भी काम करते करते थक गई थी और अप्रिय होती जा रही थी। उसके विरुद्ध सब तरफ से शिकायतें

आ रही थी। किसी की शिकायत थी कि वह सुधार करने में सीमा से वाहर निकलती जा रही है और कोई शिकायत करता था कि वह काफी नही कर रही है। सभा स्वयं विभक्त होती जा रही थी। उसमें उग्र विचारवाले सदस्यों का ज़ोर वढ़ता जा रहा था। उन लोगों का सभा में तो वहुमत नहीं था परन्तु उनके पीछे पेरिस की जनता का तथा एक प्रख्यात क्लब (जकोवें क्लव) का जिसके सदस्यों की संख्या वहुत वड़ी थी और जिसकी देश भर में ४०० से अधिक शाखाएँ थीं, समर्थन था। इनके सामने अपरिवर्तनवादी तथा नरम विचार वाले सदस्य पीछे हटते जाते थे और सभा के विचार-विमर्ष में वहुत कम भाग लेते थे।

उधर देश में वाहर से भी आपत्ति की आशंका वढ रही थी। यों तो सभा विदेशी मामलों से अभी तक दूर रही थी परन्तु वह कुछ कार्य ऐसे कर चुकी थी जिनसे वाह्य हस्तक्षेप की आशका वढ़ती जा रही थी। इनके विषय मे आप आगे पढेंगे।

मिराबो की मृत्यु—

ऐसे सकट की अवस्था में यदि कोई स्थिति सम्हाल सकता था तो वह था मिरावो। वह कुलीन वंश का था। उसमे अनेक अवगुण थे परन्तु फिर भी वह एक योग्य राजनीतिज्ञ था। समस्त राष्ट्रीय सभा में वही अकेला व्यक्ति था जो समझता था कि शासन का निर्माण कोरे सैद्धान्तिकों एव दार्शनिकों की कल्पनाओं के आधार पर नहीं, वरन् जनता की नैतिक एवं आर्थिक दशा तथा ऐतिहासिक परम्पराओं के आधार पर ही किया जा सकता है। वह निरकुश स्वेच्छाचारी शासन का घोर विरोधी था परन्तु वैधानिक एकतंत्र का समर्थक था। वह चाहता था कि एकतत्र तो वना रहे परन्तु उसकी कमजोर नसों में सर्वसाधारण वर्ग के ताजा रक्त का प्रवाह करके उसे राष्ट्रीय वना दिया जाय। यदि उसकी चलती तो वह समस्त विशेषाधिकारों का अन्त कर समस्त राष्ट्र को एक कर देता और जनता द्वारा निर्वाचित व्यवस्थापिका के सहयोग से कार्य करने की शर्त पर राजा को भी अधिकार दे देता। वह शिथिल और निर्वल शासन की वुराइयाँ अच्छी प्रकार समझता था और इसी कारण उसने राष्ट्रीय सभा में शासन तथा व्यवस्थापिका को विलकुल अलग करने तथा शासन को निर्वल वनाने की योजनाओं का वड़ा विरोध किया था। वह जानता था कि शासन निर्वल हो जाने से देश में अराजकता फैल जायगी। परन्तु सभा ने उसकी वातों पर ध्यान नहीं दिया। वह राजा को समझाना चाहता था कि वीती को विसार कर आगे की सुध ले। क्रान्ति

हो चुकी थी, पुरानी व्यवस्था नष्ट हो चुकी थी और वह पुनः स्थापित नही की जा सकती थी। वह चाहता था कि राजा स्वयं आगे बढ कर वैधानिक मार्ग पर क्रान्ति का नेतृत्व करे और अनियन्त्रित क्रान्ति के भावी संकट से देश की रक्षा करे। सभा में विफल होकर उसने राजा को समझा कर एकतत्र को बचाना चाहा। उसकी योजना यह थी कि राजा ऐसे मन्त्रियों की सहायता से शासन करे जिनमें राजा तथा सभा के उग्र दल दोनों का विश्वास हो परन्तु ऐसे व्यक्तियों का मिलना असम्भव था। ऐसी दशा में उसने राजा को पेरिस के दबाव से अपने आपको मुक्त कर समस्त देश से अपील करने की सलाह दी। परन्तु इस कार्य के लिये भी योग्य विश्वासपात्र आदमियों की कमी थी। मिराबो स्वय यह काम कर सकता था। राजा स्वय उस पर विश्वास कर भी लेता परन्तु दुर्भाग्य-वश रानी तथा दरबारी लोग उसे जनता का समर्थक समझकर उसमें अविश्वास करते थे। उधर सभा में भी उसकी राय की कोई परवाह नही होती थी। इस प्रकार मिराबो जो इस समय राष्ट्र का कर्णधार बन सकता था कुछ न कर सका। फिर भी उससे बहुत कुछ आशा की जा सकती थी। अपने जीवन के अन्तिम महीनों में वह अपने राजनीतिक उत्कर्ष पर पहुँच चुका था। दिसम्बर १७९० में वह ज़कोवें क्लब का सभापति बन गया था और जनवरी १७९१ में राष्ट्रीय सभा का सभापति चुन लिया गया था। किन्तु २ अप्रैल १७९१ को उसका देहान्त हो गया और उसके साथ फ्रेञ्च एकतंत्र की रक्षा की जो कुछ आशा थी वह भी जाती रही। 'यदि मिराबो जीवित रहता तो फ्रान्स का भाग्य बदल जाता।' * निस्सन्देह क्रान्ति ने जितने आदमी उत्पन्न किये उनमे वह सबसे बड़ा था। यदि वह जीवित रहता तो एकतत्र की रक्षा कर लेता और क्रान्ति को वैधानिक मार्ग पर आगे बढ़ाता। †

राजा के भागने के असफल प्रयत्न—

मिराबो की मृत्यु से लुई को दुःख हुआ हो या न हुआ हो किन्तु उसे अपनी स्थिति की असहायता प्रकट होगई। विधान करीब करीब बन चुका था। उसमें जो केवल अलंकारिक स्थिति उसकी रखी गई थी वह उसे बिलकुल पसन्द नही थी। उस पर अपनी स्वीकृति देने के पहले ही वह फ्रान्स छोड़ कर भाग जाना चाहता था। १८ अप्रैल १७९१ को उसने पेरिस से हट कर सैंन क्लूद

* Madelin : The Revolutionaries, p. 65.

† Ketelbey : A History of Modern Times, p. 60-61.

(St. Cloud) जाने का प्रयत्न किया परन्तु भीड़ ने उसे रोक दिया। यह देख कर उसने बड़ी गुप्त रीति से तैयारी की और २० जून को अपने परिवार के साथ चुपके से मेत्ज (Metz) के लिये वह रवाना होगया। परन्तु रास्ते में वह पहचान लिया गया। लोग उसे पकड़ कर वापस पेरिस ले आए। अब उसके महल पर कड़ा पहरा रख दिया गया और वह वस्तुतः क़ैदी बन गया।*

गणतंत्रवाद का जन्म—

राजा के भागने के प्रयत्न का तात्कालिक परिणाम तो यह हुआ कि जनता का उसमें से विश्वास उठ गया। वह यह समझने लगी कि फ़्रेंच राष्ट्र के तथा राजा के हित एक नहीं हैं। इस प्रयत्न के फल-स्वरूप फ़्रान्स के गण-तन्त्रीय दल (Republican Party) का उदय हुआ। अभी तक क्रान्ति-कारियों में से कोई एकतन्त्र के विरुद्ध नहीं था। रोब्सपीयर (Robespierre), दाँतो (Danton), मारा (Marat) जैसे उग्र क्रान्तिकारी नेता भी केवल राजा के अधिकारों को सीमित कर देना चाहते थे। किन्तु अब वे एकतन्त्र को समाप्त कर फ़्रान्स में गणतंत्र स्थापित करने पर तुल गये।

इसके विपरीत राष्ट्रीय सभा के सदस्यों ने राजा के भागने के प्रयत्न से अपनी भूल का अनुभव किया। वे समझ गये कि राजा की सत्ता कम करने और उसे एक कठपुतली मात्र बना देने में उन्होंने बहुत ज्यादती की थी। उन्हें उसके साथ सहानुभूति हुई। यही अनुभूति देश भर में मध्य-वर्ग को भी हुई और उन्होंने सभा का समर्थन किया। इस प्रकार मध्य-वर्ग में राजा के पक्ष में प्रतिक्रिया भी आरम्भ हुई।

राजा की मुअत्तिली—

जब सभा में यह प्रश्न उपस्थित हुआ तो रोब्सपीयर तथा दाँतों ने राजा को पदच्युत करने का प्रस्ताव किया परन्तु वह प्रस्ताव स्वीकृत नहीं हुआ और सभा ने राजा को केवल कुछ काल के लिये मुअत्तिल कर दिया। उग्रपन्थियों को

---

* ऐसा प्रतीत होता है कि राजा का इरादा फ़्रान्स छोड़ कर भागने का नहीं था। वह मोंमेदी (Montmedy) में शरण लेना चाहता था। इसके बाद जो संघर्ष होता वह गृह-कलह मात्र ही नहीं रहता। शायद योजना यह थी कि यदि उसका निकल भागने का प्रयत्न सफल हो जाता तो फ़्रेंच सेना में जो जर्मन सैनिक थे वे और विदेशी सेनाएँ पेरिस पर आक्रमण करतीं और पुरानी व्यवस्था को पुनः प्रतिष्ठित कर देतीं। Belloc : The French Revolution, p. 107.

सभा का यह निर्णय पसन्द नहीं आया और उन्होंने १७ जुलाई को पेरिस में एक गणतन्त्रीय प्रदर्शन की आयोजना की। शान्ति-भङ्ग के डर से सभा ने पेरिस के मेयर वेली और राष्ट्रीय रक्षक-दल के संचालक लाफाएत को शान्ति की रक्षा करने का आदेश दिया। भीड़ एक मैदान में (Champ de Mars) में एकत्रित थी। उसने हटने से इन्कार कर दिया। इस पर रक्षक-दल के सैनिकों ने गोलियाँ चलाईं जिससे १२ मनुष्य मारे गये और कई घायल हो गए। भीड़ बिखर गई, शान्ति-भङ्ग भी नहीं हुआ परन्तु पेरिस की जनता राष्ट्रीय सभा से बहुत असन्तुष्ट हो गई।

विधान सभा का विसर्जन—

परन्तु अब सभा का कार्य समाप्त हो चुका था। २१ सितम्बर को राजा ने नये विधान पर अपनी स्वीकृति दे दी और उसका पालन करने का वचन दिया। सभा ने उस को पुनः सिंहासन पर बिठा दिया। ३० सितम्बर १७९१ को सभा विसर्जित होगई परन्तु विसर्जित होने के पहले वह एक कानून बना गई जिसके अनुसार उसका कोई भी सदस्य नई व्यवस्थापिका सभा का सदस्य नहीं हो सकता था। इसके साथ ही अपने कार्य को स्थायी बनाने की दृष्टि से उसने घोषणा की कि राष्ट्र को अपने विधान में संशोधन करने का अधिकार है परन्तु तीस वर्षों तक उस अधिकार का प्रयोग न करना ही उसके हित में होगा।*

विधान सभा के कार्य का सिंहावलोकन—

यह कानून बनाकर विधान सभा ने बड़ी भारी मूर्खता की क्योंकि इससे उसके बनाये हुए निर्बल विधान का विनाश तो निश्चय हो ही गया, इसके साथ ही राज्य का नाश भी निश्चित होगया।† इस सभा के सदस्य दो वर्षों से देश की समस्याओं का मुकाबला कर रहे थे और उन्हे बड़ा अमूल्य अनुभव प्राप्त हुआ था जिसकी सहायता से वे देश की सेवा कर सकते थे। ऐसा करने मे उन्होंने अपनी निस्पृहता का तो परिचय दिया परन्तु नये शासन को अपने अनुभव से वंचित कर दिया। नये विधान को कार्यान्वित करने का काम बिलकुल अनुभव-हीन नये आदमियों के हाथों मे पहुचा जिनसे भूलें होना स्वाभाविक ही था।

राष्ट्रीय सभा ने अपनी दो वर्ष की अवधि में बहुत कार्य किया था। उससे कई भूलें हुई थीं और उसने देश के लिये कई समस्याएँ छोड़ी थीं। उसने पुरानी शासन-व्यवस्था को समूल नष्ट कर दिया परन्तु उसकी जगह वह सुव्यव

* Lodge · A History of Modern Europe, pp. 515–516.

† Madelin : The Revolutionaries, p. 125.

स्थित, सुदृढ़ शासन स्थापित न कर सकी। उसने शासन तथा व्यवस्थापिका को अलग कर तथा शासन को निर्बल करके जनता की अनसमझ भीड़ के शासन के लिये मार्ग खोल दिया। उसने स्वतंत्रता, समानता तथा जनता के प्रभुत्व जैसे सिद्धान्तों की घोषणा की थी जो उस अवस्था में बड़े खतरनाक सिद्ध हुए। उसने चर्च का नया संगठन कर उसमें फूट डाल दी। आविन्यों (Avignon) तथा अल्सास मे जर्मन राजाओं की भूमि छीन कर अन्तर्राष्ट्रीय कानून का उसने उल्लंघन किया और अन्त मे नई व्यवस्थापिका सभा को अपने अनुभव से वञ्चित करके देश को बड़ी हानि पहुँचाई। नई व्यवस्थापिका सभा के एक सदस्य थीयोदोर लागेथ ने इस त्रुटि की चर्चा करते हुए कहा था कि विधान सभा ने इतना शीघ्र अपना अन्त करके और अपने सदस्यों को पुनः निर्वाचन के अयोग्य घोषित करके क्रान्ति की अवधि लम्बी करदी है।* यदि ऐसा नहीं किया जाता तो शायद क्रान्ति समाप्त हो जाती।

परन्तु पुरानी अत्याचारपूर्ण व्यवस्था का प्रथम विरोध करना कोई हंसी खेल नहीं था। बड़ी निर्भीकता और अदम्य साहस के साथ उसने पुरानी व्यवस्था का विरोध किया और इतिहास की धारा ने कूड़े-करकट का जो पहाड़ इकट्ठा कर दिया था उसे उसने साफ किया। शताब्दियों से दलित, पीड़ित तथा निराश जनता में उसने उत्साह फूंका और असमानता तथा विशेषाधिकार का नाश कर तथा कानून की सामान्य प्रणाली स्थापित करके और सब के लिये करों का भार बराबर करके उसने एक विभक्त राष्ट्र का एकीकरण किया। इस प्रकार उसने एक सामाजिक क्रान्ति की। साथ ही उसने पुरानी व्यवस्था को नष्ट कर उसके स्थान पर प्रजातंत्रीय शासन स्थापित करके तथा जनता की इच्छा को राज्य की नीति की कसौटी बना कर एक महान् राजनीतिक क्रान्ति की। सबसे अधिक महत्व का काम जो उसने किया वह था समस्त संसार के लिये तथा सदा के लिये व्यक्ति के गौरव की युगान्तरकारी घोषणा।†

---

* Hazen. The French Revolution, Vol, I p. 431

† Ketelbey · A History of Modern Times, p. 65-66.

अध्याय ६

वैधानिक एकतंत्र का परीक्षण

व्यवस्थापिका सभा (१ अक्टूबर १७६१– २१ सितम्बर १७६२)

नये विधान के निर्माण तथा उस पर राजा की स्वीकृति प्राप्त हो जाने पर बड़ा उत्सव मनाया गया। राजा के महल में तिरंगी पताकाएँ फहराई गईं, रोशनी की गई, आतिशबाज़ी हुई। उत्सव के बीच राजा घूम-घूम कर सबसे मिल रहा था और कह रहा था, 'क्रान्ति समाप्त हो गई। राष्ट्र फिर पहले जैसा ही प्रसन्न बन जाय।' उपस्थित लोगों ने उस भावना का समर्थन किया। देश में सर्वत्र आनन्द छा गया। लोगों ने, विशेषकर मध्यम वर्ग ने, यह सोचकर सुख तथा सन्तोष की सांस ली कि क्रान्ति समाप्ति हो गई क्योंकि राजा ने नया विधान स्वीकार कर लिया था और अब वे अपना काम शान्तिपूर्वक कर सकेंगे। परन्तु उनकी यह आशा शीघ्र ही टूट गई।

क्रान्ति का पहला पहलू समाप्त हुआ। निरंकुश स्वेच्छाचारी एकतत्र के स्थान पर वैधानिक एकतंत्र की स्थापना हुई। नई व्यवस्थापिका सभा का प्रथम अधिवेशन १ अक्टूबर १७६१ को हुआ। उसमें कुल ७४५ सदस्य थे। वे मध्यम वर्ग के थे और उनमे वकीलों की संख्या अधिक थी। यह सभा भी राष्ट्रीय सभा के समान वैधानिक एकतंत्र की समर्थक थी। देश भी अभी तक राजा के शासन में विश्वास करता था। ऐसी दशा में भविष्य में प्रजातन्त्र के शान्तिपूर्वक विकास की आशा सहज ही हो सकती थी। परन्तु यह बात राजा के ऊपर निर्भर थी। यदि राजा ने नये विधान को सचाई के साथ स्वीकार कर लिया हो और वह हृदय से उसे कार्यान्वित करने के लिये तैयार हो तो देश शान्तिपूर्वक आगे बढ सकता था परन्तु यदि उसके आचरण से उसकी सचाई में शंका हुई तो नये विधान के लिये खतरा अवश्य था क्योंकि ऐसी दशा मे जनता के उसके विरुद्ध होने का डर था। यह खतरा काफी गंभीर था क्योंकि व्यवस्थापिका सभा के सदस्य नये और अनुभवहीन थे और उनमें से कई उग्र गणतंत्रीय विचारों से प्रेरित थे। इन विचारों का प्रचार देश मे बड़े ज़ोर से हो रहा था।

व्यवस्थापिका सभा के दल—

राष्ट्रीय सभा में दलबन्दी का कुछ-कुछ आरभ हो चुका था परन्तु नई व्यवस्थापिका सभा में शीघ्र ही दलबन्दी हो गई। उसमें दो संगठित दल थे।

दक्षिणपक्षीय (Right) दल वैधानिकों का था। इस दल के सदस्य फेइयाँ (Feuillants) के गिर्जे में एकत्रित हुआ करते थे। अतः वे इस नाम से भी पुकारे जाते थे। वे नये विधान के पक्ष में थे और वैधानिक एकतंत्र के समर्थक थे। उनकी संख्या सभा में काफी अधिक थी और उन्हें मध्यम वर्ग का समर्थन प्राप्त था। लाफाएत तथा राष्ट्रीय रक्षक-दल भी उनके समर्थक थे। नये विधान का भविष्य राजा के इस दल के साथ सहयोग पर निर्भर था परन्तु उसने भूल की और उसके साथ सहयोग नहीं किया।

वामपक्षीय (Left) दल में वे लोग थे जो समझते थे कि अभी क्रान्ति का कार्य पूरा नहीं हुआ है। वे राजसत्ता का अन्त कर गणतत्र की स्थापना करना चाहते थे। इनकी संख्या दक्षिणपक्षीय दल से कम थी। वे दो गुटों में विभक्त थे—जिरोंदीस्त दल तथा ज़कोवैं दल। जकोवैं दल छोटा था परन्तु उसे पेरिस तथा दो बड़े शक्तिशाली क्लबों—ज़कोवैं (Jacobin) तथा कोर्देलिये (Cordelier)—का समर्थन प्राप्त था। जकोवैं क्लब का आरंभ क्रान्ति के आरंभ काल में ही हो चुका था। आरंभ में उसकी नीति नरम थी और उसमें सब प्रकार के सुधारवादी लोग एकत्रित होते थे। परन्तु धीरे-धीरे उसकी नीति उग्र होती गई और मिरावो, लाफाएत जैसे नरम विचारवाले सदस्य उससे अलग हो गये तथा क्लब का नेतृत्व रोब्सपियर जैसे उग्र विचारवाले लोगों के हाथ में पहुँच गया। इस क्लब का प्रधान स्थान पेरिस था। उसकी ४०० के लगभग शाखाएँ थी जो सारे देश मे फैली हुई थी। धीरे-धीरे यह क्लब इतना शक्तिशाली हो गया और उसका प्रभाव इतना बढ गया कि वह व्यवस्थापिका सभा का प्रतिद्वन्द्वी बन गया। कोर्देलिये क्लब की नीति आरभ से ही उग्र थी उसके नेता मारा, दाँतों तथा केमिल देसमोलाँ (Camille Desmoulins) थे। इन क्लबों मे राजनीतिक प्रश्नों पर गरमागरम बहस होती थी और उनका लोकमत पर बडा प्रभाव पड़ता था। जकोवैं दल के सदस्य येनकेनप्रकारेण राजसत्ता का अन्त कर गणतत्र की स्थापना करना चाहते थे। सभा में ये लोग ऊँचे स्थान पर बैठा करते थे। इसलिये वे 'पर्वत' (Mountain) के नाम से भी पुकारे जाते थे।

व्यवस्थापिका सभा में आरभ में जिरोदीस्त दल की सख्या ज़कोवैं, दल से अधिक थी और उसका प्रभाव भी अधिक था। इस दल के नेता जिरोंद प्रान्त के थे। इसीलिए इस दल का यह नाम पड़ा। नेताओं में मुख्य वेरियों (Vergniaud), ब्रिसो (Brissot), कोन्दोर्से (Condorcet)

तथा मादाम रोलॉ (Madame Roland) थे। इनमे से प्रथम तीन व्यवस्थापिका सभा के सदस्य थे। इस दल के सदस्य बड़े योग्य तथा उत्साही गणतंत्रवादी थे परन्तु उनमें अनुभव नहीं था। उनका क्रान्ति में विश्वास था परन्तु उसको आगे बढ़ाने मे वे पाशविक बल का प्रयोग अनुचित समझते थे। वे प्रत्येक कदम वैधानिक रीति से उठाना चाहते थे।

इन दोनो—दक्षिणपक्षीय तथा वामपक्षीय—दलों के बीच में 'केन्द्रीय' (Centre) दल था। इसके सदस्य संख्या में बहुत थे। वास्तव में उसे दल नहीं कह सकते। उसका कोई संगठन नहीं था, उसकी कोई निश्चित नीति नही थी और प्रत्येक सदस्य स्वतत्र रूप से मत देता था। वे लोग राज-सत्ता के समर्थक थे और उनकी सहानुभूति दक्षिणपक्षीय थी। परन्तु वे नये राजनीतिक सिद्धान्तों के भी समर्थक थे और इसी कारण दक्षिणपक्षीय दल उसकी उपेक्षा करता था। इस व्यवहार से वे धीरे-धीरे वामपक्षीय दल मे शामिल होते गये।* उसके सदस्यों को जकोबे दलवाले लोग प्रायः धमकाया भी करते थे और वे या तो उसका समर्थन करते थे या मत देते ही नहीं थे। इस दल का नाम मैदान (Plain) भी था।

प्रारम्भिक कठिनाइयाँ—

व्यवस्थापिका सभा को आरभ से ही कुछ कठिन समस्याओं का सामना करना पड़ा। चर्च की नई व्यवस्था अनेक पादरियों को पसन्द नहीं थी और उन्होंने शपथ लेने से इन्कार कर दिया था। ऐसी दशा में विधान के अनुसार वे अपने पद पर नहीं रह सकते थे। परन्तु वे बराबर कार्य कर रहे थे और लोगों को क्रान्ति के विरुद्ध भड़का रहे थे। उधर देश के बाहर बहुत से कुलीन लोग भी जो फ़्रान्स छोड़ कर बाहर चले गये थे यही कार्य कर रहे थे। कुछ तो इगलैंड चले गये थे परन्तु उनमे से अधिक-तर जर्मनी मे जा बसे थे। उनमें राजा के दो भाई भी थे—प्रॉवेन्स का काउण्ट जो बाद में अठारहवें लुई के नाम से राजा बना और आर्तुआ का काउण्ट जो आगे चल कर दसवें चार्ल्स के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उन लोगों ने कोबलेन्ज़ (Coblentz) में अपना अड्डा जमाया था। वे वहाँ अपना दरबार लगाते थे और उन्होंने एक सेना भी सगठित करली थी। वे जर्मनी के तथा अन्य राजाओं से पत्र-व्यवहार कर रहे थे और उन्हें फ्रान्स पर आक्रमण कर सोलहवें लुई का उद्धार करने के लिये भड़का रहे थे।

* Madelin · The Revolutionaries, p 105–106.

शपथ न लेने वाले पादरियों के विरुद्ध आदेश—

इस स्थिति से जिरोंदीस्त दल ने लाभ उठाया। उसका प्रभाव व्यवस्थापिका सभा में अधिक था। वह क्रान्ति के लिये कुछ करना चाहता था। पुरानी व्यवस्था की सभी बातें नष्ट हो चुकी थी। केवल राजा का पद बचा था। उसे भी वे नष्ट करना चाहते थे। इस कारण उन्होंने उकसानेवाली नीति से काम करना शुरु किया ताकि राजा कुछ गलती करे और वे उसे देशद्रोही प्रमाणित कर उसे हटा सकें। अतः उन्होंने नवम्बर १७९१ में एक आदेश जारी करवाया कि जिन पादरियों ने शपथ नहीं ली थी वे सब हटा दिये जॉय। परन्तु राजा ने इस आदेश को अपने 'निषेधाधिकार' से रद्द कर दिया।

राजा का यह कार्य अवैधानिक नहीं था परन्तु इससे वह क्रान्ति के शत्रुओं का पक्षपाती प्रकट होता था। ज़िरोंदीस्त इस स्थिति से बहुत प्रसन्न थे। वे फ्रान्स को दूसरे देशों के साथ युद्ध में उलझा देना चाहते थे जिससे राजा स्पष्टतया देशद्रोही प्रमाणित हो सके और राजपद का अन्त किया जा सके।

युद्ध की सम्भावना—

युद्ध अवश्यभावी नजर भी आ रहा था। इसके कई कारण थे। फ्रान्स के क्रान्तिकारी लोग अधिकाधिक प्रचारक बनते जा रहे थे। उन्होंने क्रान्ति को कभी एक सीमित राष्ट्रीय आन्दोलन नहीं समझा था। जिन सिद्धान्तों और मनुष्य के जिन आधारभूत अधिकारों की घोषणा राष्ट्रीय सभा ने की थी वे फ्रान्स तक ही सीमित नहीं थे, वरन् मनुष्यमात्र के लिये थे। ऐसे विस्फोटक सिन्द्धात किसी भी राज्य की सीमा के अदर बंद नहीं किये जा सकते।

इन सिद्धान्तों और क्रान्ति की भावना की बाढ़ को रोकने के लिये कोई मजबूत रुकावटें भी नहीं थी। हम ऊपर देख चुके हैं कि फ्रान्स के पूर्व की ओर मध्य-योरोपीय देशों के शासन बड़े निर्बल थे। जर्मनी विभक्त था। उसके प्रमुख राज्य ऑस्ट्रिया और प्रशा एक दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी थे और इस समय रूस से मिलकर पोलेण्ड को हड़पने का षड्यंत्र रच रहे थे। पवित्र रोमन साम्राज्य वोल्तेयर के इस व्यग को सत्य प्रमाणित कर रहा था कि वह न पवित्र है, न रोमन और न साम्राज्य। जर्मनी के किसी भी राज्य मे राष्ट्रीय भावना का नाम भी न था। शासन स्वेच्छाचारी थे और जनता असन्तुष्ट तथा नये विचारों का स्वागत करने के लिये तैयार थी। योरोप मे सर्वत्र जनता ने क्रान्ति में बड़ी दिलचस्पी ली थी। जो लोग उदार विचार के थे उन्होंने फ्रान्स मे एस्टेट्स-जन-

रल के निमन्त्रण का वैधानिक शासन तथा अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना के युग के उदय के रूप में स्वागत किया था। उनका विश्वास था कि जहाँ फ़्रान्स में सामन्तवाद का पतन हुआ वहाँ सारा योरोप उससे मुक्ति पा जायगा।

योरोप के स्वेच्छाचारी राजाओं का क्रान्ति के विचारों से भयभीत होना स्वाभाविक ही था। केवल इंगलैण्ड में उससे कोई भय उत्पन्न नहीं हुआ, उल्टे वहाँ के राजनीतिज्ञ बड़े प्रसन्न हुए। पिट ने उसे अपने देश की १६८८ की 'शानदार क्रान्ति' का अनुकरण मानकर गर्व की अनुभूति की। फॉक्स तो क्रान्ति की प्रशंसा करते अघाता ही नहीं था। परन्तु ज्यों-ज्यों क्रान्ति उग्र रूप धारण करती गई त्यों-त्यों इगलैण्ड की उसके प्रति भावना बदलती गई और उसके साथ वहाँ जो सहानुभूति थी उसने घृणा का रूप ले लिया। इस भावना की बर्क ने अपनी 'फ़्रेञ्च क्रान्ति पर विचार' नामक पुस्तक में अभिव्यक्ति की।

क्रान्तिकारी विचार एव प्रचार से तो योरोप के विभिन्न राजाओं को डर था ही, कई राजाओं को क्रान्ति के विरुद्ध कुछ विशिष्ट शिकायतें भी थीं। आप ऊपर पढ चुके हैं कि जर्मनी के कई राजाओं की फ़्रान्स के अल्सास प्रान्त मे भूमि थी जो छीनली गई थी। पवित्र रोमन साम्राज्य को पार्लामेण्ट ने जब इसके मुआवजे का सवाल उठाया तो फ्रान्स ने उसकी मांग के अनुसार मुआवजा देने से इन्कार कर दिया। ऑस्ट्रिया के सम्राट् द्वितीय लिओपोल्ड को तो क्रान्ति से अत्यधिक भय था। एक तो वह पवित्र रोमन साम्राज्य का सम्राट् था और दूसरे फ़्रान्स की उत्तर-पूर्वी सीमा पर 'ऑस्ट्रियन नेदरलैण्ड्स' (बेल्जियम) उसका निजी प्रदेश था। इसके अतिरिक्त रानी मेरी ऑत्वानेत उसकी बहिन थी और वह उसकी सुरक्षा के लिये बहुत चिन्तित था।

पिलनित्स की घोषणा—

फ़्रान्स के प्रवासी कुलीन सरदार सम्राट् तथा अन्य जर्मन राजाओं से लगातार सहायता के लिये अनुरोध कर रहे थे परन्तु सम्राट् द्वितीय लिओपोल्ड बड़ा समझदार था। वह समझता था कि यदि फ़्रान्स में हस्तक्षेप किया गया तो जोश भड़केगा और स्थिति अधिक बिगड़ जायगी। अगस्त १७६१ मे उसने प्रशा के राजा द्वितीय फ़्रेडरिक विलियम से पिलनित्स (Pilnitz) नामक स्थान पर भेंट कर प्रवासी कुलीनों की प्रार्थना अस्वीकार कर दी और जर्मनी की भूमि पर फ़्रान्स के विरुद्ध सशस्त्र तैयारी करने से उन्हें मना कर दिया। यहाँ तक तो उन्होंने बुद्धिमानी का कार्य किया था परन्तु इसके बाद उन्होंने बड़ी भयंकर भूल की। २७ अगस्त १७६१ को उन्होंने पिलनित्स से एक घोषणा प्रकाशित की कि

फ्रान्स के राजा का मामला योरोप के समस्त राजाओं का मामला है। सब राजाओं को परस्पर सहयोग करके उसका कठिनाइयों से उद्धार करना चाहिये। फ्रान्स की सरकार को चाहिये कि जर्मन राजाओं के जो अधिकार उसने छीन लिये हैं वह उन्हें वापस करदे। उसमें यह भी कहा गया कि यदि योरोप के अन्य राजा सहमत हुए तो जर्मन राजा अपने उद्देश्य की पूर्ति शस्त्र-बल से करेंगे। सम्राट् समझता था कि इस धमकी से काम चल जायगा परन्तु इसका प्रभाव उलटा पड़ा।

इस घोषणा से सारे फ्रान्स में सनसनी फैल गई। व्यवस्थापिका सभा ने दो आदेश जारी किये। प्रथम आदेश के द्वारा प्रॉवेन्स के काउण्ट को दो मास के अन्दर स्वदेश लौट आने के लिये कहा गया और न आने पर उसे अपने सिंहासन के उत्तराधिकार से वंचित करने की धमकी दी गई। राजा ने इसे तो स्वीकार कर लिया परन्तु दूसरे आदेश को निषिद्ध ठहरा दिया जिसके द्वारा यह घोषणा की गई कि यदि प्रवासी कुलीन १ जनवरी १७९२ तक अपने शस्त्र नहीं डाल देंगे तो वे देशद्रोही ठहराये जॉयगे, उन्हें मृत्यु दण्ड दिया जायगा और उनकी सम्पत्ति जब्त कर ली जायगी। इस आदेश को राजा ने रद्द तो कर दिया परन्तु उसने सभी प्रवासी कुलीनों से स्वदेश लौट आने का अनुरोध किया। राजा के इस कार्य से उसके प्रति शंका बढी और जिरोंदीस्त दल का पक्ष और मजबूत हो गया। लुई को उसी दल का अपना मन्त्रिमण्डल बनाना पड़ा (मार्च १७९२) और ऑस्ट्रिया से पूछा गया कि 'प्रवासी कुलीनों' से उसके सम्बन्ध का क्या अर्थ है ? ऑस्ट्रिया ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया, उल्टे उसने फ्रान्स पर दूसरे राज्यों की शान्ति एवं सुरक्षा को खतरा पहुँचाने का दोषारोपण किया। इस पर १० अप्रैल १७९२ को ऑस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध घोषित कर दिया गया। व्यवस्थापिका सभा के सभी दल भिन्न-भिन्न कारणों से इस युद्ध का समर्थन कर रहे थे। केवल रोब्सपियर तथा उसके कुछ साथी उसके विरुद्ध थे क्योंकि उनके विचार में युद्ध से केवल धनियों तथा प्रभावशाली व्यक्तियों को ही लाभ हो सकता था; गरीबों की तो उससे हानि ही होनी थी। राजा के समर्थक समझते थे कि युद्ध से उसके हाथ में सेना की शक्ति आ जायगी और विजयी होने से वह फिर लोकप्रिय होकर अपनी पुरानी प्रतिष्ठा एवं सत्ता प्राप्त कर सकेगा। जिरोंदीस्त तथा जकोबें लोग समझाते थे कि युद्ध से राजा की शत्रुओं से गुप्त गॉठ-सॉठ और उसका देशद्रोह प्रमाणित हो सकेगा। इस प्रकार उसे हटाकर गणतन्त्र स्थापित करना सरल हो जायगा।

युद्ध का दायित्व—

इस प्रकार इस युद्ध के छिड़ने का दायित्व फ़्रान्स पर ही था। योरोप के अन्य देशों में भी युद्ध के कारण तो विद्यमान् थे परन्तु इस समय कोई भी युद्ध छेड़ने के लिये तैयार नहीं था। इंगलैण्ड, हॉलैण्ड तथा स्पेन शान्ति के इच्छुक थे। ऑस्ट्रिया तथा प्रशा ने पिलनित्स की घोषणा अवश्य निकाली थी परन्तु उनकी भी लड़ने की इच्छा नहीं थी। उस घोषणा में धौंस अधिक थी और सशस्त्र हस्तक्षेप के लिये योरोप के अन्य राज्यों के सहयोग की शर्त थी। ऑस्ट्रिया जानता था कि इंगलैण्ड कभी सहयोग नहीं करेगा। इसके अतिरिक्त ऑस्ट्रिया तथा प्रशा का ध्यान फ्रेञ्च क्रान्ति की अपेक्षा पोलैण्ड में जो क्रान्ति हो रही थी उसकी तरफ अधिक था। रूस की रानी द्वितीय केथरीन पोलैण्ड को हड़पने को तैयार बैठी थी और ये दोनों राज्य उसकी गतिविधि से चिंतित थे। ऐसी दशा में वे फ्रान्स से युद्ध छेड़ना नहीं चाहते थे। साथ ही ऑस्ट्रिया के साम्राज्य के विभिन्न प्रान्तों में बड़ा असन्तोष था। इस अवस्था मे युद्ध छेड़ना ऑस्ट्रिया के हित में नहीं था।

यह युद्ध क्रान्ति के इतिहास में बड़ा महत्त्वपूर्ण है। उसने उसकी दिशा ही बदल दी। उसके कई ऐसे परिणाम हुए जिनकी पहले कल्पना नहीं की जा सकती थी। उसका फ़्रान्सवासियों पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ा। जैसा हम आगे देखेंगे, उसके फल स्वरूप उनकी आन्तरिक स्वतन्त्रता खटाई मे पड गई और युद्ध समाप्त होने के पहले ही फ्रान्स में बूर्बों वंश के स्वेच्छाचारी शासन से भी अधिक कठोर और निपुण सैनिक निरंकुश शासन की स्थापना हो गई। योरोप के राज्यों से फ़्रान्स का जो संघर्ष इस प्रकार आरम्भ हुआ वह २५ वर्षों तक चलता रहा और क्रान्ति ने जो कुछ कार्य किया था उसका आधा उसने नष्ट कर दिया। *

युद्ध का आरम्भ —

युद्ध आरम्भ होगया। परन्तु फ़्रान्स युद्ध के लिये तैयार नहीं था। सेना में अनुशासनहीनता और अव्यवस्था पहले से ही फैल रही थी। इसके अतिरिक्त सेना के सब अफ़सर पहले कुलीन लोग हुआ करते थे जो देश छोड़ कर भाग चुके थे। नये अफ़सरों को कोई अनुभव नहीं था। इस कारण आरम्भ में फ़्रान्स की सेनाओं को हार खानी पड़ी। जो सेना ऑस्ट्रियन नेदरलैण्ड्स पर आक्रमण करने भेजी गई वह हार कर लौट पड़ी और उसने अपने ही अफ़सरों की हत्या कर डाली। इस प्रारम्भिक हार का तात्कालिक परिणाम यह हुआ कि

* Thompson. The French Revolution, p. 262'

जनता राजा से चिढ गई। उसे शंका होने लगी कि वह ऑस्टिया के सम्राट् से मिला हुआ है। वास्तव में फ़्रान्स की युद्ध-योजना रानी ने ऑस्ट्रिया को बतला दी थी। *

उधर तो फ़्रेञ्च सेनाएँ पीछे हट रही थीं, इधर देश के अन्दर चर्च की फूट के कारण गृह-कलह का भय बढ रहा था। इस पर व्यवस्थापिका सभा ने दो आदेश निकाले। एक के अनुसार जिन पादरियों ने शपथ नहीं ली थी उन्हें देश से निकालने की आज्ञा दी गई और दूसरे के द्वारा पेरिस की रक्षा के लिये २०००० प्रान्तीय स्वयसेवक सैनिक नियुक्त करने की योजना की गई। राजा ने इन दोनों आदेशों को रद्द कर दिया।

राजमहल पर भीड़ का आक्रमण—

अब पेरिस की भीड़ काबू से बाहर हो गई और गणतंत्रीय दल ने उसे और भी भड़काया। उसने राजमहल को घेर लिया। कुछ गुण्डे महल में घुस गये और उन्होंने राजा तथा रानी का बड़ा अपमान किया। परन्तु इसके आगे भीड़ ने कुछ नहीं किया। राजा ने भी क्रान्तिकारियों की लाल टोपी जो भीड़ में से किसी ने उसे दी थी पहन ली और उसका दिया हुआ मदिरा का प्याला पी लिया। इस पर जोश ठण्डा पड़ गया और भीड़ लौट गई।

ब्रुन्स्विक की घोषणा—

राजा के इस अपमान से देश को बड़ा क्षोभ हुआ और राजा के पक्ष में एक क्षणिक प्रतिक्रिया भी हुई जिससे शायद उसे लाभ होता परन्तु इसी बीच में एक घटना हुई जिससे उसकी स्थिति और भी खराब हो गई। २५ जुलाई को प्रशा ने युद्ध की घोषणा कर दी। उसका सेनापति ब्रुन्स्विक अपनी तथा ऑस्ट्रिया की सम्मिलित सेना के साथ आगे बढा और फ़्रान्स की सीमा पार कर उसने घोषणा की कि फ़्रान्सवासी अपने राजा को स्वतन्त्र कर दें और उसकी आज्ञा मानें। यदि ऑस्ट्रिया और प्रशा की सेना का विरोध किया गया तो समस्त फ़्रेञ्च राष्ट्र उसके लिये उत्तरदायी होगा और यदि राजपरिवार का अपमान किया तो पेरिस को उसका दण्ड भुगतना पड़ेगा।

---

* जब युद्ध अनिवार्य प्रतीत होने लगा तो रानी ने फ़्रान्स की युद्ध-योजना अन्य राज्यों की सरकारों को प्रकट कर दी थी। आगे चल कर ब्रुन्स्विक ने जो घोषणा की वह भी रानी की प्रेरणा से की गई थी। H. Belloc : The French Revolution, pp 46-47.

पेरिस के प्राधान्य का आरम्भ—

ब्रुन्स्विक की इस मूर्खतापूर्ण घोषणा से पेरिस की भीड़ अत्यन्त उत्तेजित हो गई। अब उसे पूर्ण विश्वास हो गया कि राजा शत्रुओं से मिला हुआ है। जकोर्वे नेताओं ने पेरिस के लिये नई क्रान्तिकारी कम्यून (म्यूनिसिपल शासन) स्थापित की और नगर भर में विद्रोह का ढिंढोरा पीट दिया। भीड़ ने राजमहल पर हमला बोल दिया तथा उसके स्विस रक्षकों को मार डाला और राजा ने अपने परिवारसहित व्यवस्थापिका भवन मे जाकर शरण ली (१० अगस्त)।

वैधानिक एकतंत्र का अन्त—

यह सब काम पेरिस की नइ क्रान्तिकारी कम्यून का था और इसका स्पष्ट उद्देश्य लुई का विनाश था। यहीं से पेरिस का प्राधान्य शुरू होता है। वह रहा तो थोड़े ही महीनों के लिये परन्तु वह था बहुत भयङ्कर। अब व्यवस्थापिका सभा दब गई। नई कम्यून के दबाव में आकर उसने राजा को मुअत्तिल कर दिया। राजा के न होने से विधान भङ्ग हो गया और नया विधान बनाने के लिये उसने प्रौढ़ मताधिकार के आधार पर एक विधान-परिषद् के निर्वाचन का निर्णय किया।

इस प्रकार वैधानिक एकतत्र का अन्त हुआ। विधान-परिषद् की वैठक तक के लिये एक अस्थायी शासन-समिति बनाई गई जो जिरोंदीस्त दल की थी और जिसका प्रमुख १० अगस्त की घटनाओं का सूत्रधार दाँतों था। व्यवस्थापिका सभा ने तो राजा का केवल मुअत्तिल ही किया था, कम्यून ने उसे कैद कर लिया और कई पुरुषों को जिन पर उसे सन्देह था गिरफ्तार कर लिया। अब वास्तविक शासन कम्यून के हाथों में ही आ गया। कम्यून मे जकोवें दल के तथा निम्नवर्ग के प्रतिनिधि थे। वे सभी बड़े उग्र विचार के थे और अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये उन्हें कुछ भी करने में कोई सकोच नहीं था। इस प्रकार मध्यम वर्ग का प्राधान्य लुप्त हो गया। उसके प्रतिनिधि लाफायेत ने सेना मे राजा के पक्ष में विद्रोह भड़काने का प्रयत्न किया परन्तु सेना उसके लिये तैयार नहीं हुई। अतः वह अपने आपको सकट से घिरा हुआ देख कर देश छोड़ कर भाग गया।

सितम्बर का हत्याकाण्ड—

युद्ध चल रहा था। शत्रु आगे बढ़ा आ रहा था और २ सितम्बर को उसने वर्दां (Verdun) ले लिया। इस समाचार से पेरिस में बड़ी सनसनी

फैली। वर्दां के पतन के पहले ही कम्यून ने राजा के सैकड़ों समर्थकों को गिरफ़तार कर लिया था। शत्रु के आगे बढ़ने पर वे कहीं उत्पात न मचावें इस डर से और राजा के समर्थकों में आतंक जमाने के लिये कम्यून ने २ सितम्बर से ६ सितम्बर तक हजारों व्यक्तियों को मौत के घाट उतार दिया। इस वीभत्स हत्याकाण्ड का मुख्य उत्तेजक मारा था। उसने प्रान्तों को भी ऐसा करने की सलाह दी। *

युद्ध का आरंभ एकतंत्र के विनाश का कारण बना था, सितम्बर का यह हत्याकाण्ड क्रान्ति की बदनामी का कारण बना। पुरानी व्यवस्था के विरुद्ध जो संघर्ष चल रहा था उसने अराजकता का रूप धारण कर लिया। पेरिस की भीड़ के लिये सुधार का अर्थ था अराजकता और स्वतंत्रता का अर्थ अनियंत्रितता। अब फ्रान्स के भाग्य में इस भीड़ का शासन बदा था जिसके बड़े भयकर परिणाम उसे भुगतने पड़े।

विजय—

इधर तो पेरिस की कम्यून इस प्रकार क्रान्ति के अन्दरुनी शत्रुओं का नाश कर रही थी, उधर दॉतों बाहरी शत्रुओं से देश की रक्षा का प्रबन्ध कर रहा था। लाफायेत के भाग जाने के बाद द्यूमोरिए (Dumoriez) के हाथ में सेना की कमाण्ड दी गई। वामी (Valmy) के स्थान पर प्रशा की सेना हारी (२० सितम्बर १७९२) और राजधानी की रक्षा हो गई। इससे केवल राजधानी की ही रक्षा नहीं हुई। यह संसार के इतिहास के निर्णायक युद्धों में से एक था। इसने क्रान्ति को बचा लिया। † द्यूमोरिए ने ऑस्ट्रिया की सेनाओं को हरा कर नवम्बर में बेल्जियम जीत लिया। इसी प्रकार राइन नदी पर भी फ्रेञ्च सेनाएँ विजयी रहीं और दक्षिण की ओर सेवॉय तथा नीस भी फ्रेञ्च सेनाओं के अधिकार में आगये। इस प्रकार १७९२-९३ की शीतऋतु के अन्त तक सभी मोर्चों पर फ्रेञ्च सेनाएँ विजयी हो चुकी थीं। इतनी शक्तियों को अकेले फ्रान्स ने पराजित कर दिया यह कोई आश्चर्य की बात नहीं थीं क्योंकि एक स्वतंत्र, उच्च आदर्शों से प्रेरित दुर्जेय राष्ट्र के सामने दुर्बल क्षीण सरकारें, जिनके साथ जनता की

* Hazen: The French Revolution, Vol II, p. 548.

† H. G. Wells : The Outline of History, p. 903.

लेश मात्र भी सहानुभूति नहीं थी, कहाँ तक टिक सकती थी।*

युद्ध की चर्चा करते हुए हम आगे बढ आये हैं। इसी बीच में राष्ट्रीय विधान-परिषद् का निर्वाचन हो चुका था और उसने बड़े क्रान्तिकारी निर्णय कर लिये थे।

---

* Hearnshaw. Main Currents of European History, p 69.

अध्याय ७

गणतंत्र की स्थापना

राष्ट्रीय विधान-परिषद् (National Convention)

(२१ सितम्बर १७९२—२६ अक्टूबर १७९५)

गणतंत्र की स्थापना—

राष्ट्रीय विधान-परिषद् का प्रथम अधिवेशन २१ सितम्बर १७९२ को हुआ। उसका सबसे पहला काम राजसत्ता (Royalty) के अन्त की घोषणा करके गणतंत्र की स्थापना करना था। उसी दिन से गणतंत्र का संवत् चलाया गया और नये संवत् का प्रथम वर्ष आरंभ हुआ। उसने प्रवासी कुलीनों को सदा के लिये देश से निर्वासित करने का आदेश निकाला और राजा के ऊपर अभियोग चलाने का प्रस्ताव स्वीकार किया। इसके साथ ही नवीन विधान बनाने के लिये एक समिति भी नियुक्त की गई।

राजा को मृत्युदण्ड—

राजा के अभियोग के विषय में विधान-परिषद् में आरंभ से ही जिरोंदीस्त तथा जकोवें लोगों में संघर्ष छिड़ गया। दोनों दलों के विचार भिन्न थे। जकोवें लोगों की इच्छा थी कि राजा को उस पर अभियोग चलाये बिना ही मृत्युदण्ड दिया जाय परन्तु जिरोंदीस्त दल राजा के प्रश्न को समस्त जनता के निर्णय पर छोड़ना चाहता था। अन्त में जकोवें दल की विजय हुई। उन्होंने उस पर मुकदमा चलाना स्वीकार कर लिया। एक महीने तक मुकदमा विधान-परिषद् के सामने चलता रहा और अन्त में सर्वसम्मति से वह देशद्रोह का दोषी ठहराया गया। उसे दण्ड क्या दिया जाय इस प्रश्न पर सब सदस्यों के मत लिये गये। ७२१ मत में से ३८७ मत मृत्युदण्ड के पक्ष में प्राप्त हुए। २१ जनवरी १७९३ को उसके पेरिस के राजमहल (Tuilleries) के सामने उसका सिर धड़ से अलग कर दिया गया।

सोलहवें लुई को इस प्रकार एक अभियोग का नाटक रचकर मृत्युदण्ड देना उचित नहीं कहा जा सकता। इंगलैंड के राजनीतिज्ञ फॉक्स के शब्दों

में यह कार्य बड़ा नृशंस तथा अन्यायपूर्ण था। इतना तो अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा कि वह क्रान्ति का द्रोही था। उसने प्रवासी कुलीनों को प्रोत्साहित किया था और फ्रान्स के शत्रुओं की योजनाओं में भी वह शामिल था। उसके महल में एक गुप्त लोहे की सन्दूक मिली थी जिसमें ऐसे पत्र विद्यमान् थे जिनसे उसका देशद्रोह पूर्णतया प्रमाणित होता था।* परन्तु उस पर मुकदमा चलाने के लिये कोई वैधानिक आधार नहीं था। विधान के अनुसार वह सिंहासन से अलग किया जा सकता था और वह दण्ड उसे मिल ही चुका था। इसके पहले भी उसका बार-बार अपमान करके उसे मृत्युदण्ड से अधिक कष्टप्रद दण्ड दिया जा चुका था। वह बुरा व्यक्ति नहीं था। फ्रान्स के समस्त राजाओं में वह सबसे दयालु, निःस्वार्थ तथा सदाशय था। परन्तु दुर्भाग्यवश वह जितना सज्जन था उतना ही दुर्बल भी था। उसमें अपनी रानी तथा अपने स्वार्थी, सुधार के शत्रु दरबारियों के प्रभाव से बचने की शक्ति नहीं थी। इसके अतिरिक्त जिस स्थिति में वह पड़ा हुआ था वह अत्यन्त पेचीदी थी जिसमें उससे अधिक बुद्धिवान् व्यक्ति भी बौखला सकता था। उसके साथ दया का बर्ताव किया जा सकता था। परन्तु जकोवें लोग दया करना जानते ही नहीं थे। उनके लिये तो समस्त आपत्तियों का वही कारण था। रोब्सपियर का कथन था कि देश के जीवित रहने के लिये लुई को अवश्य मरना चाहिये। उसका तर्क बाद के कुछ वर्षों की घटनाओं ने असत्य प्रमाणित कर दिया। राजा को प्राणदण्ड देना एक अपराध था और साथ ही एक भयंकर भूल।† यह हत्या क्रान्ति की सफलता के लिये की गई थी। परन्तु यह उद्देश्य सिद्ध नहीं हुआ। देश में ऐसे लोगों की संख्या बहुत बड़ी थी जो गणतंत्र से असन्तुष्ट थी। वे उसे चर्च का शत्रु समझते थे और अब उसने राजा की हत्या भी कर डाली थी। अतः प्रान्तों में गणतत्र के विरुद्ध विद्रोह खड़ा हो गया और गणतंत्र के लिये देश के अन्दर ही एक भयङ्कर स्थिति

---

* Thompson · The French Revolution, pp. 327–328. इन पत्रों का संक्षिप्त विवरण इन पृष्ठों पर दिया हुआ है।

हेजन का मत है कि उन पत्रों मे जितनी बातें हैं वे सब राजा के मन्त्रियों द्वारा वैधानिक रीति से की गई थीं और उन पत्रों से राजा का देशद्रोह प्रमाणित नहीं होता। Hazen. The French Revolution, Vol II, p 584.

† Marriott · The Remaking of Modern Europe, p 39.

पैदा हो गई। देश के बाहर राजा की हत्या से फ़्रान्स के शत्रुओं की संख्या बढ गई। ऑस्ट्रिया तथा प्रशा से तो युद्ध चल ही रहा था, अब इंगलैंड, रूस, स्पेन, हॉलैण्ड तथा जर्मनी और इटली के राज्य भी अर्थात् समस्त योरोप फ़्रान्स के विरुद्ध हो गया। इस प्रकार देश के अन्दर और बाहर गणतंत्र के सामने जीवन-मरण का प्रश्न उपस्थित हो गया। ऐसी कठिन परिस्थिति में विधान-परिषद् को देश के अन्दर आतंक-राज्य स्थापित करना पड़ा जिसके परिणाम-स्वरूप गणतंत्र का अन्त हो गया और फ़्रान्स पर एक कठोर सैनिक शासन स्थापित होगया।

विधान-परिषद् में दलीय सघर्ष—

विधान-परिषद् ने राजा से तो मुक्ति पा ली परन्तु उसका मुख्य कार्य—नवीन विधान का निर्माण—ज़िरोंदीस्त तथा जकोवैं दल के झगड़ों के कारण बहुत दिनों तक स्थगित रहा। दोनों ही दल गणतत्रीय थे परन्तु जिरोंदीस्त दल रक्तपातयुक्त अत्याचारों को अन्त करके व्यवस्थित शासन स्थापित करना चाहता था, सितम्बर के हत्यारों को दण्ड देना चाहता था और पेरिस की भीड़ तथा उसके क्रान्तिकारी कम्यून के प्रभाव से शासन को मुक्त कर विधान-परिषद् के प्राधान्य को पुनः स्थापित करना चहता था। उसके विपरीत ज़कोवैं दल पेरिस के कम्यून को, जिसमें उसका प्राधान्य था, फ़्रान्स के शासन में प्रमुख स्थान देना चाहता था। उसका एकमात्र उद्देश्य क्रान्ति को पूर्ण करना था और इस उद्देश्य की सिद्धि के लिये सब प्रकार के हिंसात्मक उपायों को वह काम में लाना चाहता था। विधान-परिषद् में आरम्भ मे तो ज़िरोंदीस्त दल का प्राधान्य था परन्तु शीघ्र ही जकोवें दल ने उससे प्रधानता छीन ली और विधान-परिषद् पेरिस के कम्यून के सामने असहाय हो गई।

क्रान्तिकारी प्रचार—

इधर तो ये दोनों दल प्राधान्य के लिये झगड़ रहे थे उधर योरोप में सोलहवें लुई की हत्या के परिणामस्वरूप बड़ा क्षोभ और रोष फैल रहा था। केवल यही घटना बाह्य हस्तक्षेप का समुचित कारण नहीं बन सकती थी, परन्तु क्रान्ति का रूप धीरे-धीरे बदल रहा था और अब वह आक्रामक होती जा रही थी। १५ दिसम्बर १७९२ को विधान-परिषद् ने दो घोषणाएँ प्रकाशित की थीं जिनके द्वारा उसने योरोप के समस्त राष्ट्रों को अपने राजाओं के विरुद्ध विद्रोह करने के लिये आदेश दिया और इस कार्य में सशस्त्र सहायता देने का वचन दिया। इसके साथ ही यह घोषणा की कि जो राष्ट्र स्वतन्त्रता तथा समानता का

त्याग कर अपने राजाओं और विशेषाधिकारयुक्त वर्गों को क़ायम रखेंगे उन्हें फ़्रेंच राष्ट्र शत्रु समझेगा। इस प्रकार फ़्रान्स ने योरोप के समस्त एकतन्त्र राज्यों को चुनौती दी। ऐसी दशा में उनके लिये चुप बैठना असंभव था।

क्रान्तिकारी फ़्रान्स का योरोप के साथ संघर्ष

प्रथम गुट (First Coalition)—

ऑस्ट्रिया तथा प्रशा के साथ तो फ़्रान्स का युद्ध चल ही रहा था। इस चुनौती और राजा की हत्या से इंगलैण्ड में भी उत्तेजना पैदा हुई। फ़्रान्स ने बेल्जियम को लेकर तथा हॉलैण्ड की शेल्ट नदी को, जिसमें वेस्टफेलिया की सन्धि के अनुसार डच जहाज़ों को छोड़ अन्य किसी राष्ट्र के जहाज नहीं आ जा सकते थे, सब राष्ट्रों के लिये खोल कर इंगलैण्ड के हितों को काफ़ी चोट पहुँचाई थी। तिस पर भी इंगलैण्ड चुप बैठा था परन्तु सोलहवें लुई की हत्या का समाचार पाकर उसने फ़्रेंच राजदूत को वापस लौटा दिया। इस पर १ फर्वरी १७९३ को विधान-परिषद् ने इंगलैण्ड के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया। फ़्रान्स अपनी सीमा पूर्व की ओर राइन नदी तथा आल्पस पर्वत तक और दक्षिण में पिरनीज पर्वत तक ले जाना चाहता था। राइन नदी हॉलैण्ड के बीच से बहती है अतः हॉलैण्ड के विरुद्ध भी युद्ध की घोषणा की गई और मार्च में स्पेन के साथ भी युद्ध छेड़ दिया गया। इन सब राष्ट्रों—ऑस्ट्रिया, प्रशा, इंगलैण्ड तथा स्पेन—ने फ़्रान्स के विरुद्ध पहला गुट (First Coalition) बना लिया। सेवॉय प्रान्त की रक्षा के लिये सार्डिनिया का राज्य भी इस गुट में शामिल होगया और इस प्रकार फ़्रान्स ने प्रायः समस्त योरोप से लड़ाई मोल ले ली।

फ़्रान्स की प्रारंभिक पराजय—

युद्ध शुरू हो गया। फ़्रान्स पर सब ओर से आक्रमण हुआ और सभी मोर्चों पर उसकी पराजय हुई। फ्रान्स की सेनाओं ने हॉलैंड पर आक्रमण किया परन्तु ड्यूमोरिए नीयरविंडन (Neerwinden) के स्थान पर ऑस्ट्रियन सेना से हारा (१८ मार्च)। फ़्रेञ्च सेना को बेल्जियम भी खाली करना पड़ा और ड्यूमोरिए शत्रु से जा मिला। ऑस्ट्रियन सेना फ़्रान्स में घुस आई और पेरिस की ओर बढ़ने लगी। एक दूसरी ऑस्ट्रियन सेना अलसास प्रान्त में घुस गई। मध्य-राइन के क्षेत्र से प्रशा की सेना ने फ़्रेञ्च सेना को खदेड़ भगाया। उत्तर में अंग्रेज़ी सेना ने डनकर्क का घेरा डाला और दक्षिण में अंग्रेज़ी सेना तूलों (Toulon) के बन्दरगाह में घुस गई। स्पेन की सेना ने

भी पिरेनीज पर्वत को पारकर रोसिलों (Roussillon) नगर पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार युद्ध के पहले छः महीनों में .फ्रान्स की सर्वत्र पराजय हुई।

.फ्रान्स में गृह-कलह—

उधर तो विधान-परिषद को बाहरी शत्रु का मुकावला करना पड़ रहा था, इधर देश के अन्दर भी गृह-कलह शुरू होगया था। पश्चिम की ओर ब्रिटेनी तथा ला वॉदे (La Vendee) के प्रान्त अन्य प्रान्तों से भिन्न थे। वहाँ की जनता पर केथॉलिक चर्च तथा पुराने भूमिपतियों का काफी प्रभाव था। उन लोगों के सदस्यों में राजा के लिये भी आदर था। जब फर्वरी (१७९३) में वहाँ सेना के लिये जबरदस्ती भरती होने लगी तो उन्होंने विद्रोह कर दिया। आरभ में तो विद्रोह दबा दिया गया परन्तु वह धीरे-धीरे बढ़ता रहा और बड़ा भयंकर हो गया। इस प्रकार विधान-परिषद् के सामने देश के अन्दर और बाहर संकटों का पहाड़ खड़ा था। परन्तु इन संकटों के सामने क्रान्ति के नेताओं ने हिम्मत नहीं हारी, उल्टे वे दूने उत्साह से सकटों का सामना करने को तैयार हो गये। परन्तु ऐसे समय मे क्रान्तिकारियों की आपस की फूट खतरनाक थी। जिरोंदीस्त तथा जकोवें दलों का सघर्ष बढ रहा था। पेरिस की कम्यून की सहायता से जकोवें दल ने विधान-परिषद् को दबाकर २९ प्रमुख जिरोंदीस्त नेता गिरफ्तार करवा लिये (२ जून)। अब जकोवें दल विधान-परिषद् में सर्वेसर्वा हो गया और उसने संकटों का मुकावला करने की तैयारी की।

आतंक का राज्य (Reign of Terror) जून १७९३—जुलाई १७९४

सेना के सगठन का कार्य कार्नो (Carnot) को सौंपा गया जिसने बडी लगन के साथ कार्य करके कुछ ही महीनों में ७५०००० सैनिकों की एक सुसंगठित सेना तैयार करली। देश के अन्दर सकट का सामना करने के लिये एक अस्थायी सरकार कायम की गई जिसमें विधान-परिषद् द्वारा नियुक्त दो समितियाँ थीं—सार्वजनिक व्यवस्था समिति (Committee of Public Safety) तथा सामान्य सुरक्षा समिति (Committee of General Security)।

सार्वजनिक व्यवस्था समिति—

सार्वजनिक व्यवस्था समिति की नियुक्ति अप्रेल में हो चुकी थी। उसमे आरभ में ९ सदस्य थे परन्तु वाद मे बढाकर १२ सदस्य कर दिये गये थे। इस समिति के अपरिमित अधिकार थे और वह गणतंत्र के शत्रुओं को नष्ट करने

के लिये अपनी इच्छानुसार कोई भी कार्य कर सकती थी। इस समिति में आरंभ में दाँतों प्रमुख व्यक्ति था परन्तु जिरोंदीस्त दल के पतन के बाद वह हटा दिया गया था और रोब्सपियर, सैंत ज्यूस्त तथा कार्नो मुख्य कर्ताधर्ता बन गये थे।

सार्वजनिक सुरक्षा समिति—

सामान्य सुरक्षा समिति का कार्य पुलिस का था—समस्त देश में व्यवस्था कायम रखना और जिन लोगों पर राजा के समर्थक या गणतंत्र के विरुद्ध होने की ज़रा भी शंका हो उन्हें गिरफ्तार करके जेल भेज देना। इस प्रकार की गिरफ़्तारियों को वैध बनाने के लिये एक क़ानून (Law of Suspects) बना दिया गया था जिसके अनुसार कोई भी व्यक्ति शंका पर ही गिरफ्तार किया जा सकता था।

प्रान्तीय प्रतिनिधि—

इनके अतिरिक्त विधान-परिषद् प्रत्येक प्रान्त को अपने दो-दो प्रतिनिधि असीमित अधिकार के साथ भेजती थी। वे किसी को गिरफ्तार तो नहीं कर सकते थे परन्तु उनका एक शब्द भी किसी को क्रान्तिकारी न्यायालय के सामने भेज देने के लिये काफी था।

क्रान्तिकारी न्यायालय—

जो लोग इस प्रकार शंका के कारण जेल में भेज दिये जाते थे उनका न्याय करने के लिये एक क्रान्तिकारी न्यायालय (Revolutionary Tribunal) था जिसमें आरंभ में तो कुछ न्याय होता भी था परन्तु बाद में केवल न्याय का ढोंग रह गया था और मृत्युदण्ड दे दिया जाता था।

जिन लोगों को मृत्युदण्ड दिया जाता था वे 'क्रान्ति चौक' (Square of the Revolution) ले जाये जाते थे, जहाँ गुलोटिन (Guillotine) नाम की सैकड़ों टिकटियाँ खड़ी रहती थीं। उन पर उनका सर धड़ से अलग कर दिया जाता था।

क्रान्तिकारी न्यायालय ने हजारों को इस प्रकार मृत्यु के घाट उतार दिया। अनुमान किया जाता है कि अकेले पेरिस में ही कोई ५००० व्यक्ति इस प्रकार मारे गये जिनमें रानी मेरी आंत्वानेत (१६ अक्टूबर १७९३), ओर्लेआँ (Orleans) का ड्यूक, मादाम रोलाँ तथा ज़िरोंदीस्त दल के कई प्रमुख नेता भी थे। जैसा पेरिस में हो रहा था वैसा ही देश में अन्य नगरों में हो रहा था। जकोबें दल की दृष्टि में जो क्रान्ति के

शत्रु थे वे इस प्रकार नष्ट किये जा रहे थे परन्तु इसी हत्याकाण्ड के बीच एक नॉर्मन कन्या शार्लोत कोर्दे (Charlotte Corday) ने सितम्बर के हत्याकाण्ड के सूत्रधार मारा की भी हत्या करदी।

गृह-कलह का दमन—

इस तरह देश में राजसत्ता के समर्थकों तथा गणतंत्र के शत्रुओं को निमूंल किया जा रहा था, उधर देश के अन्दर प्रान्तों में जो विरोध फैल रहा था उसका भी दमन किया जा रहा था। ला वॉदे तथा ब्रिटेनी के विद्रोह की चर्चा हम ऊपर कर चुके हैं। पेरिस के कम्यून की प्रधानता तथा जिरोंदीस्त दल के साथ किये गये अत्याचार के विरुद्ध लियों (Lyons), मार्सेइय, बोर्दो (Bordeaux) आदि अनेक नगर भी विद्रोह कर बैठे थे। इन विद्रोहों का बड़ी निर्दयता के साथ दमन कर दिया गया।

शत्रुओं की पराजय—

इसके साथ ही शत्रुओं के साथ युद्ध चल रहा था। देश-भक्ति के जोश में तथा कार्नो के कुशल संगठन के फल-स्वरूप फ़्रेञ्च सेना धीरे-धीरे सभी मोर्चों पर शत्रुओं को परास्त करने लगी। अंग्रेज़ लोग हारे और उन्होंने डन्कर्क का घेरा उठा लिया (सितम्बर)। बेल्जियम की ओर ऑस्ट्रियन सेना हारी। बेल्जियम ऑस्ट्रिया से छीन लिया गया। हॉलैण्ड पर फ़्रेञ्च सेना का अधिकार हो गया। उसका शासन बदल कर गणतत्रीय कर दिया गया। उसका नाम बेटावियन गणतत्र (Batavian Republic) रखा गया और उसके साथ मैत्री करली गई। अल्सास प्रान्त शत्रु से खाली हो गया और शत्रु की जितनी सेनाएँ राइन नदी को पारकर आई थीं वे सब खदेड़ दी गईं। दक्षिण की ओर अंग्रेजों से तूलों भी छीन लिया गया।

बासिल की सन्धि—

इस प्रकार फ़्रान्स ने 'प्रथम गुट' को तोड़ कर परास्त कर दिया। हॉलैण्ड मित्र बन ही चुका था। प्रशा तथा स्पेन ने बासिल (Basle) की सन्धि के द्वारा फ़्रान्स से सन्धि कर ली (५ अप्रैल, १७९५)। केवल इंगलैण्ड, ऑस्ट्रिया तथा सार्डिनिया बचे रहे। उन्होंने सन्धि तो नहीं की परन्तु वे भी मैदान से हट गये। वास्तव में फ़्रान्स के विरुद्ध गुट तो बड़ा शक्तिशाली बन गया था परन्तु धीरे-धीरे उसके सदस्यों में फूट पड़ गई थी। इंगलैण्ड के प्रधान मन्त्री पिट की युद्ध-नीति सदा योरोप के राज्यों को धन की सहायता देने की थी। आरम्भ में तो वह सहायता करता रहा परन्तु जब उसने देखा कि प्रशा का ध्यान युद्ध की अपेक्षा पोलैण्ड के बटवारे की ओर अधिक है तो उसने सहायता बन्द

करने की धमकी दी। ऑस्ट्रिया तथा स्पेन दोनों युद्ध करते-करते थक गये थे। प्रशा को यह शका थी कि ऑस्ट्रिया पूरा-पूरा साथ नहीं दे रहा है। ऐसी अवस्था में युद्ध पूरी शक्ति से जारी रखना असंभव था। उधर इसी बीच में फ़्रान्स में भी बड़े-बड़े परिवर्तन हो गये थे और क्रान्तिकारी प्रचार बन्द हो गया था।*

क्रान्तिकारियों में मतभेद—

इस प्रकार दो वर्षों के युद्ध के बाद फ़्रान्स को बाहरी संकट से मुक्ति मिली। परन्तु युद्ध के दिनों में ही फ़्रान्स के अन्दर बड़े भारी परिवर्तन हो गये थे। ज्यों-ज्यों शत्रु की हार हो रही थी त्यों-त्यों क्रान्तिकारियों मे ही आतक के राज्य के सम्बन्ध में मतभेद होता जा रहा था। आतंक का राज्य केवल फ़्रान्स की रक्षा के लिये था। उसकी स्थापना सामान्य शासन प्रणाली की तरह नहीं की गई थी, वह तो केवल आपत्तिकालीन व्यवस्था थी। कई लोगों को अब उसकी आवश्यकता नहीं मालूम होती थी और वे उसे बन्द करना चाहते थे। इस प्रश्न पर तथा अन्य बातों पर जकोबैं दल मे ही फूट पड़ गई।

एबर्तिस्त दल की हत्या—

जकोबैं लोगों में एक 'एबर्तिस्त' (Hebertist) दल था जिसमें नास्तिक हेब्रर्त के अनुयायी थे। यह दल बहुत ही उग्र विचार वाला था और सभी पुरानी बातों को नष्ट करना चाहता था। उसने वर्ष के महीनों के नाम बदल कर मौसमों के प्राकृतिक परिवर्तनों के आधार पर कर दिये, उदाहरणार्थ जुलाई का नाम थर्मिदोर (Thermidor) अर्थात् गर्मी का महीना, अप्रैल का नाम जर्मिनल (Germinal) अर्थात् कोंपलें निकलने का समय रखा गया। उनका प्रधान बल पेरिस का कम्यून था जिसका प्राधान्य सार्वजनिक व्यवस्था समिति की स्थापना के बाद से घट गया था और जो इस कारण अत्यन्त असन्तुष्ट था। वे लोग नास्तिक थे। उन्होंने ईश्वर की उपासना के स्थान पर बुद्धि (Reason) की उपासना आरंभ की और सारे केथोलिक चर्च बन्द करवा दिये। उनके विचार साम्यवादी और निजी सम्पत्ति के विरोधी थे। जकोबे दल में रोब्सपियर अब भी प्रमुख था। वह गणतन्त्रीय विचारों का होते हुए भी निजी सम्पत्ति का समर्थक था और ईश्वर को मानता था। एबर्तिस्त

* १३ अप्रैल १७९३ को विधान-परिषद् ने दूसरे राज्यों के शासन में हस्तक्षेप बन्द कर देने की घोषणा की थी। Thompson The French Revolution, p. 417-418.

दल के ऐसे विचारों से वह चौंका और उसने सार्वजनिक व्यवस्था समिति के द्वारा सभी नास्तिकों को मृत्युदण्ड दिलवा दिया (४, जर्मिनल—२४ मार्च, १७९४)।

दाँतों की हत्या—

एवर्त तथा उसके अनुयायियों के बाद दाँतों और उसके अनुयायियों की बारी आई। दाँतों को अब आतंक के राज्य की कोई आवश्यकता नहीं दिखाई देती थी। वह उसे बन्द करना चाहता था। परन्तु रोब्सपियर के लिये दया का अर्थ था देशद्रोह। उसने दाँतों और उसके साथियों को भी मौत के घाट उतार दिया (१६ जर्मिनल—५ अप्रैल, १७९४)। दाँतों जकोवें दल का सबसे योग्य और समझदार राजनीतिज्ञ था। एक समय वह क्रान्तिकारियों में सबसे अधिक उग्र था परन्तु वह परिस्थिति के परिवर्तन के साथ अपनी नीति में परिवर्तन करने के लिये तैयार रहता था। उसकी दृष्टि में देशहित सर्वोपरि था। वह समझता था कि जकोवें दल ही क्रान्ति की रक्षा कर सकता था। इसी कारण वह अपने दल में फूट नहीं देखना चाहता था। वह जिरोंदीस्त तथा जकोवें समझौता कराता रहता था और सदा निष्पक्ष रहता था। मिराबो के बाद दाँतों ही ऐसा राजनीतिज्ञ था जो परिस्थिति को ठीक-ठीक समझता था।

रोब्सपियर की हत्या—

अब रोब्सपियर फ्रान्स का सर्वेसर्वा हो गया। पेरिस की क्रान्तिकारी कम्यून, विधान-परिषद्, सार्वजनिक व्यवस्था समिति तथा जकोवें दल सब उसकी मुट्ठी में थे। ७ मई १७९४ को उसने विधान-परिषद् से एक आदेश जारी करवाया जिसके द्वारा ईश्वर का अस्तित्व तथा आत्मा का अमरत्व स्वीकार किये गये। १० जून को विधान-परिषद् को एक नया क़ानून बनाना पड़ा जिसके द्वारा क्रान्तिकारी न्यायालय को अपराध के लिये किसी प्रमाण के मांगने की आवश्यकता नहीं रही। इस नादिरशाही कानून के अनुसार न्यायालय ने डेढ महीने के अन्दर १३५६ असहाय व्यक्तियों को यमराज के सुपुर्द कर दिया। परन्तु अब आतंक और अत्याचार की अति हो चुकी थी। पाप का घड़ा भर चुका था। निदान उसी के साथी उसके विरुद्ध हो गये। वह और उसके साथी २७ जुलाई को पकड लिये गये। पेरिस की कम्यून ने अब भी उसका साथ दिया परन्तु विधान-परिषद् ने साहस करके अपने अधिकार का प्रयोग किया और वह तथा उसके साथी गुलोटिन की भेंट कर दिये गये। इस प्रकार रोब्सपियर का अन्त हुआ। मिराबो जानता था

कि यह सब कुछ होगा। मरने के कुछ दिन पहले उसने भविष्यवाणी की थी कि शनि देवता के समान क्रान्ति अपनी ही सन्तान का भक्षण कर लेगी।* उसकी भविष्यवाणी सत्य निकली।

आतंक के राज्य की ज़िम्मेदारी रोब्सपियर पर थी। परन्तु वह स्वभाव से रक्तपिपासु नहीं था। वह ईमानदार व्यक्ति था और समझता था कि वह जो कुछ कर रहा था अपने देश के कल्याण के लिये कर रहा था। वह बड़ा लोकप्रिय नेता था परन्तु उसमें व्यावहारिक योग्यता बिलकुल नही थी, नहीं तो उसका प्राधान्य बहुत दिनों तक बना रहता। उसकी मृत्यु के साथ क्रान्ति की दिशा पलटती है, आतक का राज्य समाप्त होता है और प्रतिक्रिया आरम्भ होती है। रोब्सपियर की मृत्यु की घटना इतिहास में 'थर्मिदोर (जुलाई) की क्रान्ति' कहलाती है और उसके बाद जो प्रतिक्रिया आरंभ होती है वह 'थर्मिदोरियन प्रतिक्रिया' (Thermidorian Reaction) के नाम से प्रसिद्ध है।

प्रतिक्रिया—

अब प्रतिक्रिया आरंभ हुई। विधान-परिषद् में भयभीत मध्यम वर्ग में फिर साहस का संचार हुआ और उसने थर्मिदोरियन प्रतिक्रियावालों के साथ सहयोग करना आरंभ किया। धीरे-धीरे आतक के राज्य के समय की व्यवस्था तोड़ी जाने लगी। पेरिस की क्रान्तिकारी कम्यून भंग कर दी गई, ज़कोर्बें क्लब बन्द कर दिया गया, क्रान्तिकारी न्यायालय स्थगित कर दिया गया और सार्वजनिक व्यवस्था समिति के कामों मे कमी कर दी गई। जो लोग शका के कारण अब भी बन्द थे और जो भाग्य से बच गये थे वे मुक्त कर दिये गये। जिरोंदीस्त दल के जो लोग विधान-परिषद् से निकाल दिये गये थे वे वापस बुला लिये गये। राष्ट्रीय रक्षक दल का पुनः संगठन किया गया और जनता नि शस्त्र कर दी गई। जिस परिस्थिति में यह व्यवस्था की गई थी वह नहीं रही थी। देश के अन्दर शान्ति स्थापित हो चुकी थी और जिन लोगों से क्रान्ति को भय हो सकता था उनका दमन किया जा चुका था। देश के बाहर भी शत्रु हार रहा था और फ्रान्स के ऊपर से संकट टल चुका था।

अब विधान-परिषद् ने मध्यम वर्ग की सहायता से और उसी की सम्मति के अनुसार शासन करना आरंभ किया। यही वर्ग क्रान्ति का

* Schevill · A History of Europe, p. 414.

मुख्य निर्माता था और उसी को इससे मुख्य लाभ हुआ था। शासन कार्य तो विधान-परिषद् पर परिस्थिति ने लाद दिया था। उसका मुख्य कार्य था नवीन विधान का निर्माण जो अब आरंभ हुआ और एक वर्ष के अन्दर नवीन विधान तैयार हो गया (१७९५ अथवा गणतंत्रीय संवत का तृतीय वर्ष)।

१७९३ में विधान-परिषद् ने प्रान्तीय जनता की पेरिस के प्रति जो शंका थी उसे दूर करने, उसे सन्तुष्ट करने और गृह-कलह की आशंका को मिटाने के लिये एक विधान बनाया था जिसके अनुसार सार्वभौम मताधिकार, व्यवस्थापिका सभा के वार्षिक चुनाव, समस्त क़ानूनों के लिये जनता की स्वीकृति तथा व्यवस्थापिका द्वारा चुने हुए २४ व्यक्तियों की एक कार्यपालिका की व्यवस्था की गई थी परन्तु उस समय की परिस्थिति में उसे कार्यान्वित करना असभव था और वह स्थगित कर दिया गया था। पेरिस के उग्रपन्थियों ने उसे अब कार्यान्वित करने की मांग की परन्तु विधान-परिषद् ने उस विधान को 'अराजकतापूर्ण' वतलाकर मांग ठुकरा दी और बिलकुल नया विधान बनाया।

नया विधान (Constitution of the Year III)—

नये विधान के अनुसार एक द्विसदनी व्यवस्थापिका सभा की व्यवस्था की गई। एक सदन तो वृद्धों (Council of Elders) का सदन था जिसमे कम-से-कम ४० वर्ष की अवस्था वाले २५० सदस्य रखे गये। दूसरे सदन (Council of the Five Hundred) में ५०० सदस्य रखे गये जिनकी अवस्था कम-से-कम ३० वर्ष की निश्चित की गई। क़ानून के प्रस्ताव प्रस्तुत करने का अधिकार इसी सदन को दिया गया परन्तु उसे कार्यान्वित हो सकने के लिये वृद्धों के सदन की अनुमति आवश्यक रही। दोनों सदनों के दो तिहाई सदस्य प्रथम बार विधान-परिषद् के सदस्यों में से चुनना आवश्यक रखा गया। इन सदनों के सदस्यों के निर्वाचन के लिये मत देने का अधिकार उन्हीं लोगों को मिला जिनके पास सम्पत्ति थी और जो राज्य को कर देते थे।

कार्यपालिका सत्ता पाँच व्यक्तियों (डाइरेक्टरों) की एक समिति (Directory) को सौंपी गई जिनकी नियुक्ति 'पाँच सौ के सदन' द्वारा प्रस्तावित १० व्यक्तियों में से वृद्धों का सदन करता था। इनमें से एक को प्रतिवर्ष अलग हो जाना आवश्यक

था। ये न व्यवस्थापिका सभा और न जनता के सम्मुख ही उत्तरदायी थे। यह समिति अपने मंत्रियों को स्वयं ही नियुक्त करती थी।

समीक्षा—

इस प्रकार नये विधान के अनुसार फ्रान्स में गणतंत्र की स्थापना हुई। पिछले दिनों फ्रान्स में जो रक्त की नदियाँ बही थीं वे १७८९ के आदर्शवाद को बहा ले गई थीं। जो लोग उस आतंक राज्य में से बच रहे थे वे आदर्शवादी नहीं वरन् भ्रष्ट, स्वार्थी, षड्यन्त्रकारी थे।* उन्होंने गणतंत्र तो स्थापित किया परन्तु वह प्रजातंत्रीय नहीं था। १७९२ के विधान के अनुसार मध्यम वर्गीय (Bourgeois) एकतंत्र की स्थापना हुई थी, इस विधान ने मध्यम वर्गीय गणतंत्र की स्थापना की। इसके अनुसार मताधिकार सम्पत्तिवालों को मिला और इस प्रकार गणतंत्र मध्यम वर्ग वालों के हाथों मे ही रहा, सर्वसाधारण जनता के लिये उसमें कोई स्थान नहीं था।

इसके अतिरिक्त इस विधान में अन्य दोष भी थे। सबसे मुख्य दोष तो यह था कि कार्यपालिका तथा व्यवस्थापिका के मतभेद को दूर करने का उसमें कोई उपाय नहीं था। † कार्यपालिका के सदस्य अर्थात् डाइरेक्टर व्यवस्थापिका सभा या जनता किसी के सम्मुख उत्तरदायी नहीं थे। केवल महाभियोग (Impeachment) को छोड़ उन्हें अलग हटाने का कोई उपाय नहीं था। ऐसा कोई उपाय नहीं था जिसके द्वारा जनता की इच्छा का उन पर दबाव पड़ सकता।

नये विधान के अनुसार दोनों सदनों के प्रथम निर्वाचन के लिये पुरानी विधान-परिषद् मे से दो-तिहाई सदस्य लेने की शर्त रखने का एक उद्देश्य तो १७९१ मे विधान-सभा (राष्ट्रीय-सभा) ने जो भूल की थी उससे बचना था परन्तु इसके साथ ही दूसरा उद्देश्य नई व्यवस्थापिका सभा से राजसत्ता के समर्थकों को दूर रखना था क्योंकि इस समय आतंक के राज्य की प्रतिक्रिया के फल-स्वरूप उनकी सख्या और हिम्मत बढ रही थी और विधान-निर्माताओं को यह शंका थी कि कहीं नई व्यवस्थापिका में वे अधिक संख्या में आकर आरंभ मे ही गणतत्र का नाश न करदें।

विद्रोह—

यह शर्त न केवल राजसत्ता के समर्थकों को, वरन् मध्यम वर्ग को भी

---

* Muir: A Short History of The British Commonwealth, Vol. II, p. 159.

† Lodge. A History of Modern Europe, p. 560

पसन्द न आई और उन्होंने मिलकर ५ अक्टूबर १७६५ (13th Vendemiare) को विधान-परिषद् के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। विधान-परिषद् ने विद्रोह-दमन का कार्य अपने एक सदस्य बारा (Barras) को सौंपा। बारा सैनिक नहीं था था। उसने अपने एक मित्र, सेना के एक छोटे अफ़सर, नेपोलियन बोनापार्ट से इस कार्य में सहायता ली। नेपोलियन १७६३ में अंग्रेजों से तूलों वापस लेने में अपनी योग्यता तथा साहस का परिचय दे चुका था। उसने गोलियों की तेज बौछार से विद्रोहियों को तितर-बितर कर दिया। इस प्रकार विधान-परिषद् ने अपने समस्त शत्रुओं पर विजय प्राप्त की और नवीन गणतंत्र की उसके जन्म के पूर्व ही उस पर आने वाले संकट से रक्षा की। अब विधान-परिषद् का कार्य समाप्त हो गया था। २६ अक्टूबर १७६५ को वह विसर्जित हो गई। अपने विसर्जन के पहले वह गणतत्र की घोषणा के बाद से जितने भी लोग राजनीतिक अपराधों के लिये क़ैद किये गये थे उनकी मुक्ति की घोषणा कर गई।*

डाईरेक्टरी की स्थापना के साथ विशुद्ध क्रान्ति का अन्त हो गया। डाइरेक्टरी के भ्रष्ट, वेईमान राजनीतिज्ञों के शासन में फ्रान्स १७६१ के पूर्ण प्रजातंत्र से काफी दूर हट गया १७८६ मे फ्रान्सवासियों की जो आशाएँ थीं उनकी डाइरेक्टरी के अत्याचारयुक्त शासन में पूर्ति होनी थी। इसकी स्थापना से राजनीतिक प्रतिक्रिया की दिशा मे फ्रान्स ने पहला क़दम उठाया जिसकी पराकाष्ठा पॉच वर्ष बाद नेपोलियन के सैनिक शासन मे हुई।

इतिहासकार मादले ने लिखा है कि जिस विधान-परिषद् ने सोलहवें लुई, दॉतों तथा रोब्सपियर को गुलोटिन की भेंट चढ़ा दिया था उसी ने उस भावी तानाशाह का पैर रकाब में रख दिया जो काठी पर मजबूती से बैठना अच्छी तरह जानता था।†

विधान-परिषद् का कार्य—

शायद इतिहास में किसी भी व्यवस्थापिका सभा को इतनी पेचीदी समस्याओं को हल नहीं करना पडा जितनी राष्ट्रीय विधान-परिषद् (National Convention) के सामने उसके उद्घाटन के समय ही आ उपस्थित हुई। उसे सिंहासनच्युत राजा के भाग्य का निर्णय करना था, बाह्य आक्रमण से राष्ट्र की रक्षा करना था, देश के अन्दर विद्रोह का दमन करना था तथा उसके

* Stephens: Revolutionary Europe, p 166.
† Hazen: The French Revolution Vol II, p 836.

लिये एक सुदृढ शासन की व्यवस्था करना था, क्रान्ति के आरंभ में प्राप्त किये हुए सामाजिक सुधारों को पूर्ण एव परिपक्व बनाना था और एक नया विधान बनाकर स्थायी गणतंत्रीय संस्थाओं की व्यवस्था करना था। यह कोई मामूली कार्य नहीं था परन्तु उसने इन सब समस्याओं का बड़े अध्यवसाय और धैर्य के साथ मुकाबला किया और उसमें काफी सफलता भी प्राप्त की।* इतना अवश्य मानना पड़ेगा कि इन समस्याओं को हल करने में उसने बड़ा अत्याचार किया और सहस्रों व्यक्तियों के प्राण लिये, परन्तु हमें इस बात का भी स्मरण रखना चाहिये कि जिस परिस्थिति में ये अत्याचार हुए वह अत्यन्त कठिन थी और शायद उस समय नरम नीति से काम नहीं चलता। इसके साथ ही इन अत्याचारों का दायित्व विधान-परिषद् पर नहीं वरन् जकोवें दल के अत्यन्त उग्र सदस्यों तथा पेरिस की भीड़ पर है। वास्तव में इस अत्याचार का कारण राजसत्ता के समर्थकों का अविरत देशद्रोह था जिनको देखकर उग्रवादियो का रक्त खौलता था और नरम विचार वाले गणतत्रियों में उनकी रक्षा के लिये हस्तक्षेप करने की इच्छा नहीं होती थी। तिसपर भी जितने लोग इनमें मारे गये वे कुछ हजार ही थे और उनमें अधिकतर लोग भीषण देशद्रोही थे। इन हत्याओं का खूब बढ़ाकर वर्णन किया जाता है क्योंकि जिन लोगों की हत्याएँ हुईं वे कुलीन एव उच्च वर्ग के लोग थे। यदि हम इसी समय फ्रान्स के बाहर दूसरे देशों के कारागारों में जो कुछ हो रहा था उस पर ध्यान दें तो उसके सामने यह हत्याकाण्ड बिलकुल साधारण रह जायगा। ब्रिटेन और अमेरिका में सम्पत्ति सम्बन्धी तुच्छ अपराधों के लिये फ्रान्स में देशद्रोह के लिये मारे गये आदमियों से भी अधिक मौत के घाट उतारे जा रहे थे। १७८६ मे मेसेचुसेट्स में एक लड़की को केवल इसी कारण प्राणदण्ड मिला था कि उसने सड़क पर एक दूसरी लड़की की टोपी और जूते छीन लिये थे। १७७१ मे इगलैंड की जेलों में अनेक व्यक्ति जिन पर मुक़दमा चलाया गया था और जो निरपराध घोषित कर दिये गये थे केवल इसीलिये असह्य यातनाएँ भोग रहे थे कि उनके पास जेलर की फीस देने को रुपया नहीं था।† पुराने जमाने के निरकुश शासकों के अत्याचार के सामने तो ये अत्याचार कुछ भी नहीं थे। पाँचवे चार्ल्स ने नेदरलैंड्स मे विद्रोह के अपराध में कोई ५०,००० व्यक्ति जीवित अग्नि मे होम दिये थे। फ्रान्स में

---

* Hayes A Political and Cultural History of Modern Europe, Vol 1, p. 629.

† H. G. Wells The Outline of History, p 910.

२४ अगस्त १५७४ को एक दिन (St. Bartholomew Day) में कोई दो हजार व्यक्तियों की केवल इसलिये हत्या करदी गई थी कि वे प्रोटेस्टेण्ट थे। क्रान्तिकारियों ने देशद्रोहियों को छोड़ अन्य किसी के प्राण जानबूझ कर नहीं लिये। साधारण जनता इस आतंक राज्य के समय में भी क्रान्ति के पहले से कहीं अधिक स्वतत्र, सुखी एव सम्पन्न थी।*

परन्तु जहाँ इस अत्याचार से विधान-परिषद् की इतनी वदनामी हुई और वर्षों तक फ्रेञ्च जनता गणतन्त्र के नाम से घृणा करती रही वहाँ इस अत्याचार ने स्वय भावी गणतन्त्र को भी सैकड़ों ऐसे चरित्रवान्, बुद्धिमान्, साहसी एवं प्रतिभाशाली व्यक्तियों को प्राणदण्ड देकर, जो भविष्य में उसके स्वाभाविक एवं अनुभवी मार्गदर्शक तथा संरक्षक बनते, निर्बल कर दिया। † जब वह व्यक्ति मच पर आया जो उसका अन्त करना चाहता था तो उसका कार्य सरल हो गया क्योंकि उसका विरोध करने वाले कोई योग्य व्यक्ति नहीं रहे थे। इस प्रकार भावी सैनिक स्वेच्छाचारी शासन का बीज स्वय विधान-परिषद् ने ही बो दिया था जो तीन चार वर्षों में ही अंकुरित हो गया।

विधान-परिषद् के इन निंद्य कामों का वर्णन करते समय उसके किए हुए अनेक अच्छे कामों का ध्यान नहीं रहता। यह उसके प्रति अन्याय है। जितनी समस्याएँ उसके सामने आई उनको तो उसने हल किया ही, उसके साथ-साथ वह अनेक दिशाओं में शान्तिपूर्ण विकास के मार्ग पर आगे बढ रही थी। तोलने तथा नापने के दशमलव पद्धति (Metric System) के जो मापदण्ड आज प्रायः समस्त ससार में काम मे आते हैं उनको चलाने का श्रेय उसी को है। उसने फ्रान्स के सामाजिक जीवन को समानता के सिद्धान्त के आधार पर लाने के लिए नये कानूनों के निर्माण का काम आरम्भ किया जिसका श्रेय आगे चल कर नेपोलियन को मिला। उसने प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा की एक राष्ट्रीय योजना तैयार की परन्तु धनाभाव के कारण उस पर कार्य आरम्भ नहीं हो सका। उस योजना पर तो काम नहीं हो सका परन्तु उसने कुछ विशिष्ट विद्यालयों की उन्नति की ओर बहुत ध्यान दिया। नॉर्मल स्कूल, पॉलीटेकनिक (Polytechnic) स्कूल, पेरिस का लॉ तथा मेडिकल स्कूल, आर्ट्स और क्राफ्ट की कजर्वेटरी, नेशनल आर्काइव्ज, लूवर (Louvre) का म्यूजियम, नेशनल लायब्रेरी और इस्टीट्यूट आदि सस्थाएँ विधान-परिषद् के नाम को अमर

---

* H G Wells. The Outline of History, p.. 910

† Bradby. A Short History of the French Revolution, p 354.

बनाये रखेंगी । इनमें से कई संस्थाएँ पुरानी थीं परन्तु उसने उन सबका इस प्रकार पुनः संगठन किया कि वे सब बिलकुल नई संस्थाएँ बन गईं ।* निश्चय ही एक रक्तपिपासु पिशाचों का गिरोह ऐसी उच्च कोटि की संस्थाओं की संस्थापना नहीं कर सकता था ।

---

* Hazen: Modern European History, p. 149-150.

अध्याय ८

प्रतिक्रिया का आरम्भ

डाइरेक्टरी (Directory)

(२७ अक्टूबर १७९५—१९ नवम्बर १७९९)

अब फ्रान्स में विधिपूर्वक गणतन्त्र शासन का आरम्भ हुआ। पहले डाइरेक्टरों मे बारा और कार्नो थे परन्तु इस समय पेरिस के राजनीतिक मंच पर एक बलशाली व्यक्ति के आगमन के साथ क्रान्ति के नाटक में एक नये अंक का आरम्भ होता है। उसकी सहायता से विधान-परिषद् विजयी हुई थी, डाइरेक्टरी को भी उसी की बलिष्ट बाहु का सहारा लेना था और क्रान्ति को भी उसी मे अपनी पूर्णता और अपना प्रतिवाद देखना था, क्योंकि नेपोलियन एक साथ ही क्रान्ति के सिद्धान्तों का मूर्त रूप और उनके विरुद्ध होने वाली प्रतिक्रिया का प्रतिनिधि था।*

नेपोलियन मंच पर —

नेपोलियन का जन्म कॉर्सिका द्वीप के अयाचियो (Ajaccio) नगर में १७६९ मे हुआ था। यह द्वीप पहले जिनोआ के अधिकार में था परन्तु नेपोलियन के जन्म के कुछ ही पहले जिनोआ ने उसे फ्रान्स को बेच दिया था। उसका वंश इटली का था। इस प्रकार वंश से वह इटली का, जन्म से कॉर्सिका का तथा राष्ट्रीयता की दृष्टि से फ्रेन्च था। वह अपने पिता का द्वितीय पुत्र था।† उसकी शिक्षा फ्रान्स मे ब्रियें (Brienne) तथा पेरिस के सैनिक स्कूलों में हुई थी। १६ वर्ष की अवस्था में उसने स्कूल छोड़ दिया और उसे तोपखाने में द्वितीय लेफ्टिनेण्ट का पद मिल गया। उसे फ्रान्स से घृणा थी और वह प्राय लम्बी छुट्टी लेकर कॉर्सिका मे ही रहा करता था। इसी मे उसे अपनी नौकरी से हाथ धोना पड़ा। वह कभी-कभी कॉर्सिका को स्वतन्त्र करने के स्वप्न देखा करता था परन्तु फ्रेन्च क्रान्ति के आरम्भ होने से उसे अपने उत्साह तथा उच्च आकॉक्षाओं के लिए एक विशाल क्षेत्र मिल गया और १७९२ मे वह पेरिस लौट गया। वह जकोबें दल मे सम्मिलित हो गया और उसे उसका पद फिर

* Marriott : The Remaking of Modern Europe, pp. 56-57

† वह वास्तव में चतुर्थ पुत्र था। चार्ल्स बोनापार्ट की प्रथम दो सन्तान शैशव काल में ही मर चुकी थी। *Holland Rose in his introduction to Lockhart : The History of Napoleon Buonaparte, p. vii.*

मिल गया। १७९३ में उसने तूलों को अंग्रेजों से छीनने में अपनी प्रतिभा का परिचय दिया। अगले वर्ष वह इटली के लिए तैयार की हुई सेना के तोपखाने का जनरल बना दिया गया। रोब्सपियर की मृत्यु के बाद उसकी स्थिति संकटमय हो गई और वह मुअत्तिल कर दिया गया। परन्तु उसकी प्रतिभा ने सबको प्रभावित कर रखा था। वह बहुत दिनों तक अलग नहीं रखा जा सका और उसे शीघ्र ही युद्ध-सचिवालय में इटली पर आक्रमण करने की योजना बनाने के लिए एक पद मिल गया। हम अभी देख चुके हैं कि यहीं उसे विधान-परिषद् की रक्षा करके अपनी भावी उन्नति के मार्ग को प्रशस्त करने का मौका मिला। कार्नो उसकी प्रतिभा को अच्छी तरह समझता था और उसने उसे इटली पर आक्रमण करनेवाली सेना का सेनानायक बना दिया। इसके दो दिन बाद ही नेपोलियन ने एक विधवा जोजेफाइन बोअरनाई (Josephine Beauharnais) से विवाह कर लिया और अपनी पत्नी को पेरिस में ही छोड़ कर इटली की ओर अपनी सेना के साथ रवाना हो गया। यहीं से नेपोलियन के राजनीतिक जीवन का आरम्भ होता है और क्रान्ति का इतिहास नेपोलियन का इतिहास बन जाता है।

ऑस्ट्रिया से युद्ध की तैयारी—

हम देख चुके हैं कि अप्रेल १७९५ में प्रशा, स्पेन तथा हॉलैंड फ्रान्स से सन्धि कर चुके थे परन्तु ऑस्ट्रिया, इगलैंड तथा सार्डिनिया ने सन्धि नहीं की थी। फ्रान्स ने ऑस्ट्रियन नेदरलैंड्स छीन कर अपनी भूमि मे शामिल कर लिया था परन्तु ऑस्ट्रिया से इसकी स्वीकृति लेने के लिये उसे हराना आवश्यक था। अतः डाइरेक्टरी को इन देशों के विरुद्ध युद्ध की तैयारी करनी पड़ी। इगलैंड पर तो एक अच्छे बेड़े के बिना आक्रमण असभव था। इस कारण डाइरेक्टरी ने अपना सारा ध्यान ऑस्ट्रिया पर केन्द्रित कर दिया। कार्नो ने ऑस्ट्रिया पर दो तरफ से-जर्मनी तथा इटली में होकर—आक्रमण करने की योजना बनाई। जर्मनी मे होकर आक्रमण करने के लिये जूर्दां (Jourdan) तथा मोरो (Moreau) की कमाण्ड में दो सेनाएँ भेजी गई। इटली की सेना की कमाण्ड नेपोलियन को मिली।

युद्ध—

जूर्दां तथा मोरो को ऑस्ट्रिया के प्रख्यात कमाण्डर आर्चड्यूक चार्ल्स का मुकाबला करना पड़ा। दोनों ही उसके सामने कुछ न कर सके और परास्त होकर लौट पड़े। परन्तु इटली मे नेपोलियन के नेतृत्व मे योजना पूर्ण रीति से सफल हुई।

इटली में नेपोलियन की सफलता—

नेपोलियन ने बड़ी कुशलता के साथ युद्ध का सचालन किया। सर्वप्रथम उसने ऑस्ट्रिया और सार्डिनिया की सेनाओं को अलग कर दिया। इसके बाद अचानक सार्डिनिया पर आक्रमण करके वह ट्यूरिन जा पहुँचा। पन्द्रह दिन के अन्दर ही सार्डिनिया के राजा को सन्धि करनी पड़ी और सेवॉय तथा नीस के प्रदेश फ्रान्स के सुपुर्द करने पड़े (१५ मई १७९६)। इसके बाद वह ऑस्ट्रियन सेना की ओर मुड़ा। उसने अपनी जान हथेली पर रख कर भयंकर गोलाबारी का मुकाबला करते हुए लोडी का पुल पार किया और मिलान में प्रवेश किया (१६ मई)। ऑस्ट्रियन सेनाएँ लोम्बार्डी के मैदान से खदेड़ दी गईं और सारा लोम्बार्डी नेपोलियन के हाथ मे आ गया। केवल माण्टुआ मे ऑस्ट्रियन सेना बनी रही और नेपोलियन ने उसका घेरा डाल दिया। ऑस्ट्रिया ने माण्टुआ को लेने के बहुत प्रयत्न किये परन्तु आठ महीने के निरंतर प्रयत्न करने पर भी उसे सफलता नहीं मिली और २ फर्वरी १७९७ को नेपोलियन ने उस पर अधिकार कर लिया। अब नेपोलियन के लिये ऑस्ट्रिया की राजधानी वियना की ओर बढने का मार्ग खुल गया। यह देखकर ऑस्ट्रिया के सम्राट् द्वितीय फ्रान्सिस ने सन्धि की प्रार्थना की (अप्रैल) और ऑस्ट्रिया से युद्ध बन्द हो गया।

इटली का सगठन—

इसी बीच मे नेपोलियन की विजय पर विजय होती हुई देख कर मई में पार्मा तथा मोडीना के ड्यूकों ने तथा जून में नेपिल्स के राजा और पोप ने उससे सन्धि कर ली। पोप ने आविन्यों (Avignon) पर अपने समस्त अधिकार भी त्याग दिये और बोलोग्ना तथा फेरारा फ्रान्स को दे दिये। इन सन्धियों के बाद उसने उत्तरी इटली का नये सिरे से सगठन किया। लोम्बार्डी का जो भाग ऑस्ट्रिया के अधिकार में था उसे उसने एक गणतंत्र—ट्रान्सपेडेन रिपब्लिक (Transpadane Republic)—बना दिया और बोलोग्ना, फेरारा, मोडीना तथा रेगियो (Reggio) को मिलाकर एक नया गणतंत्र—सिसपेडेन रिपब्लिक (Cispadane Republic)—बनाया।

ऑस्ट्रिया से युद्ध बन्द होने पर वह पूर्व की ओर बढा और वेनिस के गणतंत्र से झगड़ा करके उसने उसे भी जीत लिया। इस विजय के बाद जून १७९७ मे उसने इटली का पुन. सगठन किया। ट्रान्सपेडेन तथा सिसपेडेन रिपब्लिकों, रोमाग्ना लीगेशन्स (The Legations) और वेनिस के गणतंत्र

के पश्चिमी भाग, तथा कुछ अन्य प्रदेशों को मिलाकर उसने एक नया गणतंत्र—सिसएल्पाइन रिपब्लिक (Cisalpine Republic)—बना दिया और जिनोआ को भी गणतंत्र—लिगरियन रिपब्लिक (Ligurian Republic)—बनाकर फ्रान्स के अधीन कर लिया।

ऑस्ट्रिया से सन्धि—

इन दिनों ऑस्ट्रिया से सन्धि की बातें हो रहीं थीं। १७ अक्टूबर १७९७ को फ्रान्स और ऑस्ट्रिया के बीच केम्पोफॉर्मियो (Campo Formio) के स्थान पर सन्धि हुई जिसके अनुसार (१) ऑस्ट्रिया ने ऑस्ट्रियन नेदरलैण्ड्स फ्रान्स को सौंप दिया और राइन नदी के बॉये किनारे का समस्त प्रदेश भी दे दिया। यह प्रदेश जर्मन राजाओं का था परन्तु उसने इस परिवर्तन के लिये जर्मन राजाओं की एक सभा करके उनसे स्वीकृति ले लेने का वचन दिया। (२) ऑस्ट्रिया को लोम्बार्डी पर से भी अपना अधिकार उठा लेना पड़ा और नेपोलियन द्वारा निर्मित सिसएल्पाइन तथा लिगरियन रिपब्लिकों को स्वीकार करना पड़ा। (३) इसके बदले में फ्रान्स ने वेनिस के गणतंत्र के टुकड़े करके उसका अदिगे नदी के पूर्व का भाग, इस्ट्रिया तथा डेल्मेशिया ऑस्ट्रिया को सौंप दिया। वेनिस का पश्चिमी भाग सिसएल्पाइन रिपब्लिक में सम्मिलित हो चुका था। उसके राज्य का बचा हुआ भाग—आयोनियन द्वीप— फ्रान्स के पास आ गया।

समीक्षा—

इस प्रकार केम्पोफॉर्मियो की सन्धि से योरोप के मानचित्र को बदलने का वह सिलसिला शुरू हुआ जो भविष्य में कई वर्ष तक जारी रहा।* किन्तु इस सन्धि के द्वारा जो परिवर्तन हुए वे फ्रेञ्च क्रान्ति के सिद्धान्तों के प्रतिकूल थे। नेपोलियन ने नये राज्यों का निर्माण किया और उनके लिये शासन की नई व्यवस्था की परन्तु वहाँ की जनता से इस सबंध में उसने कोई परामर्श नहीं लिया। इस प्रकार अपनी विदेशी नीति में फ्रान्स ने उन्हीं सिद्धान्तों की अवहेलना की जिनकी वह अपने यहाँ स्थापना कर रहा था। यह नीति सारतः वही थी जो पुराने निरंकुश-एकतंत्र की थी। सेवॉय, नीस और बेल्जियम की विजय तथा राइन नदी तक फ्रान्स की सीमा को आगे बढा ले जाने में भी हमें रिशल्यू तथा चौदहवें लुई की 'प्राकृतिक सीमा' वाली नीति की पूर्ति दिखाई देती है। इस सन्धि के अनुसार इस तरह फ्रान्स की सीमा केवल पूर्व में प्राकृतिक

* Hazen · Modern European History, p. 165

सीमाओं तक ही नहीं पहुँच गई, इटली पर भी फ्रान्स का प्राधान्य स्थापित हो गया और आयोनियन द्वीपों पर फ्रान्स का अधिकार हो गया। इन द्वीपों पर अधिकार करने में नेपोलियन की दूरदर्शिता और उसकी उच्च आकांक्षाओं के क्रमिक विकास की झलक मिलती है। वह अभी से आगे के लिये योजना बना रहा था। इटली मे उसका रहन-सहन और व्यवहार बिलकुल स्वतंत्र राजा की तरह था। डाईरेक्टरी से बिना पूछे ही और कभी-कभी तो उसकी इच्छा के विरुद्ध वह युद्ध छेड़ देता था, सन्धियाँ कर लेता था और नये राज्यों का निर्माण कर रहा था।* वह समझता था कि उसे इंगलैण्ड को परास्त करना था। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये इजिप्ट पर अधिकार आवश्यक था और इजिप्ट की ओर बढने के लिये आयोनियन द्वीपों की स्थिति बड़ी अनुकूल थी। इस प्रकार यह सन्धि फ्रान्स के लिये बड़ी लाभदायक थी। ऑस्ट्रिया को भी इससे कोई विशेष हानि नहीं हुई। इटली में एक प्रदेश की जगह उसे दूसरा प्रदेश मिल गया। बेल्जियम पहले से ही विद्रोही हो रहा था और उस पर अधिक दिनों तक अधिकार बनाये रखना उसके लिये असंभव था। उसके निकल जाने से ऑस्ट्रिया को कोई विशेष दुःख नहीं हुआ।

इस प्रकार नेपोलियन विजयी हुआ। 'प्रथम गुट' के तीन सदस्य पहले ही सन्धि कर चुके थे; ऑस्ट्रिया तथा सार्डिनिया ने अब सन्धि करली; अब केवल इंगलैण्ड बच रहा था।

समुद्र पर युद्ध—

स्पेन, प्रशा तथा हॉलैण्ड से १७९५ में सन्धि हो जाने के बाद इंगलैंड ने अपना पूरा ध्यान समुद्री लड़ाई में लगा दिया था। जब हॉलैंड फ्रान्स का मित्र बन गया तो इंगलैंड ने हॉलैण्ड के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी (१७९५), समुद्र पार उसके साम्राज्य के विभिन्न भागों पर आक्रमण कर दिया और उसी वर्ष दक्षिण अफ्रीका में केप कॉलोनी, भारत महासागर में लंका, पूर्वी द्वीपसमूह में मलक्का और पश्चिमी द्वीपसमूह में हॉलैण्ड के कई द्वीप छीन लिये। स्पेन ने फ्रान्स से मिलकर इंगलैण्ड के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी थी। उसे भी हानि उठानी पड़ी। इंगलैण्ड के बेड़े ने दक्षिणी अमेरिका के उत्तरी तट के निकट उससे ट्रिनिडाड द्वीप छीन लिया और सेंट विंसेन्ट अन्तरीप के युद्ध में उसका बेड़ा नष्ट कर दिया (फर्वरी, १७९७)। उसी वर्ष अक्टूबर में केम्पर-डाउन के युद्ध में हॉलैण्ड के बेडे की भी यही दशा हुई। इस प्रकार इंगलैण्ड

* Fisher : A History of Europe, p 823

समुद्र पर सर्वत्र विजयी हो रहा था परन्तु उसके सामने अनेक संकट उपस्थित थे। आयर्लैंण्ड विद्रोही हो रहा था और दिसम्बर १७९६ में फ्रान्स ने विद्रोहियों को सहायता देने का एक निष्फल प्रयत्न भी किया था। वेड़े मे अत्यन्त कठोर अनुशासन, बुरे भोजन तथा वेतन न मिलने के कारण विद्रोह हो रहा था और देश में आर्थिक सकट उपस्थित था। फ्रान्स से लड़ते-लड़ते वह अकेला ही रह गया था। पिट शान्ति चाहता था। १७९६ तथा १७९७ में उसने सन्धि के प्रस्ताव भी किये परन्तु डाइरेक्टरी ने योरोप मे प्राप्त होने वाली विजय के मद में उन पर ध्यान नहीं दिया और सन्धि न हो सकी। *

नवजात गणतंत्र संकट में—

परन्तु फ्रान्स मे नवजात गणतंत्र पर सकट के बादल घिर रहे थे। विधान-परिषद् को राजसत्ता के समर्थकों की ओर से जो डर था वह सत्य था। व्यवस्थापिका सभा के दोनों भवनों में नये चुनावों के फल-स्वरूप राजसत्ता के कई समर्थक आ गये थे। उन्हीं में से एक पाँच सौ के भवन का सभापति वन गया था। डाइरेक्टरी मे एक सदस्य बार्थेलेमी (Barthelemy) राजसत्ता का समर्थक आ गया था। ऐसी दशा में वारा तथा अन्य गणतंत्रीय डाइरेक्टरों ने नेपोलियन को बुलाया। परन्तु नेपोलियन समझता था कि अभी अवसर नहीं आया है। उसने अपने एक विश्वासपात्र अफसर ओजरो (Augereau) को भेज दिया, जिसने ४ सितम्बर १७९७ (18th Fructidor) को व्यवस्थापिका सभा के ५३ सदस्यों को गिरफ्तार कर लिया। वे देश से निकाल दिये गये। बार्थेलेमी तथा कार्नो भी बचकर निकल भागे और गणतंत्र की रक्षा हो गई। इस प्रकार फ्रान्स का गणतंत्र नेपोलियन के बाहुबल का आश्रित था। नेपोलियन इटली से उसे धन की भी सहायता कर रहा था। जिन राजाओं को उसने परास्त किया था उनसे उसने बहुत-सा धन वसूल किया और फ्रान्स भेज दिया। इतना ही नहीं, उसने बड़ी निर्लज्जतापूर्वक इटली के बहुत से सुन्दर चित्र तथा मूर्तियाँ फ्रान्स के म्यूज़ियम को सजाने के लिये भेजीं। यह सरासर लूट थी। †

नेपोलियन का फ्रान्स को लौटना—

ऑस्ट्रिया से सन्धि करने के बाद नेपोलियन फ्रान्स लौट गया (५ दिसम्बर १७९७)। जनता ने उसका बड़े उत्साह से स्वागत किया। परन्तु

* Marriott : The Remaking of Modern Europe, p. 63-64.

† Fisher : A History of Europe, p. 824

डेन्मार्क
रूस
ग्रेट ब्रिटेन
लन्दन
बेटावियन
गणतंत्र
केम्परडाउन
प्रशा
वारसा
पवित्र
रोमन
साम्राज्य
ब्रेस्ट
क्विबेरान
पेरिस
फ्रेन्च
गणतंत्र
हेल्वेटिक
गणतंत्र
वियना
आस्ट्रिया का साम्राज्य
लियां
तूलों
स्पेन
तुर्की का
साम्राज्य
रोमन
गणतंत्र
कार्सिका
नेपिल्स का
राज्य
सार्डिनिया का
राज्य

योरोप - १७९८
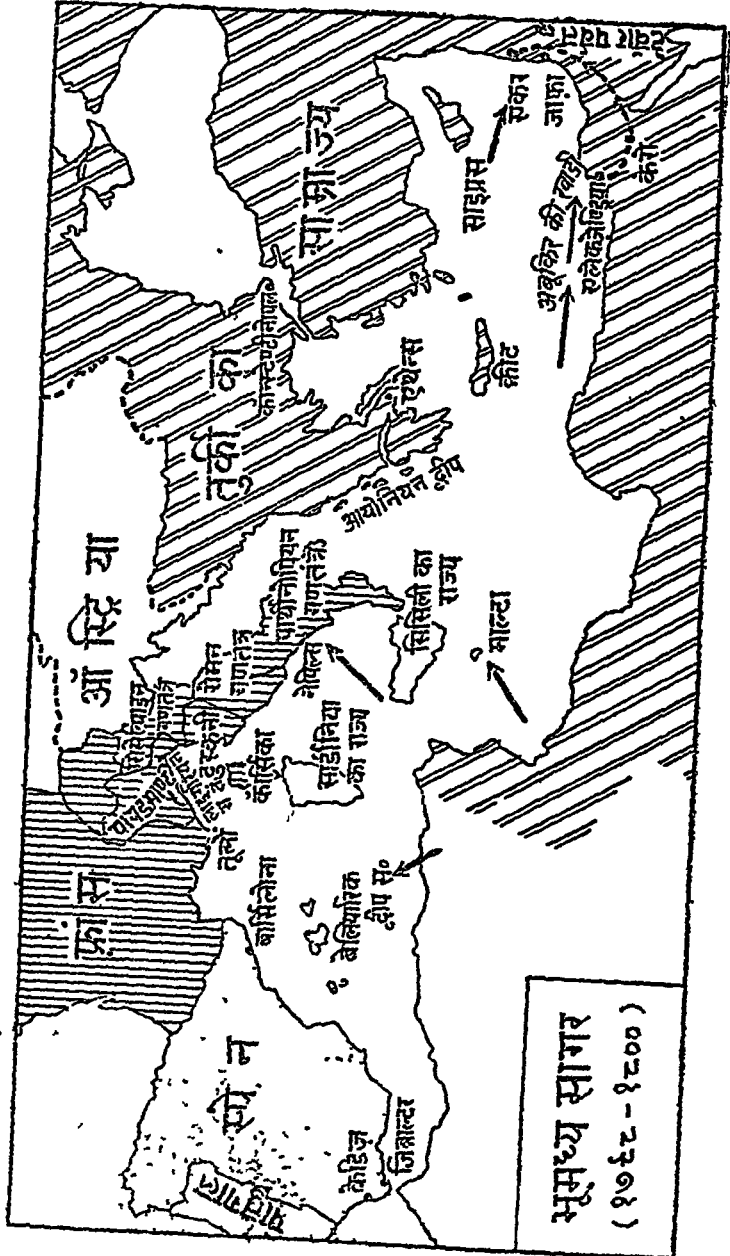
डाइरेक्टरों को उससे बड़ा भय मालूम हुआ। वे उसे दूर ही रखना चाहते थे। नेपोलियन भी देख रहा था कि अभी उपयुक्त अवसर नहीं आया है। उसे इंगलैण्ड पर आक्रमण करने का आदेश दिया गया। इंगलैंड पर सीधा आक्रमण करना असंभव देखकर उसने डाइरेक्टरों को इजिप्ट पर आक्रमण करने की सलाह दी और बतलाया कि इजिप्ट विजय हो जाने पर भारतवर्ष में अंग्रेजों के राज्य पर आक्रमण करना और उसका व्यापार नष्ट करना सरल होगा और व्यापार नष्ट होने पर इंगलैंड घुटनों के बल आ जायगा। इजिप्ट तुर्की के साम्राज्य मे था परन्तु नेपोलियन तुर्की की निर्बलता से परिचित था। इजिप्ट को विजय कर लेने पर कई बातें संभव थी। वहाँ से भारतवर्ष पर आक्रमण हो सकता था या अगर वह योरोप पर पीछे की तरफ से आक्रमण करना चाहता तो इजिप्ट से तुर्की विजय करके इस उद्देश्य की भी पूर्ति हो सकती थी, या यदि उसे महान् सिकन्दर के समान एक पूर्वी साम्राज्य स्थापित करने की इच्छा हुई तो इजिप्ट उसके लिये बड़ा अच्छा आधार था। वास्तव में नेपोलियन विश्व साम्राज्य के स्वप्न देखने लगा था। * वह कहता भी था कि योरोप मेरे लिये काफी नही है। इस प्रस्ताव को डाइरेक्टरों ने सहर्ष स्वीकार कर लिया।

नेपोलियन इजिप्ट की ओर—

इजिप्ट के आक्रमण के लिये बड़ी गुप्त रीति से और फुर्ती से तैयारी की गई और नेपोलियन १९ मई १७९८ को तूलों के बन्दरगाह से कोई ३८००० सैनिकों के साथ रवाना हो गया। रास्ते मे माल्टा लेता हुआ वह १ जुलाई को इजिप्ट पहुँच गया। दूसरे दिन ही उसने एलेक्जेण्ड्रिया विजय कर लिया और काहिरा की ओर बढा। २१ जुलाई को पिरामिडों के पास इजिप्ट की सेना को उसने फिर परास्त किया और २२ जुलाई को काहिरा में प्रवेश किया। इजिप्ट पर उसका अधिकार हो गया था।

परन्तु भूमध्यसागर मे इन दिनों नेलसन की अधीनता मे एक अंग्रेजी बेड़ा घूम रहा था। नेलसन को नेपोलियन की यात्रा का पता चल गया। उसने शीघ्र ही उसका पीछा किया और १ अगस्त को नील नदी की लड़ाई में फ्रेञ्च बेड़े को नष्ट कर दिया। अब नेपोलियन का सम्बन्ध फ्रान्स से टूट गया और वह ऐसे देश मे बन्द हो गया जहाँ की जनता उसकी शत्रु थी और जलवायु अत्यन्त कष्टप्रद। परन्तु नेपोलियन हिम्मत हारनेवाला जीव नहीं था। वह वहीं जमा रहा और फ्रान्स से समाचारों की प्रतीक्षा करता रहा। इसी बीच

* Fisher. A History of Europe, p. 826.

में नेल्सन की विजय से प्रोत्साहित होकर योरोप के राज्यों ने फ्रान्स के विरुद्ध 'द्वितीय गुट' वना लिया था और उसमें तुर्की भी सम्मिलित हो गया था। जब नेपोलियन को यह समाचार मिला और उसे मालूम हुआ कि तुर्की इजिप्ट को पुनः विजय करने के लिये सीरिया में होकर सेना भेज रहा है तो उसने सीरिया पर आक्रमण किया। उसने गाजा और जाफा ले लिया और आगे वढ़ कर एकर का घेरा डाला (मार्च १७६६), परन्तु दो महीने के घेरे के वाद भी वह उसे न ले सका क्योंकि उसे समुद्र की ओर से अंग्रेजी वेडा सहायता दे रहा था। इसी बीच में उसने १६ अप्रेल को माउण्ट टेवॉर के पास एक तुर्की सेना को और हराया परन्तु जब वह एकर न ले सका तो इजिप्ट लौट गया। रास्ते में उसकी सेना को वड़े कष्ट उठाने पड़े। उसके वापस लौटने के कुछ ही सप्ताह बाद अवूकिर में एक तुर्की सेना उतरी परन्तु नेपोलियन ने उसे बुरी तरह परास्त कर दिया (२५ जुलाई) और इजिप्ट पर फिर अपना प्राधान्य स्थापित कर लिया।

नेपोलियन के लिये उपयुक्त अवसर—

परन्तु अव नेपोलियन जिस अवसर की प्रतीक्षा में था वह आ गया था। डाइरेक्टरी की स्थिति आरंभ से ही वड़ी कठिन थी। डाइरेक्टरों में परस्पर तथा डाइरेक्टरी और व्यवस्थापिका सभा में निरन्तर संघर्ष होता रहता था और षड्यंत्र होते रहते थे। इसके फल-स्वरुप डाइरेक्टरी का जनता पर प्रभाव घटता जा रहा था। उसकी गृह-नीति से सभी वर्ग असंतुष्ट थे। पूंजीपतियों को उसने उनसे जवरदस्ती ऋण लेकर नाराज कर लिया था। इन्हीं दिनों वावूफ (Babeuf) के नेतृत्व में मजदूरों ने एक साम्यवादी साज़िश की थी जिसका वड़ी कठोरता से दमन किया गया था जिससे मज़दूरवर्ग असन्तुष्ट हो गया था। केथोलिक मत के दमन के परिणाम-स्वरूप जनता की धार्मिक भावनाओं को चोट पहुँच रही थी। इसके साथ ही उसके शासन में क्षमता विलकुल नहीं थी। वह विलकुल निकम्मी सावित हो चुकी थी और अप्रिय होती चली जा रही थी। उसकी विदेशी नीति उतनी ही सिद्धान्तहीन एवं आक्रामक थी जितनी उसकी गृह-नीति निर्वल और अप्रिय थी। इटली से नेपोलियन के लौटने के वाद फ्रेञ्च सेनाओं ने स्विट्जरलैण्ड पर आक्रमण करके उसे जीत लिया था और फ्रान्स की अधीनता में वहाँ गणतत्र (Helvetic Republic) स्थापित कर दिया था। रोम पर फ्रेञ्च सेनाओं ने, वहाँ की कुछ गड़वड़ से लाभ उठाकर, आक्रमण कर दिया था और पोप को निकाल कर गणतंत्र (Tiberine

Republic) की स्थापना कर दी थी। जिनोआ .फ्रान्स में सम्मिलित कर लिया गया था और पायडमांट (Piedmont) पर .फ्रेञ्च सेना ने अधिकार जमा लिया था। हॉलैण्ड में भी हस्तक्षेप करके उसका शासन-विधान बदलकर .फ्रान्स के विधान के अनुसार कर दिया गया था।

डाइरेक्टरी की इन ज़्यादतियों को देखकर और नेलसन की विजय से प्रोत्साहित होकर इंगलैण्ड ने ऑस्ट्रिया और रूस के साथ मिलकर .फ्रान्स के विरुद्ध एक दूसरा गुट तैयार कर लिया था और तुर्की, नेपिल्स और पोर्तुगाल उसमें शामिल हो गये थे। इटली से .फ्रान्स की सेनाएँ खदेड़ कर निकाल दी गई थीं और स्वयं .फ्रान्स पर आक्रमण का डर था।

नेपोलियन वापस .फ्रान्स में—

यही अवसर उसके लिये उपयुक्त था। वह एक पत्र द्वारा सेना की कमाण्ड क्लेबर के हाथ में सौंप कर चुपके से .फ्रान्स के लिये रवाना हो गया और अंग्रेजी वेड़े की निगाह बचाता हुआ ६ अक्टूबर को .फ्रान्स के क़िनारे जा लगा। .फ्रेञ्च जनता ने सर्वत्र उसका बड़ा स्वागत किया। १६ अक्टूबर को वह पेरिस जा पहुँचा। उसके आगमन का समाचार सुनकर डाइरेक्टरों में बड़ा आतंक छा गया।

डाइरेक्टरी का अन्त—

नेपोलियन ने पेरिस पहुँचते ही षड्यंत्र रचना शुरू कर दिया। दो डाइरेक्टर भी जिनमें एक एवे सेयेज था उसके साथ शामिल हो गये। नेपोलियन ने जो योजना बनाई थी वह तो विफल हो गई परन्तु ऐन मौक़े पर उसके सैनिकों ने उसका साथ दिया। तीन डाइरेक्टरों ने त्यागपत्र दे दिया और शेष दो गिरफ्तार कर लिये गये। व्यवस्थापिका सभा के जिन लोगों ने विरोध किया वे पकड़ लिये गये और शेष सदस्यों ने डाइरेक्टरी के अन्त की घोषणा की और उसके स्थान पर तीन कॉन्सल (Consul) नियुक्त किये जिनमें एक स्वयं नेपोलियन था। उन्हें नया विधान बनाने का भी आदेश मिला। इस प्रकार १० नवम्बर १७६६ (19 Brumaire) को डाइरेक्टरी का अन्त हो गया और नेपोलियन की महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए मार्ग साफ़ हो गया।

क्रान्ति के अचिन्तित परिणाम—

यदि हम क्रान्ति के इन ग्यारह वर्षों के इतिहास का सिंहावलोकन करें तो हमें मालूम होगा कि क्रान्ति के परिणाम जो कुछ उसके नेता करना चाहते

थे उससे बहुत भिन्न निकले। वे एकतंत्र का सुधार चाहते थे परन्तु उन्होंने उसका नाश करके उसके स्थान पर गणतन्त्र स्थापित किया; वे आर्थिक व्यवस्था करना चाहते थे, परन्तु उन्होंने देश को दिवालिया बनाकर छोड़ा, वे चर्च का संगठन सुधारना चाहते थे परन्तु उसे उन्होंने अस्तव्यस्त कर दिया; वे स्वय-सेवक सेना को बनाये रखना चाहते थे परन्तु अन्त में उन्होंने सैनिक सेवा को अनिवार्य बना दिया। वे फ्रान्स मे स्थानीय स्वशासन तथा राजनीतिक स्वतन्त्रता स्थापित करना चाहते थे परन्तु उन्होंने एक केन्द्रीभूत सर्वसत्तावान् शासन के लिए रास्ता तैयार कर दिया। वे युद्ध और विजय का त्याग चाहते थे परन्तु उन्होंने फ्रान्स को अखिल-योरोपीय युद्ध में झौंक दिया और बड़ी-बड़ी विजय कीं। वे ऐसा शासन स्थापित करना चाहते थे जो दूसरों के लिए आदर्श होता परन्तु जो शासन उन्होने स्थापित किया उससे अन्य राष्ट्र घृणा करने लगे।* क्रान्ति का परिणाम कभी निश्चित नहीं होता।

---

* Seignboss: The Rise of European Civilisation, pp. 331-2 quoted in Strong : Dynamic Europe, p. 225.

नेपोलियन

उत्कर्ष और पतन

(१७९६–१८१५)

अध्याय ९

कॉन्सल-शासन (Consulate)

नेपोलियन—प्रथम कॉन्सल
(१७९९—१८०४)

क्रान्ति तथा युद्ध के दस वर्ष के अन्त में फ्रान्स केवल शान्ति एवं व्यवस्थित शासन को छोड़ और कुछ नहीं चाहता था। देश अव्यवस्था तथा अराजकता से ऊब उठा था। मरम्मत के अभाव में सड़कें बेकार होगई थीं, सर्वत्र लूटमार फैली हुई थी, स्कूलों में अध्यापक नहीं थे, अस्पतालों में नर्सें नहीं थीं, और चौदह प्रान्तों का जीवन राजसत्ता के समर्थकों के विद्रोह के कारण असम्भव होगया था। पेरिस के राजनीतिज्ञों में भी इस समय ऐसे व्यक्ति थे जो समझते थे कि इस अव्यवस्था का अन्त और सुशासन एवं सुव्यवस्थित स्वतन्त्रता की स्थापना एक सैनिक की तलवार के द्वारा ही हो सकती थी।* ऐसा सैनिक अब मञ्च पर आगया था और उसने शीघ्र ही फ्रान्स की इच्छा को पूर्ण भी कर दिया।

नया विधान शीघ्र ही तैयार होगया। क्रान्ति के आरम्भ के बाद बने हुए विधानों में यह चौथा विधान था। इसका निर्माता एबे सेयेज़ था। नेपोलियन को वह पसन्द नहीं आया। उसने उसमें परिवर्तन करके जनता के सामने रखा और जनता ने विशाल बहुमत से उसे स्वीकार कर लिया।†

नया विधान—

नये विधान के अनुसार कार्यपालिका सत्ता सीनेट द्वारा १० वर्ष के लिये निर्वाचित तीन कॉन्सलों की एक समिति (Consulate) के हाथों में सौंपी गई। प्रथम तीन कॉन्सलों के नामों का उल्लेख विधान में ही कर दिया गया। प्रथम कॉन्सल नेपोलियन स्वयं था, जिसके हाथों मे प्रायः समस्त सत्ता केन्द्रित थी। मन्त्रियों, राजदूतों, सेना के अफ़सरों, न्यायाधीशों तथा शासन के असंख्य

---

* Fisher : A History of Europe, p. 828.

† इस विधान के पक्ष में ३०,१२,००० मत और विपक्ष में केवल १५६५ मत आये थे। Grant and Temperley : Europe in the Nineteenth and Twentieth Centuries, p. 75.

कर्मचारियों को नियुक्त करने का, तथा व्यवस्थापिका सभा की स्वीकृति के साथ युद्ध एवं सन्धि करने का अधिकार प्रथम कॉन्सल के हाथों मे ही था।

कानून बनाने के लिये तीन सदनों की एक व्यवस्थापिका सभा का निर्माण किया गया—(१) राज्य-परिषद् (Council of State) जिसका कार्य कानून के मसौदे बनाना था, (२) सौ सदस्यों की ट्रिब्यूनेट (Tribunate) जो केवल उस मसौदे पर बहस कर सकती थी और (३) तीन सौ सदस्यों की विधान-सभा (Corps Legislatif) जिसका काम उसके समक्ष प्रस्तुत मसौदे पर बिना बहस किए हुए केवल मत देना था। कानून के मसौदे प्रथम कॉन्सल के आदेश से तैयार किए जाते थे और उसी की अन्तिम स्वीकृति से ही कानून बन सकते थे।

इन तीन सभाओं के अतिरिक्त ६० सदस्यों की एक सभा सीनेट और थी जिसका काम यह निर्णय करना था कि कोई कानून विधान के अनुकूल है या प्रतिकूल। इसके अतिरिक्त कॉन्सलों का निर्वाचिन तथा ट्रिब्यूनेट और विधान सभा के सदस्यो के निर्वाचन का भी अधिकार इसी सभा का था। इन सदस्यों का निर्वाचन देश के विभिन्न प्रान्तों से जनता द्वारा निर्वाचित २००० व्यक्तियों में से कॉन्स्युलेट द्वारा होता था। इस प्रकार इस सभा की नियुक्ति वस्तुतः प्रथम कॉन्सल के हाथों में थी।

विधान द्वारा राज्य की समस्त सत्ता अपने हाथ में लेकर उसने एक कानून पास करवाया जिसके द्वारा समस्त स्थानीय शासन के कर्मचारियों की नियुक्ति का अधिकार भी उसे मिल गया। इस प्रकार फ्रान्स का समस्त राष्ट्रीय तथा स्थानीय शासन इतने प्रभावकारी ढंग से नेपोलियन के हाथों में केन्द्रित हो गया, जितना बूर्बों राजाओं के हाथों मे भी नहीं था।* कॉन्सल-शासन में गणतन्त्र का दिखावा तो अवश्य रखा गया था परन्तु वास्तव में वह उतना ही स्वेच्छाचारी एकतंत्र था जितना कि बूर्बों राजाओं का। अन्तर इतना ही था कि बूर्बों राजाओं का एकतंत्र तो निर्बल और अप्रिय था और विशेषाधिकार के सिद्धान्त पर आधारित था। यह एकतंत्र अत्यन्त शक्तिशाली एवं निपुण था, समता के सिद्धान्त पर आधारित था और इसे जनता का समर्थन प्राप्त था।

'द्वितीय गुट' से युद्ध—

इस प्रकार अपनी स्थिति को मजबूत करके नेपोलियन ने द्वितीय गुट की ओर ध्यान दिया। आप ऊपर देख चुके हैं कि द्वितीय गुट मे इंगलैण्ड, रूस,

* Hazen Modern European History, p. 182.

ऑस्ट्रिया, तुर्की, नेपिल्स तथा पोर्तुगाल शामिल थे। इस गुट से युद्ध उन्हीं दिनों में आरम्भ हो गया था, जिन दिनों नेपोलियन इजिप्ट में था। युद्ध का आरम्भ इटली में हुआ था जहाँ नेपिल्स के राजा फर्डिनेण्ड ने रोमन रिपब्लिक पर आक्रमण करके उसे अपने अधिकार में कर लिया था और पोप को वापस बुलाकर उसे सौंप दिया था। परन्तु डाइरेक्टरी ने सेना भेजकर फर्डिनेण्ड को परास्त कर दिया था और रोमन रिपब्लिक को पुनः स्थापित करके नेपिल्स के राज्य को भी एक गणतन्त्र—पार्थीनोपियन रिपब्लिक (Parthenopean Republic)—बना दिया था। उसने सार्डिनिया के राजा चार्ल्स इमेन्युएल को भी ट्यूरिन से निकाल कर सार्डिनिया द्वीप को भगा दिया था। जनवरी १७९९ तक फ्रान्स की सेनाएँ इतनी सफलता प्राप्त कर चुकी थी परन्तु इसके आगे उनकी पराजय होने लगी थी।

शत्रुओं की योजना फ्रान्स पर दो तरफ़ से—राइन नदी के मार्ग से तथा उत्तरी इटली में होकर—आक्रमण करने की थी। दोनों ओर के आक्रमण सफल रहे। राइन नदी के मोर्चे पर आर्चड्यूक चार्ल्स ने जूर्दी के नेतृत्व मे फ्रेन्च सेना को स्तोकाख (Stockach) के स्थान पर हराया (मार्च १७९९) और फ्रेञ्च जनरल मसेना को, जो स्विट्जरलैण्ड से उसके विरुद्ध बढा था, हराकर मेनहीम ले लिया (सितम्बर)।

उत्तरी इटली मे ऑस्ट्रिया तथा रूस की सेनाएँ लड़ रही थी जिन्होंने तीन महीने के अन्दर सारा उत्तरी इटली, फ्रेञ्च सेनाओं से मुक्त कर लिया, केवल जिनोआ फ्रान्स के हाथ मे बना रहा। सिसएल्पाइन, रोमन तथा पार्थीनोपियन गणतन्त्र भी भग कर दिये गये। परन्तु शत्रुओं की यह विजय स्थायी न रह सकी। दोनों सेनाओं में मनमुटाव होगया। रूसी जनरल सुवेरॉफ लौट गया और फ्रेञ्च जनरल मसेना ने एक दूसरे रूसी जनरल कॉर्सेकॉफ को जूरिख मे परास्त करके हटा दिया। रूस युद्ध से अलग होगया और उसने जो कुछ किया था सब नष्ट हो गया। उधर उत्तर मे इगलैण्ड तथा रूस ने मिलकर हॉलैण्ड में सेना उतारी परन्तु यॉर्क के ड्यूक को जो उस सेना का कमाण्डर था हथियार डाल देने पडे और सेना को हटा लेना पड़ा (सितम्बर १७९९)।

अब फ्रान्स का शासन-सूत्र नेपोलियन के हाथों मे आ गया था। उसने डेन्यूब नदी की राह से मोरों की कमाण्ड मे एक सेना ऑस्ट्रिया भेजी और स्वय एक सेना लेकर इटली की ओर चल पड़ा। उसने सेंट बर्नार्ड के दर्रे में होकर इटली में प्रवेश किया और अचानक ऑस्ट्रिया की सेना पर आक्रमण

करके उसे मेरेन्गो (Marengo) के युद्ध में परास्त कर दिया (जून १८००)। इस युद्ध में नेपोलियन ने अपनी सेना को विभक्त करके बड़ी ग़लती की थी और वह हार ही चुका था परन्तु ऐन मौके पर उसका एक अफसर अपनी सेना सहित आ पहुँचा और पराजय विजय में परिवर्तित होगई। उधर मोरो ने भी ऑस्ट्रियन सेना को होहेनलिंडन के युद्ध में परास्त किया (दिसम्बर १८००) जिससे वियना का रास्ता उसके लिये खुल गया। इस प्रकार परास्त होने पर ऑस्ट्रिया के सम्राट् द्वितीय .फ्रान्सिस को ल्यूनविल (Luneville) के स्थान पर सन्धि करनी पड़ी जिसके अनुसार उसे केम्पोफॉर्मियो की सन्धि की पुनः पुष्टि करनी पड़ी (फर्वरी १८०१)। नेपिल्स से भी सन्धि होगई। फर्डिनेण्ड को टुस्कनी का प्रदेश फ्रान्स के सुपुर्द करना पड़ा और अपने बन्दरगाहों मे अंग्रेज़ी तथा तुर्की जहाज़ों को न आने देने का वचन देना पड़ा। स्पेन ने भी सन्धि करके उत्तरी अमेरिका में लुइसाना का प्रदेश .फ्रान्स को दे दिया।

अब इंगलैण्ड अकेला बच रहा था। ईजिप्ट में .फ्रेञ्च सेनाओं को एलेक्जेड्रिया मे राफ एबरक्रॉम्बी ने परास्त करके उनसे हथियार डलवा लिये थे (मार्च १८०१)।

उधर योरोप में ऑस्ट्रिया तथा रूस में मनमुटाव हो गया था और रूसका जार पॉल नेपोलियन के साथ सहयोग करने के लिए तैयार था। नेपोलियन के कहने से उसने प्रशा, स्वीडन तथा डेनमार्क से मिलकर 'सशस्त्र तटस्थता' (Armed Neutrality) की योजना को जो अमेरिका के स्वातन्त्र्य-युद्ध के समय मे बनाई गई थी, पुनर्जीवित किया जिसके अनुसार युद्ध के समय मे तटस्थ राज्यों के जहाज़ों की तलाशी लेने के इंगलैण्ड के अधिकार का विरोध किया जाने लगा। इंगलैण्ड को इस संघ से उत्तरी सागर में भय उत्पन्न हो गया परन्तु नेल्सन ने कोपनहेगन पर आक्रमण करके डेन्मार्क के बेड़े को नष्ट कर दिया और संघ को तोड़ दिया (अप्रैल १८०१)।

आमियॉं की सन्धि—युद्ध का अन्त—

युद्ध का अन्त कहीं दिखाई नहीं देता था। समुद्र पर इंगलैण्ड को परास्त करना नेपोलियन के लिए असम्भव था। महाद्वीप पर इंगलैण्ड .फ्रान्स का कुछ नहीं बिगाड़ सका था। लड़ते-लड़ते दोनों थक गये थे। इंगलैण्ड में पिट हट गया था और उसका उत्तराधिकारी एडिंग्टन युद्ध जारी रखना नहीं चाहता था। नेपोलियन भी बड़ी-बड़ी योजनाएँ बना रहा था जिनको ठीक करने के लिए अवकाश चाहिए था। अतः दोनों पक्ष सन्धि के लिए तैयार

हो गए और २७ मार्च १८०२ को आमियाँ (Amiens) की सन्धि से युद्ध बन्द हो गया। यह सन्धि एक ओर इंगलैण्ड तथा दूसरी ओर फ़्रान्स, स्पेन तथा हॉलैण्ड के बीच हुई। फ़्रान्स ने नेपिल्स तथा पोप का राज्य खाली करना, इजिप्ट तुर्की को वापस लौटा देना तथा आयोनियन द्वीपों को स्वतन्त्र मान लेना स्वीकार कर लिया। इंगलैण्ड ने फ़्रान्स तथा उसके मित्रों से जो प्रदेश छीन लिये थे, वे लङ्का तथा ट्रिनिडाड को छोड़कर, सब वापस कर देने का वचन दिया। उसने माल्टा का द्वीप भी उसके असली स्वामियों (Knights of St. John) को वापस लौटा देना स्वीकार कर लिया। इस सन्धि में नेपोलियन ने योरोप में जो अन्य परिवर्तन किये थे और जिन्हें ऑस्ट्रिया ने ल्यूनविल की सन्धि से स्वीकार कर लिये थे उनकी कोई चर्चा नहीं की गई, जिसका स्पष्ट अर्थ यह था कि इंगलैण्ड ने भी उन्हे स्वीकार कर लिया। इंगलैण्ड बेल्जियम तथा हॉलैण्ड से फ़्रान्स को निकालने के लिए युद्ध में सम्मिलित हुआ था परन्तु इस सन्धि के अनुसार उसने इन प्रदेशों पर फ्रान्स का अधिकार स्वीकार कर लिया। इस सन्धि से इंगलैण्ड में सब प्रसन्न थे परन्तु उस पर किसी को अभिमान नहीं था। यह बात सत्य ही थी। इस सन्धि से फ़्रान्स को ही अधिक लाभ हुआ था। जिस काम को चौदहवाँ लुई पूरा नहीं कर पाया था उसे नेपोलियन ने पूरा कर दिया था।

आन्तरिक व्यवस्था—

दस वर्ष के बाद योरोप को शान्ति मिली। परन्तु जैसा हम आगे देखेंगे यह शान्ति क्षणिक थी। नेपोलियन ने सन्धि के पहले ही फ़्रान्स की आन्तरिक दशा को सुधारने का कार्य आरम्भ कर दिया था। जो अवकाश अब उसे मिला उसमे उसने वह काम जारी रखा और अपनी स्थिति को खूब मजबूत कर लिया। नेपोलियन बड़ा बुद्धिमान् था। वह फ़्रान्सवालों को अच्छी तरह समझता था। फ़्रान्स के लिए गणतन्त्र का विचार उसके लिए उपहासजनक था। १७९७ में इटली में अपने निवास-स्थान के बगीचे में टहलते हुए उसने कहा था—'तीन करोड़ आदमियों का गणतन्त्र! कितना हास्यजनक विचार है! यह बात कैसे सम्भव है? फ़्रेञ्च राष्ट्र को तो एक गौरवशाली यशस्वी स्वामी की आवश्यकता है, शासन के सिद्धान्तों और अन्य ऐसे ही ढकोसलों की नहीं, जिन्हें वह समझता ही नहीं है।'

नेपोलियन की नीति—

एक बार उसने कहा था 'मै ही क्रान्ति हूँ।' किसी अन्य अवसर पर उसने

यह भी कहा था कि 'मैंने क्रान्ति को नष्ट कर दिया है।' इन दोनों ही उक्तियों में कुछ सत्यांश है जैसा कि उसके कार्यों से मालूम होगा। वह फ्रान्सवालों की आवश्यकताओं को अच्छी प्रकार समझता था। पिछले दस वर्षों की अराजकता से जनता त्रस्त थी और शान्ति एव सुशासन चाहती थी। इसके साथ ही वह क्रान्ति के लाभों को भी छोड़ना नहीं चाहती थी। अतः नेपोलियन ने अपना मुख्य उद्देश्य सुव्यवस्थित शासन एव समाज की स्थापना स्थिर किया जिनमें जनता पूर्ण सुरक्षा का अनुभव करते हुए अपना दैनिक जीवन शान्ति से विता सके। इसके साथ ही वह चाहता था कि जनता क्रान्ति के मुख्य लाभों—पूर्ण समता और विशेषाधिकार के नाश—का उपभोग करती रहे। अपने उद्देश्यों के सम्बन्ध में जनता की शंकाओं का निवारण करने के लिए उसने घोषणा की कि मेरा मुख्य कार्य क्रान्ति को समाप्त कर उसके परिणामों में स्थिरता लाना है। सुव्यवस्थित शासन एवं जनता के लिए क्रान्ति के लाभों को सुरक्षित रखने के साथ साथ उसका उद्देश्य क्रान्ति-काल में जनता के सामाजिक जीवन को जो अनेक क्षतियाँ पहुची थी उन्हें ठीक करना भी था।*

नवीन व्यवस्था—

इन उद्देश्यों को अपने सामने रख कर नेपोलियन ने फ्रान्स की सस्थाओं का नवीन सगठन और सामाजिक जीवन का पुनर्निर्माण आरभ किया। इस कार्य में नेपोलियन एक साथ ही क्रान्ति के उत्तराधिकारी तथा उसके विरुद्ध होनेवाली प्रतिक्रिया की संतान के रूप में प्रकट हुआ।†

शासन मे परिवर्तन—

वह स्वतत्रता का शत्रु था। वह देख चुका था कि स्वतंत्रता के नाम में ही फ्रान्स में इतने अत्याचार हुए थे। वह कहा करता था कि फ्रान्स समता चाहता है, स्वतंत्रता नही। उसने जनता को किसी प्रकार की स्वतंत्रता नहीं दी और अभी तक उसे जो राजनीतिक स्वतत्रता, भाषण, प्रकाशन आदि की स्वतंत्रता प्राप्त थी, सब छीन ली। जैसा आप देख चुके हैं उसने केन्द्रीय तथा स्थानीय

* मादलें ने नेपोलियन की समस्त नीति को ही समझौते की नीति (Policy of Concordats) बतलाया है। विभिन्न विरोधी एवं असन्तुष्ट लोगों को सन्तुष्ट करना और इस प्रकार सामाजिक जीवन के घावों को भरकर उसे स्वस्थ करना उसका उद्देश्य था। (Madelin The consulate and the Empire, vol. 1, p. 61).

† Marriott · The Remaking of Modern Europe, p. 74.

शासन को पूर्णतया केन्द्रित करके जनता को राजनीतिक अधिकारों से वंचित कर दिया। केन्द्र मे समस्त सत्ता उसके हाथ में थी। प्रान्तों, जिलों आदि की निर्वाचित कौंसिलों को निर्बल करके उसने स्वय अपने द्वारा प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से नियुक्त अधिकारियों के हाथ में स्थानीय शासन की सत्ता सौंप दी। ये कर्मचारी नेपोलियन के उसी प्रकार आज्ञाकारी सेवक थे जैसे पुरातन व्यवस्था में इन्टेन्डेन्ट लोग राजाओं के होते थे। इस प्रकार से शासन में निपुणता तथा दृढ़ता तो आ गई परन्तु जनता स्वशासन के अधिकार से वंचित हो गई।

इस नई व्यवस्था से स्थानीय शासन में पुरातन व्यवस्था पुनः प्रतिष्ठित हो गई और राष्ट्रीय सभा का किया हुआ एक महत्वपूर्ण सुधार रद्द हो गया। परन्तु उसने अन्य सुधारों को नहीं छेड़ा। उसने व्यापारिक श्रेणियों (Trade Guilds) को पुनः स्थापित नहीं किया और राष्ट्रीय सभा ने भूमि का जो वितरण किया था उसे वैसा ही रहने दिया।

उसने वेकारी की समस्या की ओर भी ध्यान दिया। वेकारों को यथाशक्ति काम दिया गया और कुछ इसी उद्देश्य से पेरिस के नवनिर्माण की योजनाओं पर कार्य आरंभ किया। इस नवनिर्माण का एक उद्देश्य यह भी था कि पेरिस योरोप की कला का केन्द्र बन जाय ताकि फ्रान्सवालों की सौंदर्य एवं अहंकार की भावनाएँ सन्तुष्ट हो सकें। इसी दृष्टि से वह इटली से अनेक सुन्दर चित्र तथा मूर्तियें लाया था। इसी उद्देश्य से उसने कला तथा साहित्य को भी प्रोत्साहन देना आरंभ किया। वह कहा करता था कि फ्रान्सवालों में एक ही भावना—सम्मान की भावना—प्रधान होती है। इस भावना को स्पर्श कर अपने समर्थकों का एक वर्ग—एक नया कुलीन वर्ग—बनाने के लिये उसने राज्य की नागरिक तथा सैनिक सेवा के उपलक्ष में नई उपाधियाँ देना प्रारंभ किया।

आर्थिक व्यवस्था—

राष्ट्र की आर्थिक दशा को सुधारने के लिये उसने कर-पद्धति में परिवर्तन किया। कर वसूल करने का कार्य स्थानीय संस्थाओं के हाथ से लेकर केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त कर्मचारियों को दे दिया गया, जिससे करदाता तथा राज्य दोनों को ही लाभ हुआ। अब करदाता को कम देना पड़ता था परन्तु साथ ही राज्यकोष में धन अधिक पहुँचता था। इस व्यवस्था ने राष्ट्र की आर्थिक दशा बहुत कुछ सुधर गई। उसने बैंक ऑफ फ्रान्स भी स्थापित किया जिससे आर्थिक क्षेत्र में विश्वास उत्पन्न हुआ।

सामाजिक जीवन की कटुता का निवारण—

सामाजिक जीवन में भी उसने विश्वास उत्पन्न करने का प्रयत्न किया। वह देश के सभी लोगों को आश्वासन देना चाहता था और क्रान्ति के दिनों में जो वैमनस्य तथा सन्देह उत्पन्न होगये थे उन्हें दूर करना चाहता था। उसकी दृष्टि में फ्रान्स में सबके लिये जगह थी परन्तु इस शर्त पर कि वे नेपोलियन को और तत्कालीन सस्थाओं को स्वीकार करें। सरकारी पद योग्यता के आधार पर सब के लिये समान रूप से खुले हुए थे चाहे वे पुराने राजसत्ता के समर्थक हों, जकोवें हों, या ज़िरोंदीस्त। उनसे केवल शासन के प्रति भक्ति ही अपेक्षित थी। प्रवासी कुलीनों तथा शपथ न लेनेवाले पादरियों के विरुद्ध जितने क़ानून थे वे सब रद्द कर दिये गये। केवल जो लोग बूर्बों वश के अब भी अनन्य भक्त थे उनके साथ कोई रियायत नहीं की गई।

पोप से समझौता—

क्रान्ति का समाज को विभक्त करनेवाला सबसे बड़ा कार्य चर्च का नया सगठन था। इससे न केवल पादरी, वल्कि जनता का एक वहुत बड़ा भाग असन्तुष्ट था। उसने उन्हें सन्तुष्ट करने के लिये रोमन केथोलिक चर्च को पुनः स्थापित कर दिया और १८०१ मे पोप से एक समझौता (Concordat) कर लिया जिसके द्वारा केथोलिक धर्म फ्रेन्च जनता के अधिकाश का धर्म स्वीकार कर लिया गया। क्रान्ति के दिनों में चर्च की भूमि का जो विक्रय हुआ था, पोप ने उसे स्वीकार कर लिया। यह निश्चय हुआ कि विशपों की नियुक्ति प्रथम कॉन्सल द्वारा होगी परन्तु वे अपने पद पर पोप द्वारा दीक्षित किये जायेंगे। छोटे पादरियों की नियुक्ति शासन की स्वीकृति से विशप लोगों के हाथों में रही। विशपों के लिये राज्य के प्रमुख के प्रति भक्ति की शपथ लेनी आवश्यक रही। विशप तथा पादरी राज्य के कर्मचारी होगये और राज्य से वेतन पाने लगे।

इस समझौते से जनता को वड़ा सन्तोप हुआ। अव लोग स्वतन्त्रतापूर्वक अपने धर्म का पालन कर सकते थे। इसके साथ ही जिन लोगों ने चर्च की भूमि ख़रीदी थी वह उनके पास वनी रही। नेपोलियन को जनता का समर्थन प्राप्त होगया। उसको सवसे वड़ा लाभ यह हुआ कि पादरी लोग जो बूर्बों वश के सवसे जवरदस्त समर्थक थे उससे सन्तुष्ट होगये, और उसके समर्थक बन गये। इस प्रकार उसने धर्म का राजनीतिक उपयोग किया। वास्तव में वह धार्मिक व्यक्ति नहीं था परन्तु वह जानता था कि रूस के ज़ार अथवा तुर्की के सुलतान

जैसे निरंकुश शासक को धार्मिक शक्तियों के नियंत्रण से अपार बल प्राप्त हुआ था। वह यह भी जानता था कि धार्मिक भावना बड़ी गहरी तथा अविनाशी होती है और इसी कारण वह उससे अधिकतम लाभ उठाना चाहता था। वह कहा करता था कि लोगों के लिये एक धर्म होना चाहिये परन्तु वह धर्म सरकार के हाथों में होना चाहिये।*

परन्तु यह समझौता अन्त में एक बड़ी भूल प्रमाणित हुआ। क्रान्ति ने राज्य और चर्च को अलग करके देश में सहिष्णुता एवं धार्मिक स्वतन्त्रता के लिये रास्ता साफ कर दिया था परन्तु नेपोलियन ने दोनों में फिर से सम्बन्ध स्थापित करके आगे के लिये बड़ी कठिन समस्या खड़ी कर दी। पोप के साथ उसका सम्बन्ध भी अधिक दिनों तक अच्छा नहीं रहा और दोनों में शीघ्र ही खटक गई। फिर भी इस समझौते के तात्कालिक परिणाम अच्छे हुए। उससे चर्च की फूट मिट गई और क्रान्ति ने भूमि की जो व्यवस्था की थी उसे पोप का आवश्यक अनुमोदन प्राप्त हो गया। चर्च और राज्य का सम्बन्ध पुनः स्थापित होगया और चर्च राज्य का एक अंग बनकर नेपोलियन के पंजे मे आ गया।† इसके साथ ही जनता भी सन्तुष्ट हो गई।

नेपोलियन-विधान-संहिता— (५)

नेपोलियन का सबसे महत्वपूर्ण काम फ्रान्स के लिये विधान-संहिता (Civil Code) का निर्माण था। राष्ट्रीय विधान-परिषद् ने १७९२ में फ्रान्स के लिये क़ानूनों की एक संहिता तैयार करने के लिये विशेषज्ञों की एक समिति नियुक्त की थी। वह समिति काम कर रही थी। नेपोलियन ने इस कार्य के लिये एक कमीशन नियुक्त किया और स्वयं उसके कार्य में भाग लेकर उसको शीघ्र ही समाप्त कर लिया (१८०४)। क्रान्ति के पहले फ्रान्स में अनेक प्रकार के कानून थे। क्रान्ति के दिनों में भी असख्य नये कानून बने थे। अब उन विभिन्न कानूनों के स्थान पर समस्त देश के लिये समान, सरल, स्पष्ट क़ानून बन गया। इस सहिता मे कोई बात नवीन नहीं थी। वह राजाओं के बनाए हुए तथा क्रान्तिकाल में निर्मित कानूनों का मिश्रण था।§ उससे पुरातन व्यवस्था के अनेक दोष दूर होगये और क्रान्ति के समय में जनता को जो सामाजिक लाभ प्राप्त हुए थे वे कायम रहे। इस विधान-संहिता का आधार सामाजिक समता

* Fisher : Bonapartism, p. 45, 53.

† Fisher : Bonapartism, p. 54.

§ Cambridge Modern History, Vol IX, p. 179.

थी। यह संहिता नेपोलियन-सहिता (Code Napoleon) के नाम से प्रसिद्ध है। फ्रान्स में शीघ्र ही यह नया कानून-संग्रह लागू हो गया और बाद मे जिन देशों को फ्रान्स ने विजय कर लिया था उनमें भी वह लागू कर दिया गया। आज भी योरोपीय देशों के कानूनों का मुख्य आधार यही सहिता है।†

शिक्षा—

राज्य की स्थिरता के लिये शिक्षा के महत्व को नेपोलियन खूब समझता था। उसने शिक्षा का पुनः संगठन किया। सारे देश के लिये एक विश्वविद्यालय स्थापित किया गया, जिसके समस्त कर्मचारी नेपोलियन द्वारा नियुक्त थे। देश की समस्त प्रकार की शिक्षा—प्रारम्भिक, माध्यमिक, उच्च, व्यावसायिक आदि—का नियमन एवं नियन्त्रण इसी विश्वविद्यालय को सौंपा गया।

इन सुधारों के अतिरिक्त उसने अन्य सुधार भी किये। देश के व्यवसाय तथा व्यापार की उन्नति की ओर भी उसने ध्यान दिया, सड़कों का निर्माण हुआ, नहरें बनाई गईं, बन्दरगाह साफ किये गये और उनका विस्तार किया गया। देश की आर्थिक उन्नति बड़ी शीघ्र होने लगी।

पुरातन व्यवस्था तथा क्रान्ति का सम्मिश्रण—

नेपोलियन के सुधारों मे हमें पुरातन व्यवस्था तथा क्रान्ति का साम्मिश्रण दिखलाई देता है और उसकी उक्तियाँ—'मैं ही क्रान्ति हूँ' और 'मैंने क्रान्ति का नाश कर दिया है'—की आंशिक यथार्थता प्रकट होती है। उसने सुधार किये थे उन सबका आधार अनुभव था, कोरे सिद्धान्त नहीं। राजनीतिक क्षेत्र में उसने कई बातों मे पुरातन व्यवस्था को पुन. प्रतिष्ठित कर दिया। उसने समस्त शासन-सूत्रों को अपने हाथ मे लेकर एक अत्यन्त केन्द्रित शासन स्थापित किया और स्थानीय शासन का पुराने ढंग पर फिर से सगठन करके जनता की

† नेपोलियन की विधान-संहिता मे ६ भिन्न-भिन्न सग्रह थे। उनमे से केवल सिविल कोड कॉन्स्युलेट के समय में बना था और इसी कारण वह अन्य सग्रहों की अपेक्षा क्रान्ति-युग की कानून की भावना के अधिक निकट है। उसमें पुरातन व्यवस्था के समय के कानूनों तथा क्रान्ति-युग के कानूनों का बड़ा अच्छा समन्वय है। अन्य संग्रह साम्राज्य के समय मे बने थे और वे अधिकांश में कुछ संशोधन के साथ राजाओं के पुराने अध्यादेशों की पुनरावृत्ति मात्र हैं (Fisher : Bonapartism, p. 64)। हमने यहाँ सुविधा की दृष्टि से नेपोलियन के समस्त सुधारों का एक साथ विवरण दे दिया है। वे सभी कॉन्स्युलेट के समय के नहीं है।

राजनीतिक स्वतन्त्रता छीन ली। जनता को उसने अन्य प्रकार की सभी स्वतत्रताओं से भी वंचित कर दिया क्योंकि वह स्वतन्त्रता को खतरनाक समझता था। स्वतन्त्रता के समान उसने राष्ट्रीयता के सिद्धान्त की भी उपेक्षा की और अन्य देशों के साथ व्यवहार करने मे उसने अपने आपको राष्ट्रीयता का शत्रु प्रमाणित किया। इस प्रकार गृह्य नीति की कई बातों में तथा विदेशी नीति में उसने बूर्बो एकतंत्र का ही रवैया जारी रखा। पुराने राजाओं के समान उसने भी साहित्य, कला आदि को प्रोत्साहन दिया और नई उपाधियों से सुसज्जित एक नवीन कुलीन वर्ग का निर्माण किया। उनके समान फ्रेन्च साम्राज्य को भी उसने पुनः स्थापित करना चाहा। उसने स्पेन से लुइसाना ले लिया और हेटी द्वीप के विद्रोह का दमन करने के लिये सेना भेजी। परन्तु विद्रोह न दबा और १८०३ में इंगलैण्ड से युद्ध छिड़ने से पहले उसने लुइसाना भी अमेरिका के सयुक्त राष्ट्र को वेच दिया। परन्तु सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्र में उसने क्रान्ति के परिणामों को सुरक्षित रखकर तथा धार्मिक क्षेत्र में क्रान्ति के कारण जो दुर्बलता उत्पन्न हो गई थी उसे दूर कर क्रान्ति को मजबूत भी किया। उसने कानून के सामने तथा सामाजिक एव आर्थिक क्षेत्र में समानता के सिद्धान्त को क़ायम रखा, सामन्तवाद, विशेषाधिकार आदि पुरातन व्यवस्था से दूषणों को पुनर्जीवित नहीं किया और जो भूमि लोगों को चर्च तथा कुलीनों से प्राप्त हुई थी उससे उनको वञ्चित नहीं किया।

इस प्रकार नेपोलियन एक साथ क्रान्ति का मित्र तथा उसका शत्रु दोनों ही था। इस कार्य में वह जनता की इच्छाओं का सच्चा प्रतिनिधि था। अपनी विदेशी नीति के फल-स्वरूप उसने फ्रान्स का गौरव बढाया और देश के अन्दर व्यवस्था एव शान्ति स्थापित की। जनता यही दोनों बाते चाहती थी। यही कारण है कि उसने राजनीतिक स्वतन्त्रता छीनने का, जिसे वास्तव मे वह नहीं चाहती थी, उसका अपराध क्षमा कर दिया और वह फ्रान्स का हृदय-सम्राट् बन गया। इतना भारी काम इतनी जल्दी इतिहास मे कभी नहीं हुआ। उसने शासन के प्रत्येक विभाग मे व्यवस्था स्थापित की। उसकी संस्थाओं का अधिकांश आज तक विद्यमान् है। इस कथन मे कोई अत्युक्ति नहीं है कि नेपोलियन ही वर्तमान फ्रान्स का निर्माता था।[६]

नेपोलियन की हत्या के प्रयत्न—

वह फ्रान्स का हृदय-सम्राट् तो बन गया था परन्तु उसके उत्कर्ष ने जिन

---

[६] Cambridge Modern History, Vol. IX, p. 33.

लोगों के हितों को क्षति पहुंची थी वे उसके शत्रु बन गये। दो बार शत्रुओं ने उसकी हत्या करने का प्रयास भी किया। १८०० में उसके ऊपर एक बम फेंका गया जिससे बीस व्यक्ति मारे गये परन्तु वह बाल बाल बच गया। यह प्रयास बूर्बों वश के समर्थकों का था परन्तु वह उनकी अपेक्षा जकोबें लोगों से अधिक डरता था। अतः उसने बूर्बों वंश के समर्थकों को छोड़ कर जकोबें लोगों को दण्ड दिया और कई को देश से निर्वासित कर दिया।

इससे भी अधिक भयंकर षड्यंत्र उसके विरुद्ध लन्दन में आर्तुआ के काउण्ट द्वारा रचा जा रहा था।* उसमें जॉर्ज कदूदाल (Cadoudal), पिश्ग्रू (Pichegru) तथा मोरो सम्मिलत थे। नेपोलियन को पुलिस के द्वारा इसका पता लग गया था परन्तु इस आशा में कि इस प्रकार आर्तुआ का काउण्ट पजे में फस जायगा, उसने साजिश बढने दी। किन्तु जब काउण्ट फ्रान्स नहीं आया तो उसके साथी पकड़ लिये गये। पिश्ग्रू को जेल में ही किसी ने गला घोंट कर मार डाला। मोरो दो वर्ष के कारावास के बाद निर्वासित कर दिया गया और कदूदाल तथा उसके अन्य साथियों को मृत्युदण्ड मिला। जब आर्तुआ का काउण्ट किसी प्रकार नहीं फसा तो उसने बूर्बों वश के एक निरपराध व्यक्ति आँगिआँ के ड्यूक (Duke d' Enghien) को जो जर्मनी मे रह रहा था, धोखे से पकड़वा मगाया और उस पर मुक़दमा चलाने का ढोंग रचकर उसे मृत्युदण्ड दे दिया (मार्च १८०४)। ड्यूक बिलकुल निरपराध था। नेपोलियन ने भी इस बात को बाद मे स्वीकार किया था परन्तु बूर्बों वश के समर्थकों को शिक्षा देने के लिये उसने जानबूझ कर यह जघन्य अत्याचार किया।† उसका उद्देश्य भी सिद्ध हो गया क्योंकि इसके बाद उन्होंने उसके विरुद्ध कोई

---

* षड्यंत्रकारी बूर्बोंवशीय सरदारों की नौकरी में थे और उन्हें इङ्गलैंड की सरकार से आर्थिक सहायता मिल रही थी। Madelin · The Consulate and the Empire . Vol. I, p. 203

† ड्यूक को बचाने के लिये अनेक प्रयत्न किये गये थे। स्वयं जोजेफाइन ने नेपोलियन के पैरों पर गिर कर ड्यूक को क्षमा कर देने का अनुरोध किया था और उसकी बहिन केरोलिन म्यूरा ने भी दया की प्रार्थना की थी। शायद नेपोलियन उसे क्षमा कर देना चाहता था परन्तु उसके एक कर्मचारी सेवेरो ने शीघ्रता की और कोर्ट मार्शल के निर्णय के बाद तुरन्त ही उसे गोली से उड़वा दिया। नेपोलियन ने इस पर कुछ नहीं कहा। Madelin . The Consulate and the Empire Vol. I, pp. 208-209.

षड्यन्त्र नहीं किया। किन्तु यह हत्या एक महान् राजनीतिक ग़लती थी। इसका उस पर विपरीत प्रभाव पड़ा। रूस के राजदरबार में मातम मनाया गया; प्रशा का राजा जो अब फ़्रान्स से सन्धि करने के तैयार हो गया था रूस से सन्धि की बातचीत करने लगा। आस्ट्रिया को भी बुरा लगा और इंगलैण्ड ने इस हत्या से उत्पन्न त्रास का फ़्रान्स के विरुद्ध नया गुट बनाने में लाभ उठाया।*

नेपोलियन—फ़्रान्स का सम्राट्—

इस प्रकार उसने बूर्बों वश के समर्थकों तथा जकोवें लोगों का दमन कर दिया। गणतंत्रीय विचारों के लोग अभी मौजूद थे परन्तु इनकी उसे बिलकुल परवाह नहीं थी। अब निश्शंक होकर अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्ति की ओर उसने एक महत्वपूर्ण कदम उठाया। १८०२ में उसने अपने प्रथम कॉन्सल के पद की अवधि को दस-वर्षीय से बढ़ा कर आजीवन करवा ली थी और अपने उत्तराधिकारी को नियुक्त करने का अधिकार भी उसे मिल गया था। अब वह वस्तुतः सम्राट् था परन्तु विधान तो अभी कहने को गणतंत्रीय था। उसने यह गणतंत्रीय आवरण भी शीघ्र ही उतार कर फेंक दिया। १८०४ में उसकी प्रेरणा से सीनेट ने उसे सम्राट् घोषित कर दिया और देश के विशाल जनमत ने भी उसका समर्थन किया। २ सितम्बर १८०४ को उसका राज्याभिषेक हुआ। गणतंत्र का अन्त हो गया। क्रान्ति की विधिवत् अन्त्येष्टि हो गई और फ़्रान्स में सम्राट् नेपोलियन का स्वेच्छाचारी एकतंत्र आरंभ हुआ।

क्रान्ति की देन—

नेपोलियन के उदय के साथ क्रान्ति का अस्त हो गया परन्तु जैसा हम ऊपर देख चुके हैं वह स्वयं 'क्रान्ति का पुत्र' था और उसने क्रान्ति के कुछ सिद्धान्तों की उपेक्षा करते हुए भी उसके एक सिद्धान्त—समता—का आदर किया था क्योंकि वह स्वयं इसी के आधार पर आगे बढ़ा था। उसने स्वतंत्रता, जनता के प्रभुत्व आदि सिद्धान्तों को कुचल डाला। परन्तु क्या वास्तव में ये सिद्धान्त कुचले जा सके या कुचले जा सकते थे?

क्रान्ति का नारा था—'स्वतंत्रता, समानता, बन्धुत्व'। क्रान्तिकारियों का चरम लक्ष्य था समाज में इनकी स्थापना करना। इन तीनों शब्दों की सही-सही व्याख्या करना कठिन है। ज्यों-ज्यों क्रान्ति आगे बढ़ती गई त्यों-त्यों इनके अर्थ में भी व्यापकता आती गई और अब भी यह क्रम चल रहा है।

---

* Stephens : Revolutionary Europe, pp. 235-236.

आरम्भ में स्वतन्त्रता का अर्थ फ्रान्सवासियों के लिये राज्य के कामों से व्यक्ति की सुरक्षा था; समानता का अर्थ वे समझते थे कानून के सामने अधिकारों की समानता तथा विशेषाधिकार का अभाव; बन्धुत्व का अर्थ कुछ-कुछ भाईचारे जैसा था जैसा क्रान्ति के आरम्भ में कुलीनों और किसानों के परस्पर मिलने जुलने में प्रकट होता था।

ये तीनों सिद्धान्त क्रान्ति की अमर देन हैं। अब भी संसार के लिये वे आदर्श बने हुए हैं। स्वतन्त्रता में कुछ राजनीतिक आदर्श उपलक्षित है—शासन दैवी अधिकार से स्वेच्छाचारपूर्वक नहीं परन्तु प्रजा की सार्वभौम इच्छा से विधान के अनुकूल होना चाहिये, व्यक्ति राजा के हाथ में कठपुतली की तरह नहीं होना चाहिये; उसकी कुछ व्यक्तिगत स्वतन्त्रताएँ सुनिश्चित होनी चाहिये जिसमें राज्य कोई कमी नहीं कर सकता, जैसे धर्म, भाषण, लेखन, प्रकाशन, सम्पत्ति आदि की स्वतंत्रता।

इसी सिद्धान्त के अन्तर्गत जनता के प्रभुत्व का सिद्धान्त भी सम्मिलित है जिसका अर्थ है कि शासन शासक की इच्छा के अनुकूल तथा उसके हित में नहीं वरन् जनता के हित में, उसकी इच्छा के अनुकूल होना चाहिये। शासक की सत्ता तथा उसके अधिकार उसे जनता से प्राप्त हैं।

समानता से तात्पर्य क्रान्ति के सामाजिक सिद्धान्तों—सामन्तवाद, अर्ध-दास पद्धति तथा विशेषाधिकार—के अन्त में और कानून के सामने सबके साथ एकसा व्यवहार से था। कानून के सामने अधिकारों की समानता के साथ ही इसका अर्थ है प्रत्येक व्यक्ति के जीवन तथा सुख की वृद्धि के लिये समान सुयोग तथा पक्षपात का अभाव।

बन्धुत्व का अर्थ है मनुष्य मात्र में बन्धुत्व की भावना, जातीय भेद, रागद्वेष आदि का अभाव और समस्त संसार के कल्याण की कामना। क्रान्ति के समय यह भावना राष्ट्रीयता तथा राष्ट्रभक्ति के रूप में प्रस्फुटित हुई और उसने फ्रान्स के निवासियों को अपने राष्ट्र की रक्षा तथा उसके गौरव के लिये अपने प्राण अर्पण करने के लिये प्रोत्साहित किया।

क्रान्ति के दिनों में तथा आगे नेपोलियन के समय में समस्त योरोप में इन आदर्शों का प्रसार हुआ। आगे चलकर इनके दमन के भी बड़े प्रयत्न हुए किन्तु अन्त में इनको दमन करने के सभी प्रयत्न विफल हुए। राजनीतिक स्वतन्त्रता,

सामाजिक समानता, तथा राष्ट्रभक्ति के आदर्श फ्रेन्च क्रान्ति की ऐसी देन हैं जिसको आज भी ससार पूजा करता है और जिससे प्रेरणा प्राप्त करता है।*

---

* Hayes : A Political and Cultural History of Europe, Vol. 1, pp. 645-646.

अध्याय १०

सम्राट् नेपोलियन

उत्कर्ष (१८०४—१८०७)

सन्धि-काल में नेपोलियन के कार्य—

जिस समय नेपोलियन सम्राट् बना उसके पहले ही (मई १८०३) इङ्गलैंड से युद्ध छिड़ गया था। आमियाँ की सन्धि केवल १५ महीनों तक रही। सन्धि करने में नेपोलियन का उद्देश्य ही अपनी योजनाओं को पूर्ण करने के लिये अवकाश प्राप्त करना था। सन्धि हो जाने के बाद तुरन्त ही उसने देश के अन्दर अपनी सत्ता बढाने और देश के बाहर फ्रान्स का साम्राज्य बढाने का कार्य शुरू कर दिया था। देश के अन्दर उसने अपनी सत्ता का विस्तार किस प्रकार किया वह हम देख चुके हैं। फ्रान्स के बाहर उसने बड़ी शीघ्रता से अपने अधिकार का विस्तार किया। सन्धि के पहले ही उसने बेटावियन रिपब्लिक का विधान बदल दिया था और उसके किलों में फ्रेंच सेनाएँ रख कर उस पर वस्तुतः अपना अधिकार स्थापित कर लिया था। उधर उत्तरी इटली में सिसएल्पाइन रिपब्लिक का नाम इटालिन रिपब्लिक कर दिया गया था और नेपोलियन स्वयं वहाँ का प्रेसिडेण्ट बन गया था। सन्धि के बाद इटली में उसने बड़े परिवर्तन कर दिये थे। जिनोआ का भी विधान बदल कर वह स्वयं प्रमुख बन गया। पायडमॉण्ट तथा पार्मा फ्रान्स में सम्मिलित कर लिये गये। स्विट्ज़रलैण्ड के गृह-कलह से लाभ उठा कर वह जबरदस्ती मध्यस्थ बन कर वहाँ का सर्वेसर्वा बन गया।

इंगलैण्ड से तनातनी—

इन सब बातों से इङ्गलैण्ड सशंक हो रहा था। उनमें से जो बात उसे सबसे अधिक अखरती थी वह थी हॉलैण्ड तथा बेल्जियम पर उसका अधिकार। इसके साथ ही नेपोलियन अपने बेड़े की उन्नति कर रहा था और फ्रेञ्च साम्राज्य कायम करने का प्रयत्न कर रहा था। उसने पूर्व की तरफ भी अपना ध्यान दिया और दो मिशन रवाना किये। एक मिशन तो टीपू से मिल कर भारतवर्ष में गड़बड़ करने के उद्देश्य से भेजा गया और दूसरा पूर्वीय भूमध्यसागर को

गया जिसके नेता कर्नल सिवेस्टियानी ने इजिप्ट, सीरिया, आयोनियन द्वीपों आदि का दौरा करके अपनी रिपोर्ट पेश की और ईजिप्ट को पुनः विजय करने की सलाह दी। ये सब बातें इंगलैण्ड के लिये असह्य थीं। उसने भावी युद्ध की आवश्यकताओं की दृष्टि से माल्टा खाली करने से इन्कार कर दिया। इस पर नेपोलियन ने इङ्गलैण्ड पर सन्धि भंग करने का दोष लगाया। इंगलैंण्ड ने भारतवर्ष में स्थित फ़्रेञ्च बस्तियाँ भी नहीं लौटाई थीं। इसके साथ ही नेपोलियन की शिकायत थी कि इगलैण्ड बूर्बो वंश के लोगों तथा अन्य प्रवासी कुलीनों को शरण दिये हुए था और वहाँ के समाचारपत्रों मे नेपोलियन की निन्दा की जाती थी।

इंगलैण्ड को भी कई शिकायतें थीं। उसने नेपोलियन पर आयर्लैण्ड में असन्तोष भड़काने, ब्रिटिश बन्दरगाहों में फ्रेञ्च जासूसों की उपस्थिति, फ़्रेञ्च समाचारपत्रों में ब्रिटिश राजनीतिज्ञों पर निन्दात्मक आक्रमण, फ़्रान्स, स्पेन, हॉलैण्ड तथा इटली में अंग्रेज़ी व्यापार पर रुकावट तथा इंगलैण्ड से व्यापारिक सन्धि करने से इन्कार करने आदि के अनेक दोष लगाये। उसकी यह भी शिकायत थी कि सन्धि होजाने पर भी नेपोलियन की नीति में परिवर्तन नहीं हुआ था और साम्राज्य-विस्तार के उसके प्रयत्न अब भी वैसे ही चल रहे थे जैसे युद्धकाल में।

युद्ध का आरम्भ—

इगलैण्ड ने नेपोलियन को हॉलैण्ड तथा स्विट्जरलैण्ड खाली करने और पायडमॉण्ट को फ़्रान्स में सम्मिलित करने के बदले में सार्डिनिया के राजा को हर्जाना देने के लिये कहा और यह आग्रह किया कि माल्टा दस वर्षों तक इंगलैण्ड के पास ही बना रहे और ट्यूनिस के तट के निकट लेम्पेडयूसा के द्वीप पर इगलैण्ड को अधिकार कर लेने दिया जाय। नेपोलियन ने इन मागों को स्वीकार नही किया और इगलैण्ड ने १८ मई १८०३ को फ़्रान्स के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। *

इंगलैण्ड की युद्ध-नीति—

इंगलैण्ड ने युद्ध की घोषणा तो कर दी परन्तु वह अकेला था। प्रथम और द्वितीय गुट के उसके साथियों में से कोई उसका साथ देने को तैयार नही

---

* नेपोलियन युद्ध छेड़ना नहीं चाहता था और वह अन्त तक युद्ध रोकने का प्रयत्न करता रहा परन्तु इंगलैण्ड ने उसके प्रस्तावों पर ध्यान नहीं दिया और युद्ध छेड़ दिया। Madelin : The Consulate and the Empire, Vol. I, pp. 182-186

था। प्रशा वासिल की सन्धि के बाद से ही तटस्थ था। ऑस्ट्रिया थका हुआ था। रूस का जार नेपोलियन का मित्र था। स्पेन दबा हुआ था। हॉलैण्ड मे फ्रान्स की सेना पड़ी हुई थी। अतः इंगलैण्ड ने अपना लक्ष्य अपनी रक्षा, फ्रान्स के उपनिवेशों की विजय तथा फ्रेन्च बन्दरगाहों की नाकाबन्दी तक ही सीमित रखा। युद्ध छेड़ते ही उसने पश्चिमी इण्डीज पर आक्रमण करके टोबेगो, सेंट लूसिया तथा ग्याना ले लिये। भारतवर्ष में लॉर्ड वेलेजली ने फ्रान्स के हस्तक्षेप को रोकने का प्रयत्न किया।

नेपोलियन ने बासिल की सन्धि का भंग करके हेनोवर के राज्य पर अधिकार कर लिया जिस पर इंगलैण्ड के राजा का अधिकार था और उसके बन्दरगाह इंगलैण्ड के व्यापार के लिये बन्द कर दिये। इससे प्रशा को बहुत बुरा मालूम हुआ परन्तु फिर भी उसने इसका विरोध नहीं किया। नेपोलियन ने नेपिल्स में भी फ्रेन्च सेना रख दी।

अभी तक रूस और ऑस्ट्रिया चुप थे परन्तु नेपोलियन के अनेक कार्यों से उन्हें परेशानी हो रही थी। नेपोलियन ने ऑगियाँ के ड्यूक की हत्या करवाई थी, सम्राट् की पदवी धारण करली थी, इटालियन रिपब्लिक का विधान बदल कर उसे इटली का राज्य बना दिया था और वह स्वयं उसका राजा बन गया था (मई, १८०५)। इन सब बातों से वे नाराज हो रहे थे। उधर इंगलैंड में पिट फिर प्रधान मंत्री बन गया था। उसने इन दोनों राज्यों के असन्तोष से लाभ उठाकर फ्रान्स के विरुद्ध तृतीय गुट बनाया जिसमें स्वीडन भी सम्मिलित हो गया।

इंगलैण्ड पर आक्रमण की योजना-ट्रेफलगर—

उधर नेपोलियन इंगलैण्ड पर आक्रमण करने की तैयारी कर रहा था। उसने बोलोन में एक सेना एकत्रित की और उस पर आक्रमण करने के लिये एक योजना बनाई। इंगलैण्ड पर आक्रमण करने के लिये एक अच्छे बेड़े की आवश्यकता थी जो इंगलिश चैनल को पार करनेवाली फ्रेन्च सेना की रक्षा कर सकती। फ्रेन्च बेड़ा तीन स्थानों—ब्रेस्ट, रोशफोर तथा तूलों—में विभक्त था। वह चाहता था कि इन तीनों स्थानों से बेड़ा स्पेनिश बेडे को अपने साथ लेकर एक साथ इंगलिश चैनल में पहुँच जाय और अपनी रक्षा मे फ्रेन्च सेनाओं को इगलैंण्ड मे उतार दे। परन्तु अंग्रेजी बेड़ा सतर्क था और उसने तीनो बन्दरगाहों की चौकसी का प्रबन्ध कर रखा था। कुछ दूर तक तो
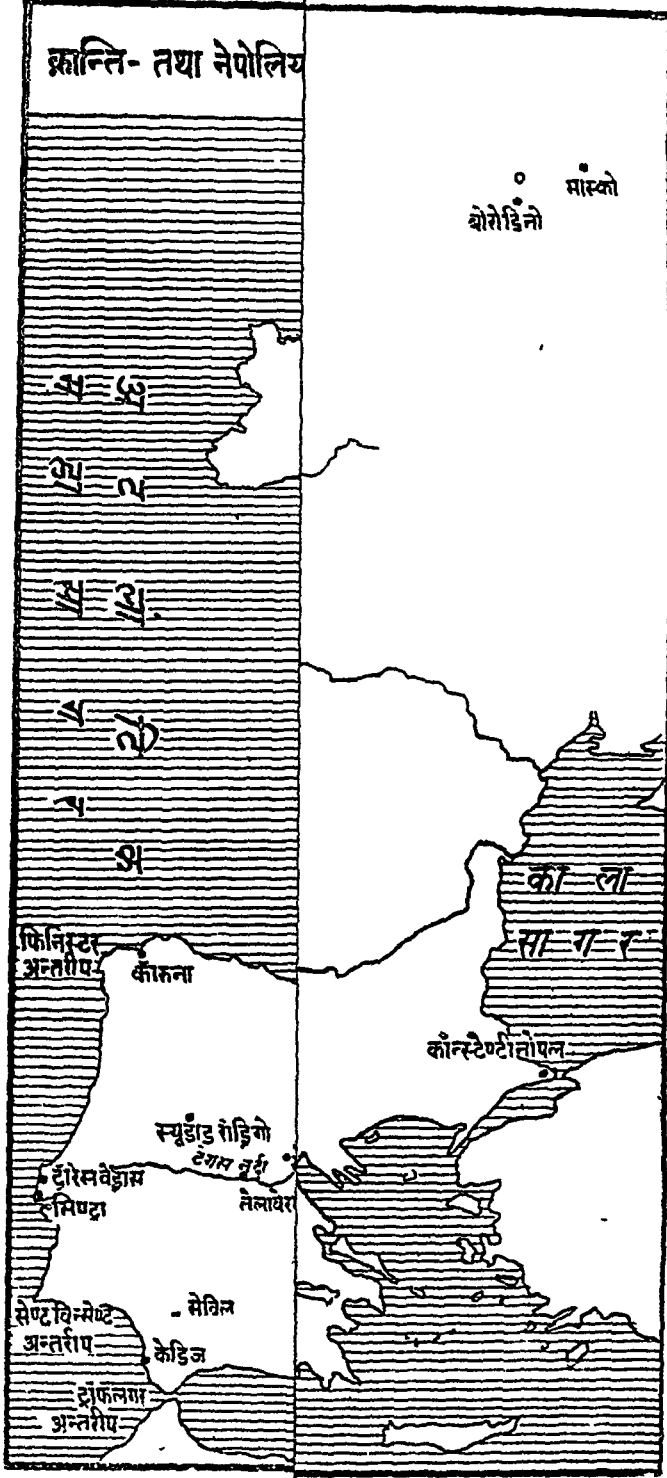
नेपोलियन की योजना सफल हुई परन्तु नेल्सन ने २१ अक्टूबर १८०५ को ट्रेफलगर के युद्ध मे फ्रान्स तथा स्पेन के सम्मिलित बेड़े को परास्त कर के उसे विफल कर दिया। नेल्सन इस युद्ध मे मारा गया परन्तु वह इंगलैण्ड की रक्षा कर गया। इस युद्ध मे फ्रान्स और स्पेन के बेड़े नष्ट हो गये और उसके फल-स्वरूप समुद्र पर इंगलैण्ड का मुकाबला करने वाला कोई नहीं रहा। नेपोलियन को विश्वास हो गया कि इंगलैण्ड पर सीधा आक्रमण नहीं हो सकता।

ऑस्ट्रिया की पराजय—

इस युद्ध के पहले ही तृतीय गुट के निर्माण की सूचना पाकर नेपोलियन ने अपनी योजना बदल दी थी और बोलोन की विशाल सेना लेकर ऑस्ट्रिया के विरुद्ध कूच कर दिया था। वह डेन्यूब नदी के निकट पहुँच गया, और उसने ऑस्ट्रिया की सेना को उल्म (Ulm) नामक स्थान पर घेर लिया। ऑस्ट्रिया के कमाण्डर मेक (Mack) को हथियार डाल देने पड़े (२० अक्टूबर)। वियना का रास्ता साफ होगया और १३ नवम्बर को म्यूरा के नेतृत्व मे फ्रेञ्च सेना वियना में घुस गई। उधर नेपोलियन ने आगे बढ़कर मोरेविया के मैदान में ऑस्टरलित्स (Austerlitz) के स्थान पर सम्राट् फ्रान्सिस और रूस के ज़ार एलेक्जेण्डर को परास्त कर दिया (२ दिसम्बर १८०५)। यह लड़ाई तीन सम्राटों की लड़ाई भी कहलाती है।

प्रशा से सन्धि—

प्रशा अभी तक चुपचाप बैठा था परन्तु जर्मनी में आगे बढने में नेपोलियन अपनी सेनाओं को उसके राज्य मे से होकर ले गया था। प्रशा का राजा तृतीय फ्रेडरिक विलियम फिर भी कुछ नहीं करना चाहता था, किन्तु उसकी रानी, विदेशमंत्री हार्डेनबर्ग तथा सेना का अफ़सर ब्लूशर इस अपमान को नही सहन कर सके। उन्होंने उस पर जोर डाला। ज़ार एलेक्जेण्डर भी बर्लिन पहुँचा। अन्त में उसने युद्ध की धमकी दी परन्तु इसके पहले ही ऑस्टलित्स की लड़ाई समाप्त हो चुकी थी। फ्रेडरिक विलियम ने डर कर शॉनब्रुन (Schonbrun) के स्थान पर सन्धि कर ली (१५ दिसम्बर) जिसके अनुसार नेपोलियन ने उसे हेनोवर दे दिया और उसने अपने बन्दरगाहों को इंगलैण्ड के जहाज़ों के लिये बन्द करने का वचन दिया। प्रशा ने इंगलैण्ड को हेनोवर की स्वतन्त्रता बनाये रखने का वचन दिया था, परन्तु वह अपने राज्य के विस्तार के लोभ का संवरण नहीं कर सका। नेपोलियन बड़ा चतुर

था। उसने इस प्रकार प्रशा के देशभक्त दल को सन्तुष्ट कर दिया और साथ ही उसे इंगलैण्ड का कट्टर शत्रु बना दिया।

ऑस्ट्रिया के साथ प्रेसबुर्ग की सन्धि—

ऑस्ट्रिया के साथ २६ दिसम्बर १८०५ को प्रेसबुर्ग की सन्धि हुई। अभी तक नेपोलियन ने ऑस्ट्रिया के साथ नरमी का व्यवहार किया था, परन्तु वह देख रहा था कि उसके विरुद्ध जितने भी गुट बने उनका केन्द्र ऑस्ट्रिया ही बनता था। अतः उसने इस बार उसे कुचलने का निश्चय किया। ऑस्ट्रिया को वेनेशिया, इस्ट्रिया तथा डेलमेशिया 'इटली के राज्य' के सुपुर्द कर देना पड़े, और नेपोलियन को उसका राजा स्वीकार करना पड़ा। बेवेरिया तथा वुर्टेमबुर्ग इस युद्ध में नेपोलियन के साथ शामिल हो गये थे। उसके बदले में नेपोलियन ने बेवेरिया के शासक की पदवी में उन्नति करके उसे बेवेरिया का राजा बना दिया और ऑस्ट्रिया से उसको टिरोल का प्रान्त दिलवाया। वुर्टेमबुर्ग भी एक राज्य बना दिया गया और उसे तथा बेडन को ऑस्ट्रिया से उसके राज्य के पश्चिमी भाग मिले। इस सन्धि से ऑस्ट्रिया की बड़ी हानि हुई। उसके राज्य का बहुत बड़ा भाग निकल गया। इटली, स्विट्जरलैण्ड तथा राइन से वह दूर पड़ गया और उसका महत्व बहुत कम हो गया।

जर्मनी का पुनर्निर्माण—

नेपोलियन ने इस अवसर का उपयोग केवल ऑस्ट्रिया को कुचलने में ही नहीं किया। उसने बूर्बों राजाओं की महत्वाकांक्षा को भी जिसे रिशल्यू, मज़ारें तथा चौदहवाँ लुई भी पूरी नहीं कर सके थे पूरा किया, और जर्मनी का पुनः सगठन करके पवित्र रोमन साम्राज्य का नाश कर दिया। इस दिशा में नेपोलियन ने बहुत पहले से कार्य आरम्भ कर दिया था। केम्पो फॉर्मियो तथा ल्यूनविल की सन्धि के अनुसार राइन नदी के पश्चिम की ओर के जो प्रदेश फ्रान्स को मिले थे उनके बदले में उनके शासकों को राइन के पूर्व की ओर के अनेक छोटे छोटे राजाओं के राज्य दे दिये गये थे और इस व्यवस्था के फल-स्वरूप अनेक छोटे छोटे राज्यों का अस्तित्व मिट चुका था। १७९२ में पवित्र रोमन साम्राज्य में ३६० राज्य थे परन्तु १८०५ तक उनमे से केवल ८२ राज्य रह गये थे।*

राइन का राज्य-संघ—

अब नेपोलियन ने इस कार्य को पूरा कर दिया। बेवेरिया तथा

* Hazen · Modern European History, p 206.

वुर्टेमबुर्ग डची (ड्यूक द्वारा शासित प्रदेश) से राज्य बना दिये गये। उन्होंने साम्राज्य से सम्बन्ध विच्छेद करके १४ अन्य राज्यों के साथ मिलकर 'राइन का राज्य-संघ' (Confederation of the Rhine) बना लिया और नेपोलियन को अपना संरक्षक मानकर अपनी विदेशी नीति उसके हाथों में सौंप दी और युद्ध के समय उसे सेना से सहायता देने का वचन दिया (१२ जुलाई १८०६)। इसके साथ ही इन सोलह राज्यों में और भी कई छोटे राज्य शामिल कर दिये गये।

पवित्र रोमन साम्राज्य का अन्त—

नेपोलियन ने ६ अगस्त १८०६ को 'पवित्र रोमन सम्राट्' का पद भी तोड़ दिया और जर्मन सम्राट् अब केवल ऑस्ट्रिया का सम्राट् रह गया। इस पुनः संगठन से नेपोलियन ने जर्मनी के एकीकरण की राजनीतिक समस्या को अनजाने ही बहुत कुछ सुलझा दिया। इसके साथ ही उसने ऑस्ट्रिया, प्रशा तथा रूस के मुकाबले में फ़्रान्स के संरक्षण में एक बड़ा राज्य खड़ा कर दिया।

नये राज्य—

इस प्रकार पूर्व की ओर जर्मनी में नेपोलियन ने एक अधीन राज्य स्थापित कर दिया। उत्तर की ओर हॉलैण्ड के गणतन्त्रीय विधान को समाप्त कर उसे एक राज्य बना दिया और उसके सिंहासन पर अपने भाई लुई बोनापार्ट को बिठा दिया। इसी प्रकार उसने नेपिल्स के बूर्बोवंशीय राजा को हटाकर अपने एक दूसरे भाई जोजेफ बोनापार्ट को नेपिल्स का राजा बना दिया। सिसएल्पाइन रिपब्लिक को उसने पहले ही एक राज्य बना दिया था और वह स्वयं उसका राजा बन गया था। इस प्रकार उसने फ़्रान्स की सीमा पर अनेक अधीन राज्य खड़े कर लिये। वह वास्तव में इस समय दूसरा शार्लमेन बन गया था। समस्त पश्चिमी योरोप उसके अधीन था।

प्रशा की पराजय—

ऑस्टर्लित्स की लड़ाई ने ट्रेफलगर का बदला चुका लिया और तृतीय गुट की रीढ तोड़ दी। ऑस्ट्रिया युद्ध से अलग हट गया परन्तु युद्ध बन्द नहीं हुआ। रूस मैदान से हट गया था परन्तु वह लड़ाई की तैयारी कर रहा था। ऑस्टर्लित्स की लड़ाई के धक्के से पिट का देहान्त होगया। उसके बाद फॉक्स इंगलैण्ड का प्रधान मंत्री बना। उसने फ़्रान्स से सन्धि की चर्चा आरम्भ की और नेपोलियन ने उसे हेनोवर लौटा देने का वचन दिया। परन्तु इससे प्रशा का राजा तृतीय फ़्रेडरिक विलियम बड़ा रुष्ट हुआ। क्रोध में आकर उसने

रूस से सन्धि कर ली और आगा पीछा सोचे विना नेपोलियन से युद्ध की घोषणा कर दी। रूस अभी तैयार नहीं था, ऑस्ट्रिया परास्त हो चुका था और इंगलैण्ड से भी सहायता नहीं मिल सकती थी। ऐसी दशा में अकेले युद्ध छेड़ देना बड़ी भूल थी। उसका तत्काल फल भी मिल गया। १४ अक्टूबर १८०६ को येना (Jena) तथा आवेरस्टाट (Auerstadt) की लड़ाइयों में प्रशा की सेनाएँ बुरी तरह परास्त हुईं। प्रशा के किले एक एक करके नेपोलियन के हाथ में आते गये और २५ अक्टूबर को नेपोलियन ने वर्लिन में प्रवेश किया।

रूस की पराजय—

प्रशा का भाग्य निर्णय करने के पहले वह रूस को समाप्त कर देना चाहता था। वह वार्सा गया और पोलेण्डवालों को अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिये उत्तेजित किया। हजारों पोल लोग उसकी सेना में भरती होगये। रूसी सेना बड़ी वीरता से लड़ी और आईलाउ (Eylau) की लड़ाई में नेपोलियन हारते हारते बचा। विजय किसी पक्ष की भी नहीं हुई (८, फर्वरी १८०७), परन्तु चार महीने वाद नेपोलियन ने फ्रीडलैण्ड (Friedland) के निकट रूसी सेना को परास्त कर दिया (१४ जून) और जार को सन्धि की प्रार्थना करनी पड़ी।

टिलसिट की सन्धि—

टिलसिट में नेपोलियन तथा जार परस्पर मिले। प्रशा के राजा रानी वहीं आ गये और सन्धि की वातचीत होने लगी। नेपोलियन ने जार पर मोहनी डाल दी और वह प्रत्येक बात में उससे सहमत हो गया। टिलसिट की सन्धि (७ जुलाई १८०७) से दोनों में सन्धि हो गई और नेपोलियन जो नये राज्य स्थापित कर रहा था उन्हें जार ने स्वीकार कर लिया। इसके अतिरिक्त दोनों में एक गुप्त सन्धि हुई जिसके द्वारा यह निर्णय हुआ कि इंगलैण्ड से सन्धि करने तथा समुद्र पर अपनी प्रधानता के दावे त्यागने के लिए कहा जाय और यदि वह न माने तो ज़ार फ्रान्स के साथ सहयोग करे और दोनों मिल कर डेनमार्क, स्वीडेन तथा पोर्तुगाल पर इंगलैण्ड से व्यापार वन्द करने तथा उसके विरुद्ध युद्ध छेड़ने के लिये दवाव डालें। इस सहायता के वदले में नेपोलियन ने रूस को स्वीडेन से फिनलैण्ड तथा तुर्की के राज्य का एक वड़ा भाग दिलवाने का वचन दिया। ज़ार कॉन्स्टेन्टिनोपल पर अधिकार करना चाहता था परन्तु नेपोलियन ने यह वात स्वीकार नहीं की।

प्रशा से सन्धि—

प्रशा के साथ जो सन्धि हुई उसकी शर्तों की भी घोषणा टिलसिट की सन्धि में की गई थी। उसके अनुसार प्रशा से एल्ब नदी के पश्चिम के सब प्रदेश ले लिये गये। उनका एक नया राज्य—वेस्टफेलिया का राज्य—बनाया गया और नेपोलियन का एक भाई जेरोम उसका राजा बनाया गया। पोलैण्ड का जितना भाग प्रशा के पास था वह ले लिया गया और उसमें ऑस्ट्रियन गेलिशिया का प्रदेश शामिल कर के एक नया राज्य—वार्सा की डची—बनाया गया। यह राज्य सेक्सनी के ड्यूक को दे दिया गया। वेस्टफेलिया, सेक्सनी तथा वार्सा की डची राइन के राज्य-संघ में शामिल कर दिये गये। नेपोलियन ने पोलैण्डवालों को स्वतन्त्रता की आशा दिलाई थी पर उसने अपना वचन पूरा नहीं किया। प्रशा से युद्ध का भारी हर्जाना लिया गया और उसे अपने बन्दरगाह इंगलैण्ड के व्यापार के लिये बन्द करने का वचन देना पड़ा। नेपोलियन ने जिन नये राज्यों का निर्माण किया था उन्हें भी उसे स्वीकार करना पड़ा। इस सन्धि के परिणाम-स्वरूप प्रशा का राज्य आधा रह गया।

टिलसिट की सन्धि ने नेपोलियन को उत्कर्ष की चरम सीमा पर पहुंचा दिया।* हम आगे देखेंगे कि इससे भी आगे पाँच वर्ष तक नेपोलियन नये नये प्रदेशों पर अधिकार जमाता रहा परन्तु उससे उसकी शक्ति में कोई वृद्धि नहीं हुई। इस समय वह फ्रान्स का सम्राट, इटली के राज्य का राजा, राइन के राज्य-संघ का संरक्षक तथा स्विट्ज़रलैण्ड के गणतंत्र (Helvetic Republic) का मध्यस्थ था। हॉलैण्ड, वेस्टफ़ेलिया तथा नेपिल्स के राज्यों में उसके भाई राजा थे। रूस मित्र था। ऑस्ट्रिया तथा प्रशा कुचले जा चुके थे।

इंगलैण्ड से व्यापारिक युद्ध—महाद्वीपीय अवरोध—

अब बड़ी शक्तियों में केवल इंगलैण्ड ही बचा था। वह देख चुका था कि इंगलैण्ड पर सीधा आक्रमण नहीं हो सकता था। यदि उसे इस प्रकार की कोई आशा कभी थी भी तो ट्रेफलगर के युद्ध में नेलसन ने उसे डुबो दिया था। अतः उसने उसे परास्त करने का एक परोक्ष उपाय निकाला जो इतिहास में 'महाद्वीपीय व्यवस्था' (Continental System) अथवा 'महाद्वीपीय अवरोध' (Continental Blockade) के नाम से प्रख्यात है। इसके द्वारा वह योरोप में इंगलैण्ड का व्यापार बन्द कर देना चाहता था। उसे निश्चय था कि यदि इंगलैण्ड का व्यापार नष्ट हो जाय तो वह अवश्य सन्धि करने को विवश

* Schevill: A History of Europe, p. 434

होगा। यह नीति वास्तव में राष्ट्रीय विधान-परिषद् (National Convention) तथा डाइरेक्टरी के समय में निर्धारित हो चुकी थी। नेपोलियन ने उस को परिपक्व करके बड़े ज़बरदस्त पैमाने पर उसका प्रयोग किया।* प्रशा को परास्त करने के बाद जब उसने बर्लिन में कुछ दिनों निवास किया था तभी इस योजना पर उसने 'बर्लिन के आदेश' (२१ नवम्बर १८०६) द्वारा कार्य आरंभ कर दिया था। इस आदेश के द्वारा उसने समस्त ब्रिटिश द्वीपों के अवरोध की घोषणा की और उसके साथ समस्त व्यापार का निषेध किया। फ़्रान्स में या उसके मित्र-देशों में जो अंग्रेज़ मिलें उन्हें कैद करने तथा उनके माल को ज़ब्त करने का आदेश दिया गया और फ़्रान्स तथा मित्र राज्यों के बन्दरगाहों में इंगलैण्ड अथवा उसके उपनिवेशों से आने वाले जहाजों का प्रवेश निषिद्ध घोषित किया गया। इस प्रकार उसने इंगलैण्ड के व्यापार के बहिष्कार का प्रयत्न शुरू किया।

इसका उत्तर इंगलैण्ड ने ऑर्डर्स-इन-कौंसिल (Orders-in-Council) द्वारा फ़्रॉन्स तथा उसके मित्र-राज्यों के बन्दरगाहों के अवरोध की घोषणा की और समस्त तटस्थ देशों को उनके साथ व्यापार करने से मना कर दिया और इस आदेश को न मानने वाले जहाजों को पकड़ लेने की धमकी दी।

इस योजना को सफल बनाने के लिये बर्लिन के आदेश के अतिरिक्त उसने वार्सा (२५ जनवरी १८०७), मिलान (१७ दिसम्बर १८०७) और फ़ॉनटेनब्लो (Fontainebleau, १८ अक्टूबर १८१०) से भी आदेश जारी किये। यह योजना बड़ी अच्छी थी परन्तु उसको सफल बनाने के लिये उसे कई ऐसे काम करने पड़े जिसके परिणाम बड़े शोचनीय हुए। हम देखेंगे कि इसके कारण रूस की मैत्री भंग हुई, इसी कारण उसे पोप से झगड़ा मोल लेना पड़ा और इसी कारण उसे पोर्तुगाल पर आक्रमण करना पड़ा जो उसे स्पेन के गर्त में खींच ले गया जहाँ उसके पतन का सूत्रपात हुआ।† इंगलैण्ड से यह नवीन प्रकार का युद्ध १८०७ से १८१४ तक चलता रहा। इस अवधि में अनेक घटनाएँ हुईं परन्तु वे सब उसी एक सूत्र में गुथी हुई थीं।

महाद्वीपीय योजना को सफल बनाने के प्रयत्न—

इस योजना की सफलता के लिये यह आवश्यक था कि महाद्वीप के किसी भाग से इंगलैण्ड व्यापार न कर सके। यदि किसी एक जगह से भी

* Hazen : Modern European History, p.215.

† Madelin : The Consulate and the Empire, Vol. I, p. 378.

इंगलैण्ड व्यापार कर सका तो सारी योजना व्यर्थ थी। अभी योरोप में कई ऐसे देश थे जो नेपोलियन के प्रभाव में नहीं थे। ऐसे देश थे स्वीडेन, डेनमार्क, स्पेन, पोर्तुगाल, पोप का राज्य, तुर्की और रूस। टिलसिट की सन्धि के अनुसार रूस ने नेपोलियन का इस योजना में साथ देने का वचन दिया था और इसी उद्देश्य से नेपोलियन भी फिनलैंड तथा तुर्की का बहुत सा प्रदेश रूस को दिलवाने का वचन दिया था। इसके साथ ही उन्होंने स्वीडेन, डेनमार्क तथा पोर्तुगाल पर इस योजना मे सम्मिलित होने के लिये दबाव डालने का निश्चय किया था।

डेन्मार्क—

परन्तु इंगलैण्ड सतर्क था। उसे टिलसिट की सन्धि की खबर मिल गई और उसके विदेश-मंत्री कैनिंग ने बड़ी फुर्ती से एक अंग्रेजी बेड़ा कोपेनहेगन भेजा और डेनमार्क की सरकार से अपने बेड़े को इंगलैण्ड के हवाले करने के लिये कहा क्योंकि उसके फ़ान्स के हाथों में पहुँच जाने का डर था। जब डेनमार्क की सरकार ने इन्कार किया तो ब्रिटिश बेड़ा डेन्मार्क के समस्त बेड़े को छीनकर इंगलैण्ड ले गया (सितम्बर १८०७)।

पोप—

नेपोलियन ने पोप को भी १८०६ में अपने बन्दरगाहों में अंग्रेज़ी जहाज़ों को न आने देने के लिये कहा था परन्तु उसने तटस्थता का बहाना लेकर इन्कार कर दिया था। पर नेपोलियन अपनी माँग पर अड़ा रहा और पोप के न मानने पर अप्रैल १८०८ में फ़्रेञ्च सेनाओं ने पोप के राज्य पर अधिकार कर लिया। एक वर्ष बाद वह फ़्रेञ्च साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया गया। नेपोलियन ने जितनी भूलें की उनमें से ऐसी कोई भूल नहीं थी जिसने इटली ही में क्या, समस्त केथोलिक संसार में उसकी सत्ता को इतना तीव्र धक्का पहुँचाया हो जितना पोप के अपमान की भूल ने।*

पोर्तुगाल—

पोप से झगड़ा बढ़ने के पहले ही उसने इंगलैण्ड को डेन्मार्क का उत्तर पोर्तुगाल मे देने का प्रयत्न किया। १८०४ में नेपोलियन ने पोर्तुगाल की प्रार्थना पर उसकी तटस्थता स्वीकार करली थी परन्तु अब पोर्तुगाल की तटस्थता उसकी योजना के लिये घातक थी। अतः उसने पोर्तुगाल से महाद्वीपीय योजना में सम्मिलित हो जाने को कहा और स्पेन से एक गुप्त सन्धि (अक्टूबर, १८०७)

---

* Fisher : A History of Europe, pp 847-48.

करके उसका आपस में विभाजन करने तथा उसका बेड़ा छीन लेने का निश्चय किया। जब पोर्तुगाल ने इस माँग को स्वीकार करने में कुछ आनाकानी की तो जूनो (Junot) के नेतृत्व में एक फ्रेञ्च सेना जो स्पेन की सीमा पर पहले से ही मौजूद थी, स्पेन की सेना के साथ पोर्तुगाल में घुस गई और उसने उस पर अधिकार कर लिया। परन्तु अंग्रेज सर्वत्र सतर्क थे। उनके बेड़े का एक भाग पास ही था। पोर्तुगाल का राजा अपने परिवार सहित अपना बेड़ा साथ लेकर अंग्रेजी बेड़े के सरक्षण म निकल भागा और ब्रेजिल पहुँच गया। किन्तु पोर्तुगाल फ्रान्स के अधिकार में बना रहा।

एक महत्वपूर्ण घटना—

पोर्तुगाल पर जो आक्रमण हुआ उसका स्वयं तो कोई विशेष महत्व नहीं था परन्तु उसके साथ 'योरोपीय इतिहास का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अध्याय' खुला। पोर्तुगाल का आक्रमण स्पेन पर होने वाले आक्रमण की भूमिका मात्र था। परन्तु स्पेन पर आक्रमण होने के साथ ही नेपोलियन को एक ऐसी शक्ति का मुकाबला करना पड़ा जिसके सामने उसे परास्त होना पड़ा। अभी तक नेपोलियन राजाओं एव शासनों से लड़ रहा था जो निर्बल थे। परन्तु अब उसे जनता—राष्ट्रीयता की शक्ति—से युद्ध करना था। टिलसिट की सन्धि साधारणतया नेपोलियन के चरमोत्कर्ष की परिचायक समझी जाती है परन्तु वास्तव मे उससे उसके पतन का श्रीगणेश होता है। ऊपर से देखने में उसकी सत्ता कभी उससे ज्यादा नहीं थी परन्तु पतन के बीज बोये जा चुके थे और फ़सल निश्चित थी।*

---

* Marriott. The Remaking of Modern Europe, p. 89.

अध्याय ११

राष्ट्रीय प्रतिक्रिया

पतन की ओर—स्पेन

स्पेन पर दाँत—

पोर्तुगाल की विजय के बाद स्पेन की बारी आई। बासिल की सन्धि (१७९५) के साथ स्पेन प्रथम गुट से अलग हो गया था और तभी से वह एक अधीन राज्य के समान फ़्रान्स के आदेशों का पालन कर रहा था। ट्रेफ़लगर के युद्ध में फ़्रान्स के बेड़े की सहायता स्पेन का बेड़ा भी कर रहा था। परन्तु नेपोलियन सन्तुष्ट नहीं था। स्पेन का राजा चतुर्थ चार्ल्स बूर्बों वंश का था। फ़्रान्स में बूर्बों वंश नष्ट किया जा चुका था। नेपोलियन ने नेपिल्स से भी उस वंश को निकाल दिया था। अब वह स्पेन से भी इस काँटे को निकाल देना चाहता था।

पोर्तुगाल में जूनो को सहायता भेजने के बहाने से उसने स्पेन मे अपनी सेना भेजना शुरू किया। वहाँ चतुर्थ चार्ल्स तथा उसके लड़के फ़र्डिनेण्ड में कुछ झगड़ा चल रहा था। नेपोलियन ने उन दोनों को दक्षिणी फ़्रान्स में बेयोन (Bayonne) पहुँचने का निमन्त्रण दिया और वहाँ दोनों को धमका कर उनसे राजगद्दी से त्यागपत्र लिखवा लिया। इसके बाद उसने स्पेन की राजगद्दी अपने भाई नेपिल्स के राजा जोजेफ़ को दे दी (जुलाई १८०८)। नेपिल्स का राज्य नेपोलियन ने अपने बहनोई म्यूरा को दे दिया।

महान् भूल—

यह नेपोलियन की बड़ी ज़बरदस्त भूल थी। बाद मे उसने भी इस बात को स्वीकार किया था। स्पेन की जनता नेपोलियन के इस अत्याचार को न सह सकी। अभी तक स्पेन के लोग बड़े विभक्त थे परन्तु इस अत्याचार ने उन्हें एक कर दिया और सारा राष्ट्र नेपोलियन के विरुद्ध उठ खड़ा हुआ। स्थान-स्थान पर लोगों ने प्रबन्ध-समितियाँ स्थापित करना और सेना एकत्रित करना आरंभ किया। कैथोलिक पादरियों ने भी पोप के शत्रु के विनाश का अच्छा अवसर देखकर जनता को उत्तेजित करना शुरू किया। स्पेनिश राष्ट्र का नेपोलियन की सेनाओं से युद्ध आरंभ हो गया।

आयद्वीपीय युद्ध का आरंभ—

आरंभ में ही फ़्रेञ्च सेनाओं की पराजय होने लगी। फ़्रेञ्च सेनाओं को बड़ी विपरीत परिस्थिति में लड़ना पड़ रहा था। देश ग़रीब था, सड़कें खराब थीं और पहाड़ियाँ तथा नदियाँ उनके रास्ते के आरपार फैली हुई महान् रुकावट बनी हुई थीं। ऐसी भूमि में बड़ी-बड़ी सेनाओं के लिये इधर-उधर कूच करना असंभव था। वह भूमि छोटी-छोटी टुकड़ियों के लिये लुकछिप कर शत्रु पर आक्रमण करने तथा बचाव के लिये बड़ी अनुकूल थी। इसके अतिरिक्त अब सेना को राष्ट्रीय जोश से भरी हुई जनता से लड़ना था। १६ जुलाई १८०८ को बेलन (Baylen) के स्थान पर फ़्रेञ्च जनरल ड्युपोंत (Dupont) की पराजय हुई जिससे न केवल स्पेनियों का उत्साह बढ़ा वरन् समस्त योरोप में सनसनी फैल गई। महाद्वीप में यह नेपोलियन की पहली पराजय थी। फ़्रेञ्च सेना की अजेयता का दावा नष्ट हो चुका था। मध्य योरोप में भी लोगों का उत्साह बढ़ा और राष्ट्रीय प्रतिक्रिया आरभ हो गई। १ अगस्त को जोजेफ़ मेड्रिड छोड़ कर भाग गया।

प्रान्तीय समितियों ने इंगलैण्ड से सहायता की प्रार्थना की और इंगलैण्ड के विदेश-मन्त्री कैनिंग ने नेपोलियन पर पीछे से आक्रमण करने का उपयुक्त अवसर पाकर सहायता भेजी। जिस दिन जोजेफ़ मेड्रिड छोड़कर भागा, उसी दिन आर्थर वेलेजली अंग्रेजी सेना के साथ पोर्तुगाल के तट पर उतरा। वह लिस्बन की ओर बढ़ा। रास्ते में उसने विमियरो (Vimiero) नामक स्थान पर फ़्रेञ्च सेना को हराया (२१ अगस्त) और जूनो सिंट्रा (Cintra) के समझौते के अनुसार पोर्तुगाल खाली कर गया (३० अगस्त)। अंग्रेजी सेना पोर्तुगाल में जम गई।

इस समाचार से नेपोलियन को बड़ा क्रोध आया। वह स्थिति की गंभीरता को समझ गया। वह देख रहा था कि ऑस्ट्रिया में भी राष्ट्रीयता का रोग शुरू हो रहा था। उसने एर्फ़ुर्ट नामक स्थान पर जार एलेक्जेण्डर से भेंट की और एक नई सन्धि करके उससे मित्रता दृढ़ की। इस प्रकार अपनी स्थिति को मध्य-योरोप में मजबूत करके उसने एक बड़ी सेना के साथ स्पेन में प्रवेश किया। बर्गोस (Burgos) के निकट स्पेनी सेनाओं को परास्त करके (१० नवम्बर १८०८) वह मेड्रिड की ओर बढ़ा। उसने मेड्रिड लेकर जोजेफ़ को पुनः सिंहासन पर बिठला दिया।
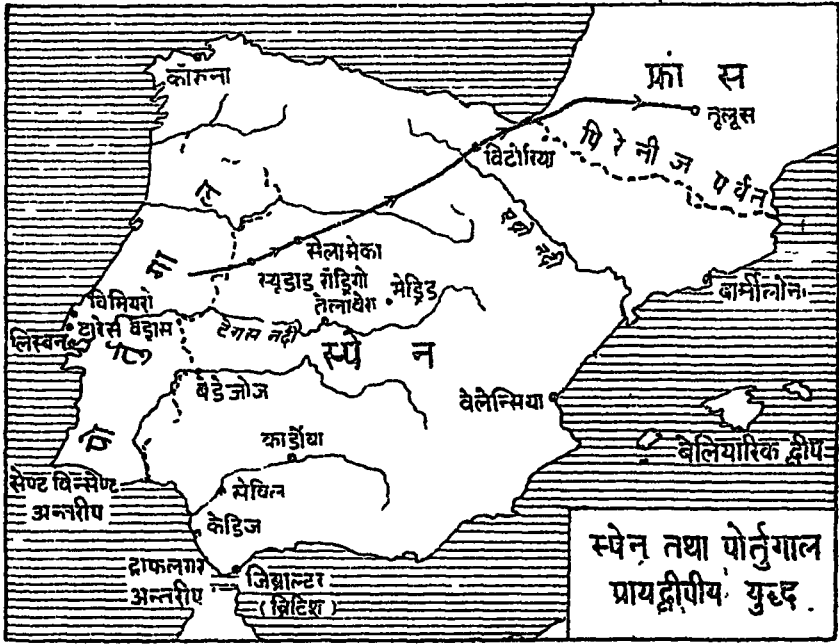
स्पेन तथा पोर्तुगाल
प्रायद्वीपीय युद्ध

इस बीच में आर्थर वेलेज़ली वापस चला गया था और उसके स्थान पर सर जॉन मूर आ गया था। नेपोलियन अब दक्षिणी स्पेन की ओर बढ़ना चाहता था। यह देखकर मूर उत्तर मे नेपोलियन का रास्ता काटने का डर दिखाकर उसे मेड्रिड से हटाने के लिए उत्तरी स्पेन की ओर बढ़ा। नेपोलियन भी तुरन्त उत्तर की ओर चल पड़ा और मूर उत्तर-पश्चिम में कॉरुना (Corunna) की तरफ़ पीछे हटने लगा। इसी बीच में नेपोलियन को ऑस्ट्रिया में विद्रोह हो जाने के समाचार मिले। सेना की बागडोर मार्शल सूल (Soult) के हाथों में छोड़ कर वह तुरन्त फ़्रान्स लौट गया। मूर कॉरुना पहुँच गया, उसकी सेना तो निकल गई परन्तु वह स्वयं मारा गया। किन्तु उसका उद्देश्य पूरा हो चुका था। नेपोलियन दक्षिण की ओर न बढ़ सका, उसकी योजना विफल हो गई और दक्षिणी स्पेन को मुकाबले की तैयारी का अवकाश मिल गया।

उधर वेलेज़ली वापस आ गया था। वह पोर्तुगाल से फ़्रेञ्च सेनाओं को निकाल कर स्पेन में घुस आया और स्पेन की सेना के साथ मिलकर मेड्रिड की ओर बढ़ा। टेलावारा के स्थान पर उसने फ़्रेञ्च सेनाओं को परास्त किया (२७-२८ जुलाई १८०६) परन्तु मार्शल सूल ने उसे आगे नहीं बढ़ने दिया और उसे वापस पोर्तुगाल लौट जाना पड़ा।

इसके पहले ही नेपोलियन ऑस्ट्रिया को परास्त कर चुका था। अब उसने अपना ध्यान स्पेन की ओर दिया और सेना भेजना आरम्भ किया। १८१० के मध्य तक स्पेन में ३,७०,००० फ्रेञ्च सैनिक एकत्रित हो गये थे और नेपोलियन का अत्यन्त सुयोग्य जनरल मसेना भी स्पेन पहुँच गया था। मसेना पोर्तुगाल की तरफ बढा। इसी बीच मे वेलिंगटन* ने टेगस नदी से समुद्र तक एक के पीछे दूसरी ऐसी तीन रक्षा-पंक्तियाँ (Lines of Torres Vedras) तैयार करके अपनी सुरक्षा का प्रबन्ध कर लिया था। उसने मसेना को बुसाको (Busaco) के निकट परास्त तो कर दिया परन्तु उसे हट कर रक्षा-पंक्तियों के पीछे चले जाना पड़ा। पंक्तियों के बाहर का सारा प्रदेश उसने रौंद डाला था और उसमें अन्न का एक दाना भी नहीं छोड़ा था। मसेना रक्षा-पंक्तियों को बहुत प्रयत्न करने पर भी न तोड़ सका और भूख तथा रोग से व्याकुल

* ऑर्थर वेलेजली को टेलावारा की विजय के उपलक्ष्य में वेलिंगटन के ड्यूक की पदवी मिली थी।

अपनी सेना के साथ पोर्तुगाल से हट कर स्पेन में चला गया (मार्च १८११)। उसके ३०००० सैनिक नष्ट हो गये थे।

इस समय तक वेलिंगटन के पास इंगलैण्ड से और सेना आगई थी। उसने अब आक्रमण किया। उसे कुछ विजय भी प्राप्त हुई परन्तु वह फ्रेञ्च सेनाओं की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं कर सका। १८१२ का वर्ष अंग्रेजों के अनुकूल रहा। नेपोलियन रूस के आक्रमण की तैयारी कर रहा था और उसे जितने भी सैनिक मिल सकते थे उनकी आवश्यकता थी। इस कारण वह स्पेन के लिये सहायता का प्रबन्ध कर न सका वरन् उसे वहाँ से बहुत सी सेना वापस मगानी पड़ी। उसने सारा भार अपने मार्शलों पर छोड़ दिया जिनमें पारस्परिक ईर्ष्यावश सहयोग की भावना का अभाव था। वेलिंगटन आगे बढा। जुलाई में सेलेमेंका (Salamanca) के निकट फ्रेञ्च सेना को परास्त कर उसने मेड्रिड में प्रवेश किया (अगस्त) और जोज़ेफ भाग कर एब्रो की तरफ चला गया। फ्रेञ्च सेनाओं को दक्षिणी स्पेन खाली करना पड़ा। परन्तु वेलिंगटन मेड्रिड पर अधिक दिनों तक अधिकार न रख सका। नवम्बर में फ्रेञ्च सेना ने उस पर फिर अधिकार कर लिया और वेलिंगटन को पोर्तुगाल वापस लौट जाना पड़ा। इस प्रकार उसकी विजय व्यर्थ रही परन्तु उसने दक्षिणी स्पेन को मुक्त कर लिया था और अपनी सेनाएँ बचाली थीं जिनकी सहायता से उसने स्पेनिश सेनाओं से मिल कर १८१३ में विजय शुरू की। इस वर्ष नेपोलियन ने सूल को अपनी सेना के चुने हुए सैनिकों के साथ जर्मनी बुला लिया और स्पेन में फ्रेञ्च सेना कमजोर पड़ गई। अब वेलिंगटन मेड्रिड से फ्रान्स जाने वाले मार्ग को काटने के लिये उत्तर की ओर बढा। फ्रेञ्च सेनाओं ने जल्दी से मेड्रिड खाली कर दिया और पिरेनीज़ पर्वत की ओर प्रस्थान किया परन्तु वेलिंगटन ने आगे बढ कर उन्हें विटोरिया के स्थान पर बुरी तरह से परास्त कर दिया। नेपोलियन ने जल्दी से सूल को वापस स्पेन के लिये रवाना किया परन्तु वह कुछ न कर सका। उसकी सेना बड़ी दृढता से लड़ी किन्तु वेलिंगटन ने उसे खदेड़ कर पिरेनीज पर्वत के पार भगा दिया। अब वह फ्रेञ्च सेनाओं का पीछा करता हुआ फ्रान्स में घुस गया और तूलूस (Toulouse) तक बढ़ता चला गया। १२ अप्रैल को तूलूस उसके हाथ में आ गया परन्तु इसके पहले ही नेपोलियन स्वयं परास्त हो चुका था। इस प्रकार यह लम्बा युद्ध जो इतिहास में प्रायद्वीपीय युद्ध (Peninsular war) कहलाता है समाप्त हुआ।

नेपोलियन की पराजय के कारण—

स्पेन पर आक्रमण करना नेपोलियन की जबरदस्त भूल थी। उसके पतन का यह भी एक मुख्य कारण था। बिना आगा पीछा सोचे हुए उसने स्पेन पर आक्रमण कर दिया और जब उसका विरोध हुआ तो वह उसकी शक्ति का सही अनुमान नहीं लगा सका। जब एक बार फस गया तो पराजय स्वीकार किये बिना उसके लिये हटना असमभव था। उसने हटना सीखा ही नहीं था, परन्तु उसने सफलता प्राप्त करने की ओर न तो अपनी प्रतिभा का और न अपनी सारी शक्ति का ही प्रयोग किया। वह स्पेन गया परन्तु अपनी विजय को पूरा करने के पहले ही १८०६ में लौट गया। १८१० में उसने मसेना को पूरी सहायता नहीं दी, १८१२ में सूल को वापस बुला लिया और १८१३ में जब सब कुछ हाथ से निकल चुका था तो उसे पुन. प्राप्त करने के लिये असंख्य सैनिक कटवा दिये। एक ही समय अनेक काम अपने हाथ मे लेने की जगह यदि उसने अपना पूरा ध्यान और पूरी शक्ति का स्पेन के विरुद्ध प्रयोग किया होता तो शायद वह सफल हो जाता। उसने तो भूले की हीं परन्तु यदि जोजेफ योग्य होता और उसके जनरल परस्पर सहयोग करते तो भी कुछ हो सकता था। परन्तु जोजेफ अयोग्य निकला। उसके जनरल आपस में ही झगड़ते रहे और नेपोलियन के हाथ स्पेन के राष्ट्र की घृणा और तीन लाख फ्रेञ्च सैनिकों के विनाश के अतिरिक्त कुछ नहीं लगा। यह सेना मध्य-योरोप मे अधिक काम आती। स्पेन की भूमि भी ऐसी थी जहाँ नेपोलियन की बड़ी सेनाएँ कुछ नहीं कर सकती थी। वह ऐसा देश है जहाँ बड़ी सेनाओं को भोजन नहीं मिल सकता और छोटी सेनाएँ सरलता से परास्त की जा सकती हैं। वह भूमि रक्षात्मक युद्ध के लिये बड़ी अनुकूल है और स्पेनवासियों ने इससे खूब लाभ उठाया। स्पेन की सेनाएँ भी अब राजा की दुर्बल वेतनभोगी सेनाएँ नहीं थी। वे राष्ट्रीयता के जोश से ओतप्रोत अपने देश की स्वतंत्रता के लिये प्राण होम देनेवाली जनता की सेनाएँ थीं जिन्हें संसार की कोई शक्ति परास्त नहीं कर सकती। ऐसी सेनाओं की सहायता के लिये इंगलैण्ड पहुँच गया था जो नेपोलियन का सबसे कट्टर शत्रु था। उसे ऐसी भूमि मिल गई थी जहाँ उसकी सेना स्पेनियों की हिम्मत बढ़ाने, उन्हें सहायता देने तथा स्वयं लड़ने में बड़े प्रभावकारी ढग से काम कर सकती थी। और ऐसी सेना का नेतृत्व था वेलिंगटन के हाथ में जो बड़ा दृढ़ाग्रही और युद्ध-कला में निपुण था। इन सब कारणों से नेपोलियन इस युद्ध में परास्त हुआ जिसे वह तिरस्कारपूर्वक पादरियों और

फकीरों का युद्ध' कहा करता था। बाद में उसने स्वीकार किया था कि स्पेन उसके लिये एक 'बहते हुए फोड़े' के समान था जिसने उसकी प्राणशक्ति को खींच लिया।

अध्याय १२

मध्य-योरोप में राष्ट्रीय प्रतिक्रिया

ऑस्ट्रिया द्वारा युद्ध की घोषणा—

प्रायद्वीपीय युद्ध का वर्णन करने में हमने मध्य-योरोप की अनेक घटनाओं की ओर ध्यान नहीं दिया है। आप देख चुके हैं कि ऑस्ट्रिया के विद्रोह के कारण नेपोलियन को स्पेन से हटना पड़ा था। प्रेसबुर्ग का अपमान ऑस्ट्रिया को शूल की तरह चुभ रहा था और वह उसका प्रतिशोध करने की तैयारी कर रहा था। स्पेन में नेपोलियन के विरुद्ध राष्ट्रीय विरोध तथा फ्रेञ्च सेनाओं की पराजय से प्रोत्साहित होकर ऑस्ट्रिया ने १५ अप्रैल १८०९ में फ्रान्स के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। अवसर भी उपयुक्त था। नेपोलियन के तीन लाख सैनिक स्पेन में उलझे हुए थे। जार एलेक्जेण्डर नेपोलियन को ऑस्ट्रिया के विरुद्ध सहायता देने का वचन दे चुका था परन्तु वह भी परेशान था। उत्तरी जर्मनी विद्रोह के लिये तैयार था और इङ्गलैण्ड भी सहायता के लिये प्रस्तुत था। इसके साथ ही उसने स्वयं अपनी सेना की अच्छी तैयारी करली थी।

ऑस्ट्रिया ने तीन दिशाओं में आक्रमण करके युद्ध का प्रारम्भ किया। आर्चड्यूक चार्ल्स ने बेवेरिया में एक विशाल सेना के साथ प्रवेश किया। आर्चड्यूक जॉन ने दूसरी सेना के साथ टिरोल में विद्रोह खड़ा किया और तीसरी सेना आर्चड्यूक फर्डिनेण्ड के नेतृत्व में वार्सा की ओर बढ़ी।

ऑस्ट्रिया की पुनः पराजय—

परन्तु नेपोलियन स्पेन से चल कर तुरन्त ही चार्ल्स के मुकाबले में आ पहुंचा और चार्ल्स हटकर वियना की ओर भागा। नेपोलियन भी पीछा करता हुआ वियना में जा पहुंचा (मई १८०९)। परन्तु इसके आगे नेपोलियन की स्थिति बड़ी संकटमय होगई। वह वियना से कुछ दूर एस्पर्न नामक स्थान पर हारा और उसके २७,००० सैनिक काम आये। इस पराजय के समाचार से समस्त योरोप में सनसनी फैल गई। प्रशा के राजा फ्रेडरिक विलियम ने कहा यदि ऐसी ही एक और विजय हुई तो मैं भी युद्ध में शामिल हो जाऊँगा। समस्त उत्तरी जर्मनी विद्रोह के लिये तैयार हो गया

और इङ्गलैंड ने भी एक बेड़ा उत्तरी जर्मनी के लिये रवाना किया। परन्तु नेपोलियन के भाग्य में अभी हार नहीं बदी थी। उसने ऑस्ट्रिया को वग्रम (Wagram) के स्थान पर ऐसी बुरी तरह से परास्त किया (५-६ जुलाई) कि उसे सन्धि की प्रार्थना करनी पड़ी। सब तरफ़ जोश ठंडा पड़ गया। इंगलैंड के बेड़े से भी कुछ न बन पड़ा और वह लौट गया।

वियना की सन्धि—

ऑस्ट्रिया को कड़ी शर्तें स्वीकार करनी पड़ीं। वियना (अथवा शॉनब्रुन) की सन्धि (१० अक्टूबर १८०६) के अनुसार आस्ट्रिया को पश्चिमी गेलिशिया का प्रदेश वार्सो की डची को, पूर्वी गेलिशिया रूस को, ट्रीस्ट, क्रोटिया तथा इलिरियन प्रान्त नेपोलियन को और टिरौल, उत्तरी ऑस्ट्रिया का कुछ भाग तथा अन्य छोटे-छोटे प्रदेश बेवेरिया को देने पड़े। उसे ३४००००० पौंड युद्ध का हर्जाना देना पड़ा, अपनी सेना हटा कर डेढ लाख करनी पड़ी और महाद्वीपीय व्यवस्था में सम्मिलत होना पड़ा। सम्राट् को जो शर्त सब से अधिक अपमानजनक मालूम पड़ी वह थी अपनी कन्या मेरिया लुईसा का विवाह नेपोलियन के साथ करने की। उसे यह शर्त भी मंजूर करनी पड़ी।*

साम्राज्य-विस्तार—

अब नेपोलियन ने महाद्वीपीय व्यवस्था को और भी कड़ी करने का निश्चय किया। आप ऊपर देख चुके हैं कि इस व्यवस्था में सहयोग न देने के अपराध में नेपोलियन ने पोप का राज्य छीन लिया था। वास्तव में इस व्यवस्था से योरोप की समस्त जनता बड़ी दुःखी थी यहाँ तक कि उसके भाई लुई बोनापार्ट को भी वह असह्य हो गई और उसने हॉलैण्ड का राज्य छोड़ दिया (१ जुलाई १८१०)। नेपोलियन ने इस पर हॉलैण्ड फ़्रान्स में शामिल कर लिया। वह समुद्रतट का कोई भी भाग ऐसा नहीं छोड़ना चाहता था जहाँ उसका प्रभाव न हो और जहाँ से इंगलैण्ड का व्यापार हो सके। इस दृष्टि से उसने हेम्बर्ग, ओल्डनबर्ग की डची, आधा वेस्टफेलिया, बर्ग की ग्राण्ड-डची का एक भाग तथा कई नगर भी इसी प्रकार फ़्रान्स में शामिल कर लिये।†

* नेपोलियन के कोई उत्तराधिकारी नहीं था। १८०६ के अन्त में उसने जोजेफाइन को तलाक दे दिया और १ अप्रैल १८१० को लुइसा से अपना विवाह कर लिया। यह राजकुमारी मेरी ऑत्वानेत की भतीजी थी। एक वर्ष बाद उसके पुत्र उत्पन्न हुआ जिसे नेपोलियन ने रोम का राजा घोषित किया।

† इस व्यवस्था से स्वयं नेपोलियन को भी बड़ी असुविधा थी और

योरोप
(१८१० मे)
स्वीडेन
डेन्मार्क
ग्रेट ब्रिटेन
प्रशा
वार्सा की ग्राण्ड डची
रूस का साम्राज्य
राइन का राज्य सघ
फ्रांस का साम्राज्य
स्विट्जरलैंड
ऑस्ट्रिया का साम्राज्य
तुर्की का साम्राज्य
स्पेन
नेपिल्स का राज्य
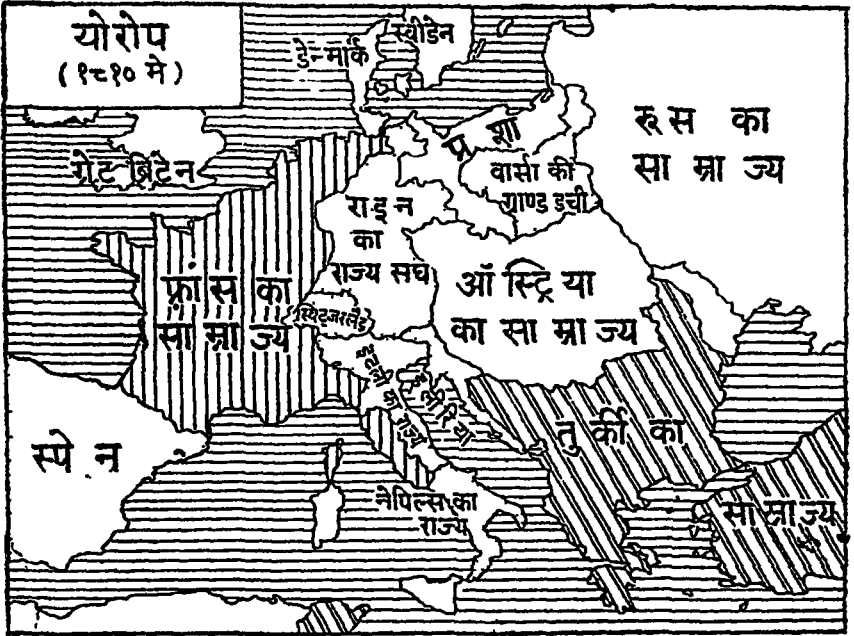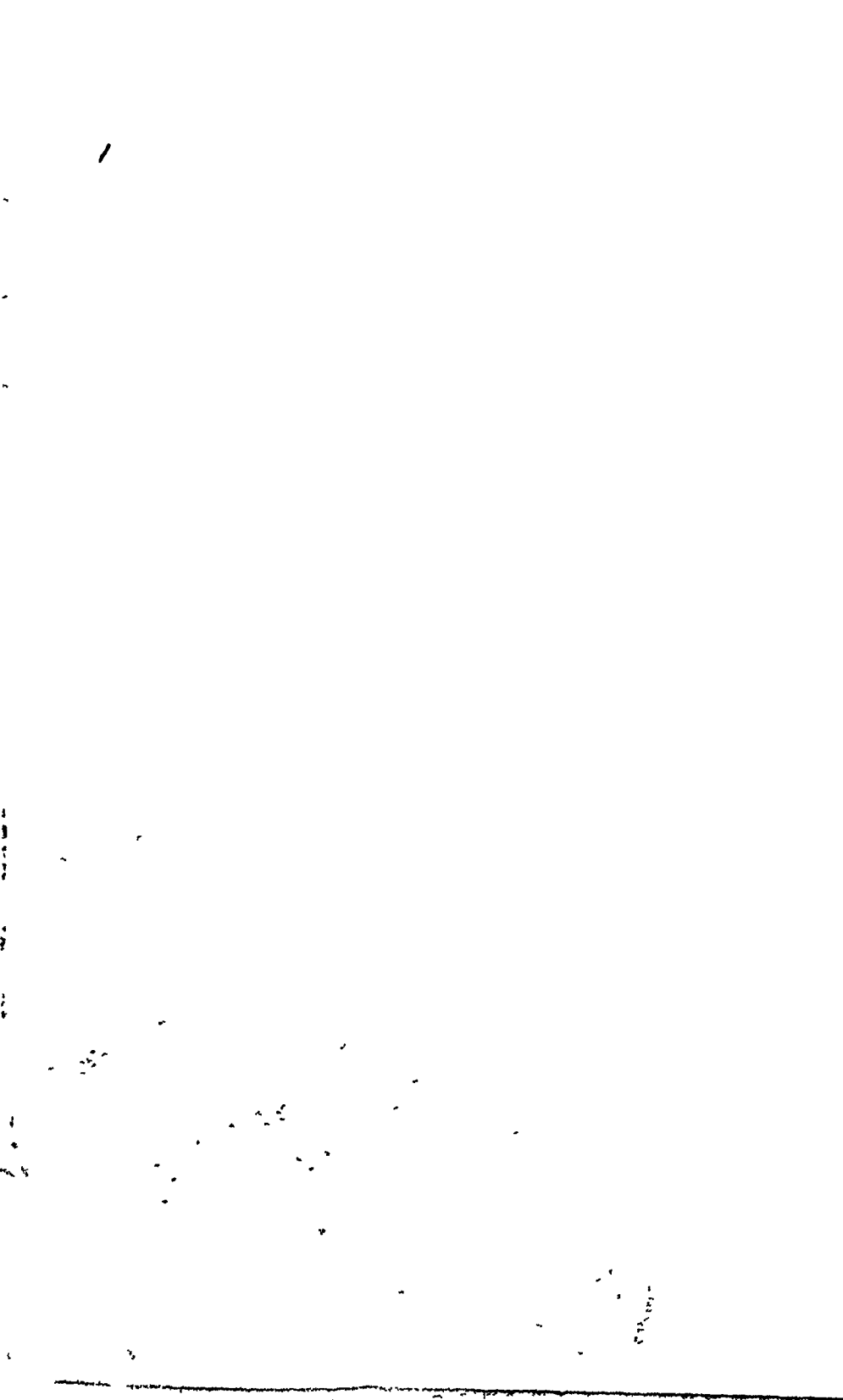
१८११ में नेपोलियन का साम्राज्य—

इस प्रकार १८११ के आरम में नेपोलियन का साम्राज्य चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया। स्वयं फ्रेञ्च साम्राज्य बडा विस्तृत था। उत्तर-पूर्व की ओर उसमें बेल्जियम, हॉलैंड तथा डेनमार्क की पूर्वी सीमा तक का समस्त प्रदेश सम्मिलित था और दक्षिण-पूर्व में इटली में पायडमॉण्ट, जिनोआ, टस्कनी तथा पोप के राज्य भी उसमें शामिल थे। इस साम्राज्य के पूर्व में उत्तर से लेकर दक्षिण तक राइन का राज्य-सघ, स्विट्ज़रलैंड, इटली का राज्य तथा नेपिल्स का राज्य थे जो इसके अधीन थे। एड्रियाटिक सागर के पूर्वी तट पर इलिरियन प्रान्त आदि भी फ्रेञ्च साम्राज्य में थे। इनसे आगे पूर्व की ओर प्रशा तथा आस्ट्रिया, वार्सा की डची और रूस थे। प्रशा अब भी उससे दबा हुआ था, आस्ट्रिया कुचला जा चुका था, रूस मित्र था और इन सबके ऊपर सन्तरी की की तरह् निगाह रखने वाला वार्सा का राज्य था जो नेपोलियन के ही आधीन था। दक्षिण-पश्चिम में स्पेन भी नाममात्र को उसके भाई जोज़ेफ के आधीन था। इस प्रकार देखने में इस समय नेपोलियन का प्रभाव सारे योरोप पर था परन्तु जैसा हम ऊपर देख चुके हैं यह सारा ढाँचा भीतर से खोखला था और इसे मिटाने के लिये केवल एक जोर के धक्के की आवश्यकता थी जो स्वयं उसी की गलती से शीघ्र ही लगने वाला था।

———

उसका सफल होना असंभव था। फ्रान्स को सूती और ऊनी कपड़ा, शकर तथा तम्बाकू इंगलैण्ड से ही प्राप्त होते थे। उनके बिना काम चलना असंभव था। इस कारण नेपोलियन को स्वयं अपने ही नियमों का भंग कर कुछ अपवाद करने पड़े और कुछ वस्तुओं में इंगलैंड से व्यापार करने के लिये लाइसेन्स देने पड़े। रूस पर आक्रमण करनेवाली नेपोलियन की सेना के सिपाहियों के वस्त्र अधिकांश में यॉर्कशायर (इंगलैण्ड) में बने ऊनी कपड़े के थे। नेपोलियन की इस नीति के कारण उसके मित्र-देशों में काफी असन्तोष था और उन्हें नेपोलियन की व्यवस्था का भग करने का बहाना मिलता था। Madelin : The Consulate and the Empire, Vol II, pp. 78-80; Muir : British History, p. 495.

अध्याय १३

पतन की ओर

रूस पर आक्रमण

एलेक्जेण्डर की नाराजी—

नेपोलियन ने यह ग़लती रूस पर आक्रमण करके की। टिलसिट् की सन्धि से जार एलेक्जेण्डर और नेपोलियन मे मित्रता हो गई थी। दोनों ससार को आपस में बॉट लेने का स्वप्न देखने लगे थे और नेपोलियन ने उसे अपने राज्य के विस्तार में सहायता देने का भी वचन दिया था। १८०८ में एर्फ़ुर्ट की सन्धि से यह मैत्री और भी पुष्ट हो गई थी परन्तु १८१० तक नेपोलियन ने अपना वचन पूरा नहीं किया था और जार को एक इंच भी नई भूमि नही मिली थी। इसके अतिरिक्त अन्य कारणों से भी जार नेपोलियन की ओर से खिंच रहा था। नेपोलियन निरन्तर अपना साम्राज्य बढा रहा था जिससे उसे शका उत्पन्न हो रही थी। हाल ही में उसने ओल्डनवर्ग का राज्य फ़्रान्स में सम्मिलित कर लिया था। ओल्डनवर्ग का ड्यूक उसका बहनोई था। जार को यह बात बहुत बुरी मालूम हुई। उसकी सीमा पर नेपोलियन ने अपने विश्वासपात्र सेक्सनी के ड्यूक की अधीनता में वार्सा के राज्य का निर्माण किया था और अभी हाल ही मे ऑस्ट्रिया के कुछ प्रदेश उसमें सम्मिलित करके उसकी शक्ति बढा दी थी। नेपोलियन ने आरम्भ मे पोल लोगों की राष्ट्रीय भावना को जागृत करने का प्रयत्न किया था। जार को शका हो रही थी कि नेपोलियन इस प्रकार पोलो की राष्ट्रीयता को उभाड़ रहा था और स्वतन्त्र पोलेण्ड का पुनः निर्माण करने की तैयारी कर रहा था। उसने नेपोलियन से पोलेण्ड के राज्य को पुनर्जीवित न करने का वचन मॉगा परन्तु नेपोलियन ने इन्नकार कर दिया। इधर नेपोलियन की मित्रता से उसे काफ़ी परेशानी उठानी पड़ रही थी। उसे महाद्वीपीय व्यवस्था मे सहयोग करना पड़ रहा था जिससे उसकी प्रजा को बड़े कष्ट उठाने पड़ रहे थे और राज्य को भी आर्थिक क्षति उठानी पड़ रही थी। धीरे-धीरे उसका सहयोग शिथिल पड़ रहा था। अक्टूबर १८१० में नेपोलियन ने उससे रूसी बन्दरगाहों में समस्त तटस्थ देशों के जहाजों का

निषेध करने के लिये कहा। एलेक्जेण्डर ने इस माँग को स्वीकार नहीं किया और दिसम्बर में एक आदेश द्वारा तटस्थ जहाजों के लिये रूसी बन्दरगाहों में सुविधाएँ कर दीं।

रूस के विरुद्ध तैयारी—

नेपोलियन जानता था कि रूप से युद्ध होगा। उसने इंगलैण्ड, तुर्की और स्वीडेन से सन्धि करना चाहा ताकि रूस को कहीं से सहायता न मिल सके। परन्तु इंगलैण्ड ने इन्कार कर दिया और स्वीडेन तथा तुर्की ने रूस से सन्धि कर ली (अप्रैल १८१२)। रूस ने शान्ति-स्थापन के बाद इस सहयोग के बदले में स्वीडेन को नॉर्वे दिलवाने का वचन दिया। स्वीडेन ने इंगलैण्ड से भी जुलाई में सन्धि करके अपने बन्दरगाह अंग्रेजी व्यापार के लिये खोल दिये।

परन्तु ऑस्ट्रिया और प्रशा ने नेपोलियन से सन्धि कर ली और उसे सैनिक सहायता का वचन भी दिया। उधर साथ ही साथ उसने ६८००००* सैनिकों की एक विशाल सेना भी तैयार कर ली जिसमें से आधे तो फ्रेञ्च थे और शेष में समस्त योरोप के सैनिक थे। उसने एलेक्जेण्डर से अपने वचन का पूर्णतया पालन करने तथा ब्रिटिश व्यापार का बहिष्कार करने के लिये कहा और उसके इन्कार करने पर अप्रैल १८१२ को समस्त फ्रान्स के विरोध तथा अपने अर्थ-मंत्री की आर्थिक कठिनाई सम्बन्धी चेतावनी की भी परवाह न करके रूस के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

मॉस्को पर धावा—पराजय—

२४ जून को नेपोलियन की विशाल सेना ने नीमेन नदी को पार करके रूस की सीमा में प्रवेश किया। नेपोलियन आशा करता था कि जब किसी स्थान पर जम कर युद्ध होगा तो वह रूसियों को नष्ट कर देगा परन्तु रूसी सेनाओं ने अपने ही देश को उजाड़ने और पीछे हटते जाने की नीति का अवलम्बन किया। नेपोलियन उनका पीछा करता रहा। ७ सितम्बर को रूसी सेना रुकी और बोरोडिनो के निकट एक घमासान युद्ध हुआ। रूसी सेना हारी और फिर पीछे हटने लगी। एक सप्ताह बाद नेपोलियन मॉस्को पहुंचा परन्तु रूसी लोग मॉस्को में आग लगा कर उसे जलता हुआ छोड़ और भी पीछे हट गये थे। नेपोलियन दो महीनों तक वहाँ इस आशा में रुका रहा कि जार आत्मसमर्पण कर देगा परन्तु उसकी आशा पूरी न हुई। अक्टूबर का

* Marriott . The Remaking of Modern Europe, p 110.

मध्य आ गया था और कड़ाके का जाड़ा शुरू होने वाला था। अन्न की कमी थी और सेना में रोग भी फैल रहे थे। निदान निराश होकर नेपोलियन ने अपनी सेना को वापस कूच करने की आज्ञा दी और वेचारे बीमार, भूखे, फटे हाल सैनिक वापस लौट पड़े। मार्ग में रूसी लोगों ने उन्हें वड़ा परेशान किया। ५ दिसम्बर को नेपोलियन सेना को छोड़ छिपकर पैरिस के लिये रवाना हो गया। १३ दिसम्बर को उस विशाल सेना के कंकाल ने नीमन नदी को पार किया और लाइपजिग की ओर प्रस्थान किया। सेना में केवल एक लाख आदमी वचे थे।

इस पराजय से नेपोलियन की सैनिक शक्ति की वड़ी भारी क्षति हुई परन्तु फिर भी उसने हिम्मत नहीं हारी। फ्रान्स की जनता अब भी उसके साथ थी। पेरिस लौटने पर उसने कहा कि वसन्त तक मैं फिर नीमन नदी के तट पर दिखाई दूंगा। तीन महीने के अन्दर उसने एक नई सेना तैयार कर ली परन्तु वह अपना वचन पूरा नहीं कर सका। ऊपर से देखने में योरोप की स्थिति में नेपोलियन के लिये कोई परिवर्तन नही दिखाई देता था। राइन के राज्य-संघ मे विश्वासघात के कोई लक्षण नहीं दिखाई दे रहे थे। ऑस्ट्रिया भी शत्रु के साथ मिलने के लिये तैयार नहीं दिखाई देता था। प्रशा का राजा तृतीय फ्रेडरिक विलियम भी उससे अलग होने में झिझक रहा था। जार एलेक्जेण्डर भी आगे वढने का निश्चय नहीं कर पा रहा था। १

पतन की ओर—जर्मनी

प्रशा में जागृति--राजनीतिक सुधार—

इतना होते हुए भी नेपोलियन की स्थिति जर्मनी में वड़ी कमजोर हो रही थी। प्रशा का सब से अधिक अपमान टिलसिट मे हुआ था जो प्रशा की जनता मे, विशेष कर वहाँ के देशभक्त दल में, शूल की तरह चुभ रहा था। देशभक्त दल इस अपमान का अन्त करके अपने देश को नेपोलियन की दासता से मुक्त करना चाहता था। इस दल का सब से वड़ा जवरदस्त व्यक्ति वेरन फॉन स्टाइन (Baron Von Stein) था जिसके कुशल हाथों मे फ्रेडरिक विलियम ने टिलसिट की सन्धि के तीन महीने वाद ही प्रशा की वागडोर दे दी थी। उसने एक वर्ष के अन्दर ही प्रशा का कायाकल्प कर दिया था और एक मृत राष्ट्र मे जीवन फूंक दिया था। उसने व्यक्तिगत अर्ध-दासता की पद्धति भग कर दी और कृषकों को भी कुछ भूमि जमींदारों को दिलाकर शेप भूमि का स्वामी वना कर मुक्त और सन्तुष्ट कर दिया। समस्त विशेषा--

धिकार सहित कठोर वर्ग-भेद को मिटा कर उसने राजकीय पदों का द्वार योग्यता के आधार पर समस्त जनता के लिये खोल दिया। उसने केन्द्रीय शासन में उत्तरदायी मंत्रिमंडल की स्थापना की। वह पार्लामेण्टरी शासन-पद्धति भी स्थापित कर देना परन्तु नेपोलियन की आज्ञा से वह दिसम्बर १८०८ में पदच्युत कर दिया गया। इसके पहले ही वह नगरों में केन्द्रीय सरकार अथवा सामन्तों का नियन्त्रण हटा कर निर्वाचित कौंसिल की व्यवस्था कर के स्थानीय स्वशासन भी स्थापित कर चुका था।

सेना का सुधार—

इस प्रकार शासन का स्टाइन सुधार कर रहा था, उधर उसके सहयोगी शार्नहोर्स्त (Scharnhorst) तथा न्याइज़ेनाउ (Gneisenau) सेना का सुधार कर रहे थे। सेना पुरानी वर्ग-पद्धति पर संगठित होने के कारण निर्बल थी और नेपोलियन के सामने वह व्यर्थ प्रमाणित हो चुकी थी। अत' वर्ग-पद्धति को तोड़ कर सेना का नये ढग से संगठन किया गया। नेपोलियन ने प्रशा को निर्बल बनाये रखने के लिये सेना की ४०००० सीमा नियत कर दी थी परन्तु उस सीमा को बनाये रखते हुए बड़ी चतुराई के साथ समस्त नागरिकों को अनिवार्य सैनिक शिक्षण दिया गया और दो प्रकार की सेनाएँ तैयार की गई—एक तो देश की बाहरी शत्रु से रक्षा करने के लिए और दूसरी देश के अन्दर शत्रु से लुकछिप कर युद्ध करने के लिए।

शिक्षा का सुधार—

इन सुधारों के साथ जर्मनी के दार्शनिक, विचारक, शिक्षक, कवि, लेखक आदि राष्ट्र के युवकों में अनन्य देशभक्ति की भावना जाग्रत करने में लगे हुए थे। इसी समय हुमबोल्ट के निदर्शन में शिक्षा की व्यवस्था में भी सुधार किया गया। १८०९ में बर्लिन विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। वह तथा अन्य विश्वविद्यालय देशभक्ति के केन्द्र बन गए और समस्त शिक्षालयों तथा जनता में देशभक्ति का समुद्र हिलोरें मारने लगा।

नेपोलियन के विरुद्ध रूस से सन्धि—

इस प्रकार टिलसिट के अपमान के पांच वर्ष के अन्दर ही प्रशा बिलकुल बदल कर नए जोश से अनुप्राणित स्वतन्त्रता का प्रेमी राष्ट्र बन गया। इसी समय रूस से नेपोलियन की महान् असफलता का समाचार आया। सारे देश में इससे जोश फैल गया जिसने भीरु फ्रेडरिक विलियम को नेपोलियन के

प्रभाव से मुक्त कर उसके विरुद्ध युद्ध की घोषणा करने के लिए विवश कर दिया। स्टाइन पदच्युति के बाद रूस चला गया था और एलेक्जेण्डर को परामर्श देता रहता था। इधर प्रशा की सेना यॉर्क (Yorck) की कमाण्ड में थी। ३० दिसम्बर १८१२ को यॉर्क ने अपने ही अधिकार से रूस से सन्धि कर अपनी सेना की तटस्थता स्वीकार कर ली। फ्रेडरिक विलियम ने सन्धि को अस्वीकार करके यॉर्क को गिरफ्तार करने का आदेश दिया परन्तु स्टाइन और यॉर्क के सामने उसकी कुछ न चली। उसे रूस से कालिश (Kalisch) की सन्धि (फर्वरी १८१३) के अनुसार मित्रता करनी पड़ी और एलेक्जेण्डर ने प्रशा को येना के युद्ध के पहले उसके पास जितनी भूमि थी उसके बराबर भूमि नहीं मिलने तक युद्ध बन्द न करने का वचन दिया। परन्तु पोलेण्ड के जो प्रदेश छीन लिए गए थे उन्हें वापस दिलाने का वचन उसने नहीं दिया क्योंकि उन्हें वह स्वय चाहता था। उसने उनके बदले में जर्मनी में अन्यत्र कुछ प्रदेश दिलाकर उसकी क्षति की पूर्ति का वचन दिया। दोनों राजाओं ने नेपोलियन से अलग सन्धि न करने का भी वायदा किया।

जर्मनी की मुक्ति का युद्ध—

तृतीय फ्रेडरिक विलियम ने १७ मार्च १८१३ को नेपोलियन के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की और जर्मनी की मुक्ति का युद्ध आरम्भ हुआ।

नेपोलियन को अब एक दृढ़प्रतिज्ञ राष्ट्र के विरोध का मुकाबला करना पड़ा। वह अभी तक तैयार नहीं था। जैसे तैसे वह दो लाख सैनिकों की सेना तैयार कर सका था जिनमें से अधिकांश फ्रान्स के नौसिखिए नवयुवक थे। उसकी घुड़सवार सेना भी कमजोर थी। अतः आरम्भ में नेपोलियन की हार होने लगी। रूसी कज्जाक सेना की सहायता में प्रशा की सेना ने ड्रेस्डन ले लिया। परन्तु अब नेपोलियन मैदान में आ पहुँचा। उसने प्रशा और रूस की सेनाओं को खदेड़ कर एल्ब नदी के पार भगा दिया और ड्रेस्डन वापस ले लिया (१४ मई)। एक सप्ताह बाद उसने शत्रुओं को लुत्सन (Lutzen) तथा बॉत्सन (Bautzen) के युद्धों में परास्त कर दिया और वे साइलेशिया के प्रान्त में हट गये, परन्तु उनकी शक्ति भग नहीं हुई और नेपोलियन भी काफी घुड़सवार सेना के अभाव में आगे नहीं बढ़ सका। वह और सेनाएँ मैदान में लाना चाहता था। इसलिए उसने ४ जून को प्लास्वित्स के स्थान पर सात सप्ताह के लिए युद्ध स्थगित करने का प्रस्ताव किया।

चौथे गुट का निर्माण—

नेपोलियन ने यह प्रस्ताव करके बड़ी गलती की। उसने भी बाद में अपनी भूल स्वीकार की। * इस अवधि में जो कूटनीतिक चालें चली गईं उनका परिणाम नेपोलियन के विपरीत हुआ। ऑस्ट्रिया का सम्राट् फ्रान्सिस फ्रान्स को निर्बल करना और प्रशा तथा रूस की शक्ति को बढ़ने देना नहीं चाहता था। उसने २७ जून को रूस तथा प्रशा से राइशेनबाख (Reichenbach) के स्थान पर सन्धि की और नेपोलियन को सन्धि की शर्तें देकर उनको स्वीकार करवाने और उसके इन्कार करने पर उसके विरुद्ध युद्ध में शामिल हो जाने का वचन दिया। नेपोलियन से इलिरियन प्रदेश ऑस्ट्रिया को सौंप देने वार्सा की डची का भग करने, टिलसिट की सन्धि के अनुसार जितने प्रदेश प्रशा से छीन लिए गये थे उन्हें तथा १८१० में उत्तरी जर्मनी के जो प्रदेश उसने ले लिए थे उन सबको वापस करने के लिए कहा गया। इनके बदले में राइन के राज्य-सघ की अध्यक्षता उसी के हाथों में छोड़ने का वचन दिया गया। नेपोलियन ने यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया और ऑस्ट्रिया भी उसके विरुद्ध युद्ध में शामिल हो गया। स्वीडेन भी उनके साथ सम्मिलित हो गया। इगलैंड ने भी धन से सहायता देने का वचन दिया और इस प्रकार नेपोलियन के विरुद्ध 'चौथा गुट' तैयार हो गया।

अब युद्ध का रूप बदल गया। अभी तक यह युद्ध स्टाइन के सिद्धान्तों के अनुसार जर्मन जनता का जर्मनी की मुक्ति के लिए एक जन-युद्ध था। इसके नेता स्टाइन और यॉर्क थे। अब यह युद्ध प्रतिक्रियावादी तो नहीं, वंशीय युद्ध हो गया जिसका सचालन आस्ट्रिया के प्रधान मन्त्री मेटरनिख् के हाथों में पहुँच गया।†

इस समय नेपोलियन कोई साढ़े चार लाख सैनिकों के साथ ड्रेस्डन में था और उसके विरुद्ध उतनी ही सेना तीन भागों मे बंटी हुई उस पर आक्रमण करने के लिए तैयार थी। एक ऑस्ट्रियन सेना बोहीमिया में श्वार्जनबर्ग के नेतृत्व में थी; दूसरी ब्लूखर के नेतृत्व मे रूस और प्रशा की सम्मिलित सेना साइलेशिया में थी और तीसरी रूस, स्वीडेन तथा प्रशा की सम्मिलित सेना उत्तरी जर्मनी मे स्वीडेन के राजकुमार बर्नादोते की अधीनता में थी। उधर वेलिंग्टन स्पेन में होकर फ्रान्स में घुसने का प्रयत्न कर रहा था।

* Marriott· The Remaking of Modern Europe, p. 113.

† Ibid, p 113.

राष्ट्रों का युद्ध—

नेपोलियन ने वारी वारी से तीनों सेनाओं को नष्ट करने की योजना वनाई परन्तु उसे सफलता नहीं मिली। आस्टिया की सेना को तो उसने ड्रेस्डन में परास्त कर दिया (२६, २७ अगस्त) परन्तु साइलेशिया में व्लूखर ने फ्रेन्च सेना को परास्त कर दिया और उत्तरी जर्मनी में भी उसे सफलता प्राप्त नहीं हुई। अब सब ओर से सेनाएँ उसकी ओर बढने लगीं और लाइपजिग के निकट तीन दिन के 'राष्ट्रों के युद्ध' (Battle of the Nations) * में नेपोलियन की बड़ी भारी पराजय हुई जिसमें उसकी सैनिक शक्ति नष्ट हो गई (१६-१८ अक्टूबर)। वह लौट पड़ा और अपनी बची खुची सेना के साथ २ नवम्बर को राइन नदी पार कर फ्रान्स की ओर चला गया।

जर्मनी में नेपोलियन की राज्य-व्यवस्था भंग—

इस पराजय के साथ जर्मनी में जो राज्य-व्यवस्था उसने स्थापित कर रखी थी वह तुरन्त भंग हो गई। राइन का राज्य-संघ भंग हो गया और सेक्सनी को छोड़कर उसके सब राज्य गुट में शामिल हो गये। जेरोम वेस्टफेलिया से भाग गया और वह राज्य भी भंग हो गया। हॉलैंड फ्रान्स के अधिकार से निकल गया और ऑरेन्ज का विलियम वापस बुला लिया गया। बेवेरिया ने भी उसका साथ छोड़कर गुट से सन्धि कर ली।

नेपोलियन से सन्धि का प्रस्ताव—

शत्रुओं की सेनाएं उसका पीछा करती हुई राइन नदी की ओर बढ़ी। गुट के सदस्यों में से किसी का भी उद्देश्य उसके सिंहासन छीनने का नहीं था। व्लूखर तो चाहता था कि राइन पार करके सेनाएं फ्रान्स में घुस जॉय परन्तु नवम्बर १८१३ में नेपोलियन से इस शर्त पर सन्धि करने का प्रस्ताव किया गया कि वह फ्रान्स की प्राकृतिक सीमाओं से सन्तुष्ट होकर उनके बाहर के समस्त प्रदेश छोड़ दे। इस शर्त के अनुसार वेल्जियम, राइन के प्रान्त तथा सेवॉय फ्रान्स के राज्य में बने रहते। नेपोलियन ने जब इस शर्त की स्वीकृति नहीं दी तो १ दिसम्बर को प्रस्ताव वापस ले लिया गया और सेनाएं फ्रान्स की ओर बढ़ने लगीं। व्लूखर सीधा पेरिस की ओर बढ़ा, ब्यूलो हॉलैंड के रास्ते से घुसा और ऑस्ट्रियन सेना बेल्फोर के दर्रे में होकर घुसी।

* इस युद्ध में तुर्की को छोड़कर योरोप के समस्त राष्ट्रों के सैनिक लड़ रहे थे।

पराजय और पुनः सन्धि का प्रस्ताव—

नेपोलियन बड़ी कठिन स्थिति में था परन्तु कुछ तो अपने अद्वितीय युद्धकला-कौशल से, कुछ नदियों से और कुछ ऑस्ट्रिया की सुस्ती और वेदिली से लाभ उठाकर वह शत्रुओं को दो महीने से अधिक समय तक रोके रहा। १ फर्वरी को ब्लूखर ने उसे ला रॉदियेर (La Rothiere) पर परास्त किया। इस पराजय के बाद शातिलों (Chattilon) में एक सभा की गई जिसमें १७६१ की सीमा की शर्त पर फिर सन्धि का प्रस्ताव किया गया। परन्तु इसके अनुसार वेल्जियम, राइन के प्रान्त तथा सेवॉय की हानि होती थी इसलिए उसके प्रतिनिधि ने उसे स्वीकार नहीं किया। अब की बार नेपोलियन ने शत्रुओं को कई मोर्चों पर हराया और ऑस्ट्रिया के सम्राट् फ़्रान्सिस से गुप्त बातचीत करके नवम्बर में दी हुई शर्त पर सन्धि करने का प्रयत्न किया। अपने मित्र-राष्ट्रों में फूट डालने का उसका प्रयत्न देखकर इंगलैंड, रूस, प्रशा तथा ऑस्ट्रिया ने शामों (Chaumont) नामक स्थान पर १ मार्च को २० वर्ष की मित्रता की सन्धि की और नेपोलियन से पृथक सन्धि न करने का वचन दिया। सब राष्ट्रों ने अलग अलग डेढ़ लाख सैनिक युद्ध में लगाने का वचन दिया और इंगलैण्ड ने ५० लाख पौंड सहायता देने का वचन भी दिया।

पराजय और पतन—

अब शत्रुओं की सेनाएँ बढीं। ब्लूखर ने लाओं (Laon) के स्थान पर नेपोलियन को फिर हराया और सेनाएँ ३१ मार्च १८१४ को पेरिस में घुस गईं। सीनेट ने २ अप्रेल को एक प्रस्ताव पास करके नेपोलियन को सिंहासनच्युत कर दिया और तेलीरॉ (Talleyrand) की अध्यक्षता मे एक अस्थायी सरकार स्थापित की गई। स्वय नेपोलियन से फ़ॉन्टेनब्लो (Fontainebleau) नामक स्थान पर सन्धि हुई जिसके अनुसार उसे अपनी और अपने परिवार की ओर से फ़्रान्स पर अपने समस्त अधिकारों का त्याग करना पड़ा। इसके बदले मे उसे एल्बा का द्वीप देकर वहाँ का स्वतन्त्र राजा बना दिया गया और २० लाख फ़्रैंक की पेन्शन दी गई। उसके परिवार के लिए भी २५ लाख फ़्रैंक की पेन्शन की व्यवस्था की गई। मेरी लुईसा को इटली में तीन छोटे छोटे राज्य (डचियाँ) दिये गए।

पेरिस की प्रथम सन्धि—

पेरिस में सभी राष्ट्रों की सभा हुई जिसमें फ़्रान्स का भाग्य-निर्णय हुआ। विभिन्न प्रस्तावों पर विचार करने के बाद तेलीरॉं की सम्मति पर पुराने बूर्बों

वंश का फ्रान्स पर फिर से राज्य स्थापित किया गया और अठारहवाँ लुई*
सिंहासन पर बिठलाया गया। फ्रान्स की सीमाएँ वही रहीं जो १७९२ में थीं।
उसमें सेवॉय का कुछ भाग तथा पूर्वी सीमा पर कुछ प्रदेश और जोड़ दिए गए।
मारिशस, टोबेगो तथा सेंतलूसिया को छोड़ उसके समस्त उपनिवेश वापस
कर दिए गए और उससे युद्ध का कोई हर्जाना नहीं लिया गया।

३ मई को अठारहवें लुई ने पेरिस में प्रवेश किया। वह समझता था कि अब
पुरानी परिस्थिति वापस नहीं लौट सकती। उसने क्रान्ति को स्वीकार कर लिया
और ४ जून को अपनी ओर से फ्रान्स को एक विधान दिया जिसके अनुसार
दो भवनों की व्यवस्थापिका सभा, उत्तरदायी मन्त्रिमण्डल तथा काफी विस्तृत
मताधिकार की व्यवस्था की गई। राज्य के पद सभी वर्गों के लिए खोलने की
घोषणा की गई। समाचारपत्रों को भी स्वतन्त्रता दे दी गई।

वियना-कांग्रेस—

पेरिस की प्रथम सन्धि से फ्रान्स के भाग्य का निर्णय करके विजयी राष्ट्रों
ने अन्य प्रश्नों के निर्णय के लिए वियना में एक सभा करने का निश्चय किया
जिसका प्रथम अधिवेशन १ नवम्बर १८१४ को हुआ। यह एक बड़ा भव्य
सम्मेलन था और योरोप के इतिहास में अद्वितीय था। तुर्की को छोड़ इसमें
प्रायः सभी देशों के प्रतिनिधि सम्मिलित हुए थे। रूस, प्रशा तथा ऑस्ट्रिया के
राजा स्वयं इसमें सम्मिलित थे। फ्रान्स की ओर से तेलीराँ शामिल हुआ था।
ग्रेट ब्रिटेन का प्रतिनिधित्व केसेलरी तथा वेलिंगटन का ड्यूक कर रहे थे।
सम्मेलन का समस्त प्रबन्ध ऑस्ट्रिया का प्रधान मन्त्री मेटरनिख (Metternich)
कर रहा था जो सम्मेलन का सभापति भी था।

कांग्रेस में मतभेद—

किन्तु इस विशाल सम्मेलन में मतैक्य नहीं था। प्रत्येक राजा लड़ाई की
लूट में से अधिक से अधिक लेना चाहता था। चारों बड़े राज्यों में मुख्य मतभेद
पोलैण्ड तथा सेक्सनी के सम्बन्ध में था। तेलीराँ ने इस मतभेद से खूब लाभ

* सोलहवें लुई का पुत्र दस वर्ष की अवस्था में ही १७९५ में मर चुका
था। इस लुई ने अपना नाम अठारहवां लुई रखकर अपने भतीजे सत्रहवें लुई
के राज्य को स्वीकार किया, यद्यपि उसने कभी राज्य नहीं किया था। अठारहवें
लुई ने क्रान्ति को केवल एक विद्रोह समझा और नेपोलियन को केवल एक
उचक्का जिसने बलपूर्वक राज्य पर अधिकार कर लिया था। इसी कारण वह
१८१४ को अपने राज्य का उन्नीसवां वर्ष कहता था।

उठाया। १८१३ में एलेक्ज़ेण्डर ने ऑस्ट्रिया तथा प्रशा को उनके पोलिश प्रदेश जो १७९५ में उनके पास थे वापस देने का वचन दिया था परन्तु बाद में वह पोलैण्ड के राज्य को अपनी अधीनता में फिर से निर्माण करने को इच्छा करने लगा था। अतः उसने प्रस्ताव किया कि प्रशा अपने पोलिश प्रदेशों के बदले सेक्सनी ले ले। प्रशा इसके लिए राजी हो गया परन्तु ऑस्ट्रिया तथा इंगलैंड ने इसका विरोध किया। इस पर तनाव यहाँ तक बढ़ा कि ३ जनवरी १८१५ को इंगलैंड और ऑस्ट्रिया ने जिस फ्रान्स से वे इतने वर्षों से युद्ध कर रहे थे उससे मिलकर रूस तथा प्रशा के विरोध के लिए एक रक्षात्मक सन्धि कर डाली। इस पर एलेक्जेण्डर दब गया और प्रशा को सेक्सनी का कुछ भाग और पोलैंड का कुछ भाग देना स्वीकार किया गया।

सौ दिवस (Hundred Days)

नेपोलियन पुनः फ्रान्स में—

नेपोलियन को इस मतभेद की सूचना मिल रही थी। उधर अठारहवें लुई के प्रति भी फ्रेञ्च जनता में असन्तोष बढ़ रहा था। उसने जनता को जो चार्टर दिया था उससे फ्रान्स में वैधानिक शासन स्थापित होने की काफी गुञ्जायश थी परन्तु दुर्भाग्यवश उसने राज्य का समस्त प्रबन्ध अपने भाई आर्त्वा के ड्यूक पर छोड़ दिया जो अत्यन्त प्रतिक्रियावादी था। उसको पुराने पादरी तथा प्रवासी कुलीन लोग घेरे रहते थे जो पिछले २५ वर्षों के कामों का चिन्ह तक नहीं छोड़ना चाहते थे। जनता अपने अधिकारों को छोड़ना नहीं चाहती थी और उनका विरोध करने लगी। उसने नेपोलियन के समय के सेना के हजारों अफसरों को हटा कर सेना को भी नाराज कर लिया। इस प्रकार वह बड़ा अप्रिय हो रहा था। इन बातों से प्रोत्साहित होकर नेपोलियन ने फिर एक बार अपने भाग्य की परीक्षा करने की ठानी। वह एल्बा से चुपके से निकल कर १ मार्च १८१५ को केन (Cannes) के निकट फ्रान्स में जा उतरा। जनता ने एक बार फिर उसका स्वागत किया और स्थान स्थान पर अपने स्वागत का आनन्द लेते हुए वह ३० मार्च को पेरिस जा पहुँचा। अठारहवां लुई भाग खड़ा हुआ और नेपोलियन फिर से फ्रान्स का सम्राट् बन गया।

वाटरलू का युद्ध और अन्तिम पतन—

जब नेपोलियन के फ्रान्स में वापस लौट आने की सूचना वियना पहुंची तो सभी राष्ट्र अपने मतभेद भुलाकर उसका सामना करने को तैयार हो गये।

नेपोलियन ने आते ही घोषणा की थी कि मैं अब युद्ध के मार्ग का नहीं वरन् शान्ति एवं स्वतंत्रता के मार्ग का पथिक हूँ और युद्ध करना मेरा ध्येय नहीं है। क्रान्ति से जनता को जो लाभ प्राप्त हुए थे, वे सकट में हैं और मैं उनकी रक्षा के लिये आया हूं। फ्रान्स की जनता तो उस पर विश्वास करती थी परन्तु उसके विरोधी राष्ट्रों को उसका बिलकुल विश्वास नहीं था। उन्होंने शामों की सन्धि को दोहराकर अपनी सेनाएँ फ्रान्स की ओर भेजी। उनमें से एक लाख से कुछ अधिक की एक मिश्रित सेना वेलिंगटन के नेतृत्व में ब्रूसेल्ज में थी जिसका मोर्चा वेएट से लेकर मॉन्स तक था। दूसरी सेना ब्लूखर की अधीनता में नामूर में थी। उसका मोर्चा शार्लीराय से लीज तक था और उसमें ११७००० प्रशा के सैनिक थे। नेपोलियन की सेना में कुल दो लाख सैनिक थे परन्तु उसे अपने रणकौशल में भरोसा था। उसकी योजना शत्रुओं को अलग करके उन्हें बारी-बारी से परास्त करने की थी। युद्ध बेल्जियम में हुआ। नेपोलियन ने पहले लिग्नी के निकट ब्लूखर पर आक्रमण करके उसे परास्त कर दिया और वेलिंगटन के विरुद्ध मार्शल ने को भेजकर उसे बेत्रेब्रा के निकट रोक दिया ताकि वह ब्लूखर से न मिल सके। ब्लूखर की पीछे हटती हुई सेना का पीछा करने का काम ग्राउची को सौंप कर वह वेलिंग्टन की सेना की ओर बढा। वेलिंग्टन इस समय तक वाटरलू पहुँच गया था। वाटरलू के मैदान में दोनों सेनाओं में सात घण्टों तक घमासान युद्ध हुआ। अन्त में ब्लूखर की सेना उससे आ मिली और नेपोलियन दो सेनाओं के बीच फस गया। उसकी पराजय हुई और फ्रेञ्च सेना भाग निकली। नेपोलियन भी भागा। पेरिस पहुँच कर उसने अपने पुत्र के लिये राज्य छोड़ने की घोषणा की और फ्रान्स से निकल भागने के इरादे से रोशफोर की तरफ गया परन्तु फ्रान्स के सभी बन्दरगाहों की अंग्रेजी बेड़ा चौकसी कर रहा था। भागना असंभव देखकर उसने एक अंग्रेजी जहाज बेलेरॉफॉन के अफसर मेटलैण्ड को आत्मसमर्पण कर दिया (१५ जुलाई)। वह जहाज में इंगलैण्ड लाया गया और वहाँ से कैदी बना कर एटलाटिक सागर के मध्य में स्थित सेंट हेलेना द्वीप को भेज दिया गया, जहाँ पेट के कैन्सर ने उसके ६ वर्ष के कारावास और असह्य अपमान का अन्त कर दिया और उसकी जीवन लीला समाप्त कर दी (५ मई १८२१)। उस समय उसकी अवस्था केवल ५२ वर्ष की थी। वह वहीं एक बिना नाम के तथा बिना तिथि के एक पत्थर के नीचे दफना दिया गया। २० वर्ष बाद फ्रान्स के कृतज्ञ राष्ट्र ने उसके अवशेषों को फ्रान्स लाकर पेरिस में बड़े सम्मान के साथ दफनाया। सेंट हेलेना में उसने अपना

समय अपना जीवन चरित्र लिखवाने में व्यय किया, जिसमें उसने अपने आपको क्रान्ति का सच्चा पुत्र, दलित राष्ट्रों का सच्चा मित्र, एवं शान्ति का पुजारी प्रकट किया जिसे अंग्रेजों की चालाकियों तथा योरोप के अन्य निरंकुश राजाओं ने अपना ध्येय पूरा न करने दिया था और युद्ध के लिये विवश किया था। उसके जीवन-चरित्र से 'नेपोलियन-परम्परा' (Napoleonic Legend) की उत्पत्ति हुई जिसके फल-स्वरूप आगे चलकर फ्रान्स में एक दूसरे नेपोलियन का साम्राज्य स्थापित हुआ।

मूल्यांकन—

नेपोलियन जैसे व्यक्ति का सही-सही मूल्य आँकना कठिन है। अपने समय में वह एक पहेली था और अब भी कुछ-कुछ पहेली बना हुआ है। उसके प्रशंसक अब भी उसकी प्रशंसा करते नहीं थकते और उसे अनुपम महापुरुष कह कर इतिहास में अत्यन्त गौरवपूर्ण स्थान देते हैं। उसके शत्रु उसे संसार की शान्ति और व्यवस्था को भंग करने के लिये अवतरित नरपिशाच कहते थे। परन्तु ये दोनों वर्णन अतिशयोक्तिपूर्ण हैं और सत्य उनके बीच में है।

उसमें अनेक गुण थे। उसका मस्तिष्क आश्चर्यजनक था, वह बड़ी तेजी के साथ सोच सकता था और प्रत्येक बात को साफ-साफ समझ लेता था। उसकी स्मृति अनुपम थी। किसी बात को भूलना वह जानता ही नहीं था। वह कहा करता था कि मेरा मस्तिष्क कई खानोंवाली अलमारी की तरह है; भिन्न-भिन्न बातें भिन्न-भिन्न खानों में रखी रहती हैं। मैं जिस बात पर विचार करना चाहता हूँ उसके खाने को खोल लेता हूँ और दूसरों को बन्द कर देता हूँ। मेरे दिमाग में उन बातों का झमेला कभी नहीं होता। जब मुझे नींद आती है तो मैं दिमाग के सब खाने बन्द कर देता हूँ और निश्चिन्त गहरी निद्रा में मग्न हो जाता हूँ। उसकी कल्पनाशक्ति बड़ी ज़बरदस्त थी। वह दो वर्ष आगे की योजनाएँ पहले से ही बना लेता था और उनकी पूर्ति के उपाय सोच रखता था। उच्च कोटि की कल्पना-शक्ति के साथ ही उसकी इच्छा-शक्ति बड़ी प्रबल थी जिसके सामने कोई भी बाधा नहीं ठहरती थी। इसके साथ ही उसकी कर्तृत्व-शक्ति अलौकिक थी; वह कार्य करने से कभी नहीं थकता था। वह कभी-कभी तो लगातार कई दिनों तक दिन में बीस-बीस घण्टे काम कर सकता था। वह जब चाहता सो जाता था। लड़ाई के मैदान में जब कि सब ओर से गोले बरसते रहते थे वह बड़े आराम से जितनी देर चाहता सो लेता था। कभी-कभी तो वह घोड़े पर ही सो लेता था। उसकी कार्य करने की शक्ति का प्रमाण इसी बात में मिलता है कि उसका जितना पत्र व्यवहार प्रकाशित हो चुका है वह ३२ जिल्दों में है और उसमें २३०८० पत्र हैं। इसके

अतिरिक्त उसके लिखवाये हुए ५०००० पत्र अभी तक अप्रकाशित हैं।* उसके समान परिश्रम करने वाले संसार के इतिहास में विरले ही हुए हैं।

इतिहास में वह एक महान् विजेता समझा जाता है और उसका नाम हेनिबॉल, सिकन्दर, सीजर, शार्लमेन आदि के साथ लिया जाता है। वह एक अत्यन्त प्रतिभाशाली सैनिक था और रणकौशल में अद्वितीय था। यह बात उसकी अनेकानेक चकित कर देनेवाली विजयों से प्रमाणित होती है। अपनी प्रतिभा तथा अपने अदम्य साहस के कारण वह अपनी सेना का लाड़ला बना हुआ था और उसके सैनिक उसके साथ कहीं भी जाने को और कुछ भी करने को तैयार रहते थे। वह मुर्दों में भी जान फूँक देता था। उसका युद्ध करने का ढग बिलकुल नया था। उसकी समस्त युद्ध-कला फुर्ती में थी। अचानक फुर्ती के साथ शत्रु पर आक्रमण करना और जिस स्थान पर शत्रु के मोर्चे में निर्बलता होती थी उस पर अधिकाधिक सेना के साथ टूट पड़ना उसका विशिष्ट ढग था। अपने रण-कौशल से ही कई बार वह अपनी पराजय को विजय में बदल देता था। उसकी सेना के पीछे कोई आधार-स्थल नहीं रहता था जहाँ से आगे बढ़ती हुई सेना को रसद पहुँचाई जा सकती। सेना को आगे बढ़ते समय अपना प्रबन्ध स्वय करना पड़ता था और जहाँ वह पहुँचती थी वहीं से अपने भोजन का प्रबन्ध करना पड़ता था। ज्यों-ज्यों नेपोलियन पूर्व की ओर बढ़ता गया त्यों त्यों इस व्यवस्था की निर्बलता प्रकट होती गई। रूस में उसकी पराजय इसी कारण हुई।

वह बड़ा कुशल राजनीतिज्ञ था। वह फ्रान्स की आवश्यकताओं को तथा फ्रेञ्च जनता की इच्छाओं को भली प्रकार समझता था और जानता था कि जनता किस प्रकार सन्तुष्ट रखी जा सकती है। अपने सुधारों के द्वारा उसने फ्रान्स में शान्ति एव व्यवस्था स्थापित की और जनता की स्वतन्त्रता छीन कर भी उसे सन्तुष्ट रखा। जनता को क्रान्ति के जो लाभ सबसे अधिक प्रिय थे उन्हें उसने कायम रखा। फ्रेञ्च जनता समानता तथा क्रान्ति के सामाजिक एवं आर्थिक लाभों का उपभोग करती रही। उसने फ्रेञ्च जनता की गौरव-भावना की कमजोरी का खूब फायदा उठाया और उसके द्वारा अपनी महत्वाकाँक्षाओं की पूर्ति की। जनता अनेक कष्ट सहती रही परन्तु उसका साथ उसने अन्त तक नहीं छोड़ा। वह एक जादूगर की भाँति फ्रेञ्च राष्ट्र को अपने वश में किये रहा।

* Hazen · Modern European History, p. 198.

उसके विधान-सग्रह, पोप के साथ किए हुए धार्मिक समझौते तथा शिक्षा-व्यवस्था में उसकी उच्च कोटि की राजनीतिज्ञता प्रकट होती है। विधान-संग्रह के विषय में उसने स्वयं कहा था कि मेरा वास्तविक गौरव मेरे चालीस युद्धों में विजय प्राप्त करने में नहीं है वरन् मेरे उस काम में है जो सदा अमिट रहेगा, अर्थात् विधान-सग्रह। जैसा हम ऊपर देख चुके हैं, नेपोलियन की धर्म की ओर प्रवृत्ति नहीं थीं। क्रान्ति ने चर्च का दमन कर दिया था परन्तु धर्म का नेपोलियन की राजनीति में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान था। उसने कहा था कि यदि रोमन केथोलिक चर्च नहीं होता तो मुझे उसकी सृष्टि करनी पड़ती। केथोलिक धर्म राजसत्ता के प्रति भक्ति को बड़ा महत्त्व देता है और नेपोलियन के लिये यह बात बड़ी आवश्यक थी। अतः उसने पोप से समझौता कर लिया और रोमन केथोलिक चर्च की पुनः स्थापना की। परन्तु उसने अन्य धर्मावलम्बियों को भी पूर्ण स्वतन्त्रता दी और इस प्रकार राज्य की ओर से धार्मिक सहिष्णुता की ओर एक महत्वपूर्ण कदम उठाया।

जिस प्रकार धर्म का उपयोग उसने अपनी राजनीति की सफलता के लिये किया उसी प्रकार शिक्षा का भी उपयोग किया। वह फ्रेञ्च जनता के मन और मस्तिष्क को एक विशिष्ट ढांचे में ढालना चाहता था। वह जानता था कि जनता को अपने अनुकूल ढग पर लाने का सबसे सरल मार्ग शिक्षा का है। अतः उसने शिक्षा की नवीन व्यवस्था की और उसे राज्य के पूर्ण नियन्त्रण में कर लिया। उसका कथन था कि मेरी व्यवस्था नैतिक ही नहीं है, वह राजनीतिक भी है। उसका उद्देश्य नई और पुरानी दोनो पीढ़ियों को शासन के अनुकूल बनाना था—वृद्धों को बालकों के द्वारा और बालकों को उनके माता-पिता द्वारा। उसने पेरिस मे जो राजकीय विश्वविद्यालय खोला था वह आजकल के विश्वविद्यालयों के समान नहीं था। वह नीचे से लेकर ऊपर तक समस्त शिक्षा की व्यवस्था करता था। समस्त शिक्षा का मूल ध्येय नेपोलियन के प्रति भक्ति उत्पन्न करता था। बालकों के लिये इसी उद्देश्य से एक प्रश्नोत्तरी तैयार की गई थी जिसे प्रत्येक बालक को याद करना पड़ता था।* शिक्षा का प्रयोजन इस प्रकार राजनीतिक लक्ष्यों की पूर्ति था, मस्तिष्क का विकास तथा स्वतन्त्र चिंतन नहीं। स्वतन्त्र चिन्तन एव स्वतन्त्र भाषण का तो वह कट्टर शत्रु था। उसने समाचारपत्रों पर कड़ा नियन्त्रण लगाया और कई समाचारपत्र बन्द कर दिये। १८०० में पेरिस में ७० समाचारपत्र निकलते थे परन्तु १८१० में केवल चार रह गये थे।

* प्रश्नोत्तरी में कुछ प्रश्नोत्तर इस प्रकार थे—

नेपोलियन शासक भी उच्च कोटि का था। शासन में उसका आदर्श एक सदाशय निरंकुश शासन का था। वह अपनी सत्ता पर किसी प्रकार का अंकुश सहन नहीं कर सकता था परन्तु उसे अपनी प्रजा के हित का पूरा ध्यान था। उसने अनेक प्रकार के सुधार करके प्रजा के जीवन को सुखी एव समृद्ध बनाने का प्रयत्न किया। वह उतना ही निरंकुश स्वेच्छाचारी शासक था जितना चौदहवां या सोलहवॉ लुई परन्तु उसकी स्थिति में यह विशेषता थी कि उसने जब जब आगे कदम बढाया, तभी तब उसे सदा जनता का समर्थन प्राप्त हुआ था। वह जनता की सम्मति से सम्राट् था। वह राजसी ठाटबाट का भी पूरा शौकीन था और उसकी शान शौकन चौदहवे लुई की शान शौकत से किसी प्रकार कम न थी। उसने जिस ढङ्ग से शासन किया उससे बड़े महत्वपूर्ण राजनीतिक परिवर्तन हुए। उसने 'पुरानी व्यवस्था' के स्थान पर 'नई व्यवस्था' स्थापित की और आधुनिक राष्ट्रीय राज्यों के मूल तत्वों को शासन में प्रतिष्ठिन किया अर्थात् जनता के प्रभुत्व के सिद्धान्त पर आधारित, राष्ट्रीय सेना एवं राष्ट्रीय शिक्षा द्वारा समर्थित तथा राष्ट्रभक्ति की भावना द्वारा प्रेरित केन्द्रित शासन, वर्गों के स्थान पर सर्वसाधारण जनता का प्रतिनिधित्व करनेवाली व्यवस्थापिका सभा, निष्पक्षता एवं योग्यता के आधार पर सरकारी पदों की

प्रश्न—ईसाइयों का अपने राजाओं के प्रति क्या धर्म है?

उत्तर—ईसाइयों का अपने राजाओं के प्रति और विशेष कर हमारा अपने सम्राट् के प्रति प्रेम, आदर, आज्ञाकारिता, भक्ति, सैनिक सेवा तथा साम्राज्य की रक्षा के लिये कर समर्पण करना धर्म है।

प्रश्न—सम्राट् के प्रति हमारे ये धर्म क्यों हैं?

उत्तर—क्योंकि ईश्वर ने उसे हमारा सम्राट् तथा पृथ्वी पर अपनी प्रतिमूर्ति और अपनी सत्ता का प्रयोग करनेवाला नियुक्त किया है।

प्रश्न—जो सम्राट् के प्रति अपने कर्त्तव्य नहीं करते उनके मस्तिष्क में क्या विचार होने चाहिये?

उत्तर—सेंट पॉल के पत्रों के अनुसार वे सम्राट् के प्रति अपने कर्त्तव्यों का उल्लंघन करने में ईश्वरी व्यवस्था का भंग करते हैं और अपने लिए सदा के लिए नर्कवास की तैयारी करते हैं। (Swain: A History of World Civilization, p 499.)

उपलब्धि, विशेषाधिकारहीन वैयक्तिक समाज तथा धार्मिक सहिष्णुता।*
इन सिद्धान्तों पर पूर्णतया व्यवहार नहीं हुआ परन्तु वे उसकी शासन-व्यवस्था के मौलिक सिद्धान्त थे। यही आधुनिक राष्ट्रीय राज्य के मौलिक तत्त्व हैं।

परन्तु नेपोलियन का महत्व उसकी सैनिक सफलताओं मे नही था क्योंकि वे सब क्षणिक थीं, न .फ्रान्स की समृद्धि के लिए अथवा सुशासन के लिए विश्वविद्यालय या .फ्रान्स के बैंक की स्थापना या विधान-सग्रह के निर्माण आदि जो प्रयत्न उसने किए उन्हीं में उसका महत्व था। उसका महत्व वास्तव में इस बात में था कि उसने क्रान्ति के ऐतिहासिक उद्देश्य की पूर्ति की क्योंकि अपने विजयों के फल-स्वरूप उसने .फ्रान्स के बाहर पुरानी व्यवस्था की जड़ें नष्ट कर दीं। उसके बाद योरोप का नवनिर्माण और राजनीतिक सत्ता का नव-वितरण हुआ जिसके फल-स्वरूप योरोप का पुराना नकशा बदल गया। इतना ही नही, ज्यों ज्यों उसकी सत्ता .फ्रान्स के बाहर बढ़ती गई त्यों त्यों वह जनता म क्रान्ति के बीज बोता गया और चाहे अनजाने ही, उसने राष्ट्रीयता की भावना जागृत की जिसने उसी के विश्व-साम्राज्य के स्वप्न को भंग कर दिया और उसके पतन के उपरान्त विजयी सत्ताओं ने योरोप को पुरानी व्यवस्था की शृङ्खलाओं में फिर से जकड़ने के जो प्रयत्न किए उन्हें विफल कर दिया।† नेपोलियन ने क्रान्ति को जो आरम्भ में .फ्रेञ्च थी योरोपीय बना दिया। .फ्रेञ्च क्रान्ति के विचारों एवं आदर्शों का नेपोलियन की कृतियों के फल-स्वरूप कई प्रकार से योरोप में प्रसार हुआ। नीदरलैंड, राइन-प्रदेश तथा इटली का अधिकांश .फ्रेन्च शासन तथा नेपोलियन-विधान-संग्रह की अधीनता में थे और उन प्रदेशों के निवासी केन्द्रीकृत शासन, वैयक्तिक समाज तथा समानता के अभ्यस्त हो गये थे। मध्य तथा दक्षिणी जर्मनी के राज्य, नेपिल्स, स्पेन आदि अधीन राज्यों में भी सामन्तवाद तथा अर्ध-दास प्रथा नष्ट कर दी गई, लोगों को धार्मिकता सहिष्णुता प्राप्त हुई और प्रजातन्त्रीय शासन तथा सामाजिक सामानता के सिद्धान्त प्रतिष्ठित हुए। नेपोलियन के उत्कर्ष से उसके शत्रु भी प्रभावित हुए और उसका अनुकरण करने लगे। प्रशा में और कुछ अंश तक ऑस्ट्रिया में जो सामाजिक तथा राजनीतिक सुधार किए गये वे मध्य-योरोप के दैवी अधिकारयुक्त राजाओं के उन सुधारों द्वारा जनता का समर्थन प्राप्त करने

† Hayes: A Political and Cultural History of Modern Europe, Vol I, p. 697,

* Strong: Dynamic Europe, p. 226.

के प्रयत्न थे जिनका आरम्भ फ्रेन्च क्रान्तिकारियों ने और जिनका संगठन और प्रचार नेपोलियन ने किया था परन्तु योरोप को जो सबसे बड़ी वस्तु नेपोलियन से मिली वह थी राष्ट्रीयता की भावना। * उसने प्रत्यक्ष एव परोक्ष दोनों रीति से राष्ट्रीयता की भावना को जन्म दिया। जर्मनी तथा इटली में राजनीतिक परिवर्तन करके उसने उनकी भावी राजनीतिक एवं राष्ट्रीय एकता का मार्ग साफ कर दिया। पोलैंड में उसने वार्सा की ग्राण्ड डची स्थापित करके पोलिश राष्ट्रीयता को उभाड़ा। उसकी ज्यादतियों के विरोध में स्पेन तथा जर्मनी में राष्ट्रीय भावना का उदय हुआ।

वह कई अर्थों में क्रान्ति-पुत्र था। क्रान्ति के पूर्व जो आलोचनात्मक एवं विद्रोह-भावना से परिपूर्ण साहित्य फ्रान्स में प्रसारित हो रहा था उसका उसके मस्तिष्क पर बड़ा प्रभाव पड़ा था। अन्य अनेकानेक प्रतिभाशाली व्यक्तियों के समान क्रान्ति के कारण ही उसका उत्कर्ष संभव हो सका। क्रान्ति ने फ्रान्स में विषमता एव विशेषाधिकारों का नाश कर समानता की प्रतिष्ठा की थी और इसी सिद्धान्त के आधार पर सर्वसाधारण वर्ग के लोग जिनमें नेपोलियन भी था आगे बढ कर राष्ट्र में सर्वोच्च स्थानों पर पहुँच सके थे जिन पर पुरानी व्यवस्था में केवल कुलीन लोग ही पहुँच पाते थे। उसको जो अद्वितीय सफलता प्राप्त हुई वह भी उस असाधारण एवं अद्भुत शक्ति के कारण प्राप्त हुई जिसे क्रान्ति ने जन्म दिया था। फ्रेञ्च जनता को क्रान्ति ने शताब्दियों के बन्धन से मुक्त कर राष्ट्रीयता एवं स्वतत्रता के नवीन जोश से ओतप्रोत कर दिया था। उसी जोश से भरी फ्रेञ्च सेना के बल पर नेपोलियन अपनी विजयों से संसार को चकित कर सका था। किन्तु जैसा हम ऊपर देख चुके हैं उसने क्रान्ति को केवल आंशिक रूप में ही अपनाया।

नेपोलियन वास्तव में अत्यन्त प्रतिभाशाली व्यक्ति था। एक छोटे से द्वीप के एक छोटे से गाँव में एक साधारण से परिवार में उत्पन्न होते हुए भी वह अपनी प्रतिभा के बल पर ही सम्राट् बना और अपना नाम इतिहास में अमर कर गया। परन्तु वह एक धूम्रकेतु के समान था जो योरोप के आकाश में उदय हुआ और संसार को अपने प्रकाश से चकित करता हुआ अनन्त में विलीन हो गया। उसकी सफलता क्षणिक रही और अन्त में उसका पतन हो गया। इसके कई कारण थे।

उसने बड़ी शीघ्रता से मंजिल पर मंजिल चढा कर साम्राज्य का विशाल

* Hayes: A Political and Cultural History of Modern Europe, Vol. I, p 697-698

भवन खड़ा कर लिया परन्तु उसकी नींव बड़ी निर्बल थी और जो धक्के उसे लगते रहे उनके सामने वह टिक न सका और धराशायी हो गया। इतने बड़े साम्राज्य को उसने अकेले ही खड़ा किया था और वह केवल उसी पर निर्भर था। उसकी कमजोरियाँ साम्राज्य की कमज़ोरियाँ थीं, उसका जीवन ही साम्राज्य की अवधि था। इतने बड़े साम्राज्य की सालसम्हाल एक व्यक्ति के, चाहे वह कितना ही प्रतिभाशाली क्यों न हो, बूते के बाहर थी। उसका निर्माण युद्ध और विजय के आधार पर हुआ था। उसका आधार बल था और बल पर ही वह टिका रह सकता था। उसने फ्रेञ्च जनता को अपनी विजयों से चकित कर रखा था और उसे उस पर गौरव था। परन्तु जनता की यह भावना बहुत दिनों तक न रह सकी। उसका शासन निरंकुश था और निरंकुश शासन के प्रति जनता में डर ही हो सकता है, सद्भावना और भक्ति नहीं। जिस शासन के प्रति जनता में भक्ति न हो वह अधिक टिक नहीं सकता। जब तक नेपोलियन का बल अक्षुण्ण रहा तब तक साम्राज्य भी दृढ रहा, परन्तु उसने कई शत्रु खड़े कर लिये थे। उसकी ज्यादतियों ने विजित देशों में राष्ट्रीयता की भावना जागृत की। धीरे-धीरे उसके विरुद्ध काम करनेवाली शक्तियाँ बल पकड़ती गईं और उसकी शक्ति क्षीण होती गई। जिन शक्तियों—राष्ट्रीयता एवं सैन्यबल—के आधार पर उसने विजय प्राप्त की थी वे ही शक्तियाँ उसके विनाश का कारण बन गईं। उसने योरोप को युद्ध-कला की शिक्षा दी; पराजित राष्ट्र उससे बारबार लड़ कर उसके युद्ध करने के ढंग सीख गये और उन्हीं ढंगों का उसके विरुद्ध प्रयोग कर उन्होंने उसे नष्ट कर दिया।

नेपोलियन बड़ा महत्वाकांक्षी था और वह समस्त योरोप पर शासन करना चाहता था परन्तु इस प्रकार के स्वप्न संसार में कभी सत्य नहीं हुए। अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्ति करने में उसने संभव असंभव का विचार नहीं किया और न अपने विरुद्ध काम करनेवाली शक्तियों का ठीक-ठीक अनुमान ही किया। वह कहा करता था कि असभव शब्द मूर्खों के कोष में ही मिलता है।

उसने अनेक गलतियाँ की जो अन्त में उसके पतन का कारण बनीं। सबसे बड़ी ग़लती उसने 'महाद्वीपीय व्यवस्था' स्थापित करने की। उससे फ्रान्स तथा उस व्यवस्था में सम्मिलित देशों की जनता को बड़े कष्ट उठाने पड़े और जनता सर्वत्र उससे घृणा करने लगी। उसे अपने सबसे बड़े शत्रु इंगलैण्ड को परास्त करना था। वही शत्रु ऐसा था जिसको वह परास्त नहीं कर सका था और जिसके लगातार प्रयत्नों ने अन्त में उसके पतन में बड़ी सहायता की। उसे

परास्त करने का यही एक उपाय था। वह इस व्यवस्था को सफल बनाना चाहता था और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये उसे कई जगह ज्यादतियाँ करनी पड़ीं जिसके फल-स्वरूप उसके शत्रुओं की सख्या बढ़ी। इसी कारण उसने पोर्तुगाल पर अधिकार करना चाहा और इसी सिलसिले में उसने स्पेन के सिंहासन पर अपने भाई को बिठाकर उस पर अधिकार करने का प्रयत्न कर बड़ी भारी गलती की। हम देख चुके हैं कि इस प्रयत्न के फल-स्वरूप स्पेन में राष्ट्रीयता की भावना उदय हुई जो छूत की बीमारी की तरह सारे योरोप में फैल गई। इसी व्यवस्था की सफलता के लिये उसने पोप को कैद करके उसका राज्य छीन लिया और समस्त योरोप की केथोलिक जनता को अपने विरुद्ध कर लिया। इसी कारण उसे रूस से भी युद्ध छेड़ना पड़ा जिसमें उसकी सैन्य-शक्ति क्षीण हो गई, दलित राष्ट्र उसके विरुद्ध उठ खड़े होने को प्रोत्साहित हुए और अन्त में उसका नाश करने में सफल हुए।

हमने ऊपर नेपोलियन की धूम्रकेतु से तुलना की है परन्तु, जैसा हम देख चुके हैं, उसकी सफलता क्षणिक होते हुए भी परिणाम में स्थायी थी। उसने क्रान्ति को योरोपीय बना दिया था। योरोप का नवनिर्माण उसकी कृतियों के फल-स्वरूप ही सम्भव हो सका। उसका तो पतन हो गया था परन्तु जिन शक्तियों के बल पर उसका उत्कर्ष हुआ था वे उसके पतन के फल-स्वरूप नष्ट नहीं हुई। क्रान्ति अपना कार्य कर चुकी थी और योरोप में पुरानी व्यवस्था वापस नहीं आ सकती थी। अब नेपोलियन का काम समाप्त हो चुका था और जनता का काम शुरू हुआ था। 'पुरातन' और 'नवीन' अब आमने सामने थे और एक ओर स्वतंत्रता एवं राष्ट्रीयता तथा दूसरी ओर प्रतिक्रिया की शक्तियों के बीच संघर्ष होना था जिसमें से एक नये योरोप का निर्माण होना था।

वियना-कांग्रेस और योरोप का पुनर्निर्माण

नेपोलियन को अन्तिम विदा देकर वियना-कांग्रेस ने अपना कार्य पुनः हाथ में लिया। उसके सामने कई विचारणीय प्रश्न थे—ऐसा प्रबन्ध करना कि भविष्य में फ्रान्स योरोप की शान्ति को भंग न कर सके और इस दृष्टि से फ्रान्स की सीमा पर सुदृढ़ राज्यों की स्थापना करना; मृत पवित्र रोमन साम्राज्य के स्थान पर पर जर्मनी की नवीन व्यवस्था करना; वार्सा की ग्राण्ड डची, नेपोलियन के पक्के मित्र सेक्सनी तथा फिनलैण्ड का भाग्य निर्णय करना; इटली की नई व्यवस्था करना तथा डेन्मार्क को मित्रराष्ट्रों

के विरोध का दण्ड देना और स्वीडेन को उसकी सहायता का पुरस्कार देना।* संक्षेप में उसका कार्य नेपोलियन के काम को नष्ट करके योरोप का पुनर्निर्माण करना था।

कांग्रेस का प्रमुख नेता ऑस्ट्रिया का प्रधान मन्त्री मेटरनिख था जो अत्यन्त प्रतिक्रियावादी था। उसे क्रान्ति एक भयानक विभीषिका मालूम पड़ती थी और वह योरोप को यथासम्भव १७८६ की स्थिति में वापस पहुँचा देना चाहता था। इस कार्य में फ्रान्स के चतुर प्रतिनिधि तेलीरॉं का उसे सहयोग प्राप्त था जिसके प्रस्ताव पर उसने 'न्याय्यता' (Legitimacy) को पुनर्निर्माण के कार्य का आधारभूत सिद्धान्त स्थिर किया। इसका अर्थ था कि जो राजा ज़बरदस्ती पदच्युत कर दिये गये थे उन्हें न्याय के अनुसार उनके राज्य वापस मिलने चाहिये। किन्तु व्यवहार में इस सिद्धान्त में दो कारणों से परिवर्तन करना पड़ा। बड़े राज्यों की क्षतिपूर्ति के लिये कुछ प्रदेश देने की आवश्यकता और फ्रान्स को भविष्य में अधिक शक्तिशाली बन कर योरोप के शक्ति-समतोलन को भग करने से रोकने की आवश्यकता। इस प्रकार योरोप का पुनर्निर्माण इन तीन सिद्धान्तों के आधार पर किया गया—न्याय्यता, विजयी राज्यों की क्षतिपूर्ति तथा फ्रान्स के प्रति शत्रुतापूर्ण शंका।†

मुख्य निर्णय—

इन सिद्धान्तों के आधार पर निम्निलिखित परिवर्तन किये गये।

फ्रान्स—

फ्रान्स ने क्रान्ति-काल तथा नेपोलियन-युग में जितने प्रदेश अपने राज्य में सम्मिलित कर लिये थे वे सब छीन लिये गये और उसकी सीमा प्रायः वही कर दी गई जो क्रान्ति के पूर्व थी। भविष्य में वह अधिक शक्तिशाली बनकर फिर योरोप की शान्ति को भंग न कर सके इस दृष्टि से उसकी सीमा पर निम्नलिखित सुदृढ़ राज्य स्थापित किये गये।

हॉलैण्ड—

हॉलेण्ड में ऑरेञ्ज वश की पुनः स्थापना की गई और उसे सुदृढ़ बनाने के लिये बेल्जियम का प्रदेश उसमे सम्मिलित कर दिया गया।

प्रशा—

राइन नदी के तट पर फ्रान्स का मुकाबला करने के लिये प्रशा को

* Hearnshaw : Main Currents of European History, pp. 95-96.
† Schevill ; A History of Europe, pp 448-449.

उस नदी के दोनों तटों पर कुछ प्रदेश दे दिये गये और स्वेडिश पोमरेनिया, सेक्सनो का उत्तरार्ध और थोर्न तथा डेञ्जि्ग सहित पोसेन की डची उसमें सम्मिलित करके उसकी सीमा का विस्तार किया गया और उसे मजबूत राज्य बनाया गया। प्रशा अल्सास तथा लोरेन के प्रदेश भी चाहता था परन्तु वेलिंग्टन ने उसका विरोध किया और वे प्रदेश फ्रान्स के पास ही बने रहे।

सार्डिनिया—

सार्डिनिया को पायडमॉण्ट तथा सेवॉय प्रदेश वापस मिल गये और उसे जिनोआ का राज्य भी दे दिया गया। इस प्रकार फ्रान्स की पूर्वी सीमा पर हॉलैण्ड, प्रशा तथा सार्डिनिया के मज़बूत राज्य स्थापित किये गये।

ऑस्ट्रिया—

बेल्जियम ऑस्ट्रिया के अधीन था परन्तु वह हॉलैण्ड में सम्मिलित कर दिया गया था। इस क्षति की पूर्ति के लिये उसे इटली में लोम्बार्डी, वेनीशिया और इलिरियन प्रान्त दिये गये तथा रूस से पूर्वी गेलिशिया तथा बेवेरिया से टिरोल का प्रदेश लेकर उसको दिये गये।

जर्मनी का पुनः संगठन—

जर्मनी के नवनिर्माण का प्रश्न बड़ा कठिन था क्यों कि उसमें ऑस्ट्रिया तथा प्रशा की प्रतिस्पर्धा तथा छोटे राज्यों की नेपोलियन द्वारा प्रदत्त सार्वभौम अधिकारों को छोड़ने की अनिच्छा बड़े बाधक थे। यदि जर्मनी के सम्बन्ध में न्याय्यता का सिद्धान्त लागू किया जाता तो पुराने ३०० से अधिक राज्यों सहित पवित्र रोमन साम्राज्य की पुनः स्थापना करनी पड़ती परन्तु यह बात असभव थी। उधर जर्मनी में राष्ट्रीयता की भावना बड़ी प्रबल थी जो समस्त जर्मनी की राष्ट्रीय एकता की इच्छुक थी। परन्तु मेटरनिख राष्ट्रीयता के नाम से ही चौंकता था। अतः पवित्र रोमन साम्राज्य के स्थान पर एक शिथिल राज्य-संघ स्थापित किया गया। अब जर्मनी मे छोटे-बड़े ३९ राज्य बचे थे। उनका 'जर्मनिक संघ' (Germanic Bund) बनाया गया जिसके लिये संघ के विभिन्न राज्यों के प्रतिनिधियों (जनता के नहीं) की एक संघीय विधान सभा (Federal Diet) का निर्माण किया गया। ऑस्ट्रिया उसका अध्यक्ष रहा। सभी राज्यों ने एक दूसरे की सीमाओं की गारण्टी दी और समस्त जर्मनी की तथा एक दूसरे की रक्षा का वचन दिया। प्रत्येक राज्य में प्रतिनिधि-सभाओं की स्थापना का भी निश्चय हुआ। परन्तु सब को सुदृढ़
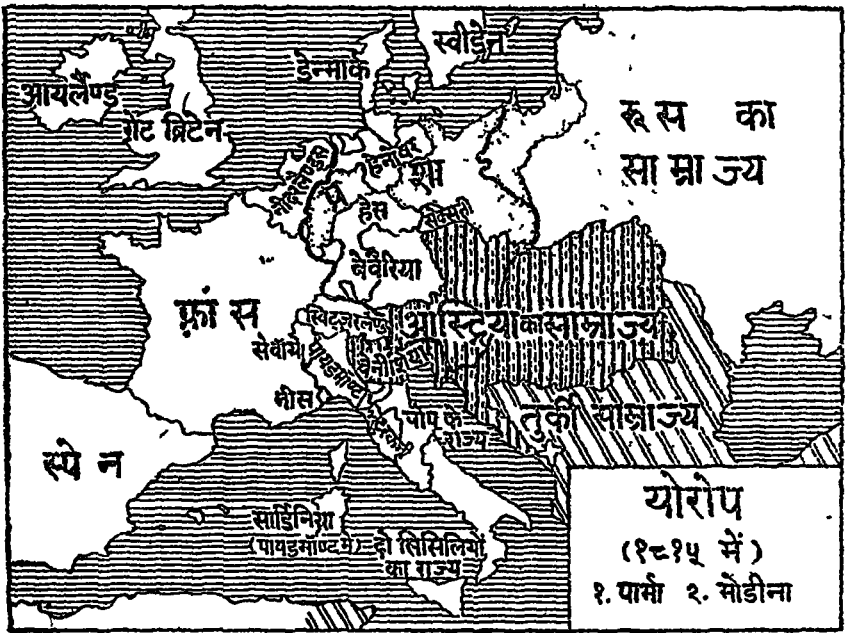
बनाने के लिये कुछ नहीं किया गया। विभिन्न राज्यों का पारस्परिक सम्बन्ध बड़ा शिथिल रहा।

इटली—

इटली की समस्या भी कुछ कुछ जर्मनी की समस्या के समान ही थी। वहाँ भी नेपोलियन के कार्य को नष्ट करके पुराने राज्यों को पुनः स्थापित करने का प्रयत्न किया गया। नेपिल्स फिर बूर्बों राजा सप्तम फर्डिनेण्ड को दे दिया गया। पोप को पुनः अपना राज्य मिल गया। सार्डिनिया को पायउमॉण्ट तथा सेवॉय वापस मिले। ऑस्ट्रिया को लोम्बार्डी का प्रदेश मिल गया। टुस्कनी तथा मोडीना के राज्य पुनः पुराने ऑस्ट्रियन वंशीय राजाओं को दे दिये गये और पार्मा का राज्य नेपोलियन की पत्नी भूतपूर्व सम्राज्ञी मेरी लुईसा को मिला। परन्तु जिनोआ और वेनिस के गणतत्र पुनः स्थापित नहीं हुए। जिनोआ सार्डिनिया को तथा वेनिस ऑस्ट्रिया को मिला। इस प्रकार इटली में पुरानी व्यवस्था पुनः प्रतिष्ठित की गई और ऑस्ट्रिया का प्राधान्य स्थापित किया गया।

स्विट्जरलैण्ड में तीन केण्टन और जोड़ दिये गये और उसकी स्वतंत्रता तथा तटस्थ स्थिति सब राज्यों ने स्वीकार करली। स्पेन तथा पोर्तुगाल मे वहाँ के पुराने राजवश पुनः स्थापित हो गये।

रूस—

रूस को पोसेन तथा थोर्न को छोड़ वार्सा की समस्त डची मिली। इसके अतिरिक्त स्वीडेन से उसे फिनलैण्ड भी मिला।

स्वीडेन—

स्वीडेन का पोमरेनिया प्रदेश भी प्रशा को दिया गया था। अतः इस क्षतिपूर्ति के लिये उसे डेन्मार्क से छीनकर नॉर्वे दिया गया।

ग्रेट ब्रिटेन—

ग्रेट ब्रिटेन को योरोप मे हेलिगोलैण्ड तथा माल्टा के द्वीप मिले और आयोनियन द्वीपों की सरक्षकता भी प्राप्त हुई। परन्तु योरोप के बाहर उसे बहुत लाभ हुआ। उसे स्पेन से ट्रिनिडाड, फ्रान्स से मॉरिशस, टोवेगो तथा सेंट लुसिया, तथा हॉलैण्ड से लंका के द्वीप मिले। हॉलैण्ड से उसे दक्षिण अफ्रिका में केप ऑफ़ गुड होप का प्रदेश भी प्राप्त हुआ।

सम्मेलन के समक्ष और भी कई समस्याएँ प्रस्तुत की गई थीं, जैसे स्पेन के अमेरिकन उपनिवेशों का प्रश्न जो ट्रेफलगर के युद्ध के बाद से विद्रोही हो

रहे थे, दास-व्यापार का प्रश्न जिसका इंगलैण्ड दमन करना चाहता था तथा तुर्की प्रश्न ('पूर्वीय प्रश्न') जिसके कुशासन की ग्रीस ने शिकायत की थी। परन्तु ये प्रश्न बड़े जटिल थे और उनको भविष्य के लिये छोड़ दिया गया। केवल दास-व्यापार की प्रथा के विरुद्ध उसे अनैतिक एव अमानुषिक उद्घोषित करके एक प्रस्ताव स्वीकार किया गया और यह आशा प्रकट की गई कि प्रत्येक राज्य इस प्रथा को नष्ट करने का प्रयत्न करेगा। इसके अतिरिक्त योरोप की अन्तर्राष्ट्रीय नदियों में जहाजों के आने जाने, तथा विभिन्न राज्यों के पारस्परिक व्यवहार आदि के सबन्ध में भी नियम बनाकर सम्मेलन ने अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार की व्यवस्था की ओर कदम उठाया।

यह समस्त कार्य दो सन्धियों द्वारा सम्पन्न हुआ जिनपर २० नवम्बर १८१५ को पेरिस में हस्ताक्षर हुए। उनमें से एक सन्धि 'पेरिस की दूसरी सन्धि' थी जिसका वर्णन ऊपर हो चुका है। दूसरी सन्धि इंगलैण्ड, ऑस्ट्रिया, प्रशा तथा रूस के बीच 'चतुर्मुख' सन्धि (Quadruple Alliance) थी जिसके द्वारा चारों राज्यों ने शामों, वियना तथा पेरिस में जो व्यवस्थाएँ की गई थीं उनकी बीस वर्षों तक रक्षा करने का वचन दिया। इसी सन्धि की एक धारा के अनुसार उन्होंने सामान्य हितों पर विचार करने के लिये निश्चित अवधि के बाद समय-समय पर सभा करने का निर्णय भी किया और इस प्रकार भावी अन्तर्राष्ट्रीय शासन का बीज बोया।

इस प्रकार योरोप का नवनिर्माण हुआ। इस व्यवस्था की कुछ बातें स्थायी रहीं परन्तु बहुत सी बिलकुल अस्थायी प्रमाणित हुईं। हॉलैण्ड तथा बेल्जियम का सयोग केवल १५ वर्ष रहा, इटली तथा जर्मनी की व्यवस्था १८७० तक चली; नॉर्वे का स्वीडेन के साथ सयोग १६०५ मे भंग हो गया और पोलेण्ड की व्यवस्था एक शताब्दी के लगभग रही।

वियना-कांग्रेस का उद्घाटन ऊँचे आदर्शों एवं उद्देश्यों की बड़ी बड़ी आकर्षक घोषणाओं के साथ हुआ था परन्तु कांग्रेस मे लूट का बाजार गर्म रहा। उसमें ऐसे लोग एकत्रित हुए थे जिन्हे प्रजातंत्र तथा राष्ट्रीयता की भावनाओं से घृणा थी। उन्होंने योरोप के नक्शे में राष्ट्रीयता तथा जनता की इच्छा की अवहेलना करते हुए अपनी इच्छानुसार परिवर्तन किये और जनता को बालक के समान अबोध समझ कर उससे परामर्श लेने की कोई आवश्यकता न समझी। वे 'शक्ति-समतोलन के सिद्धान्त' में उलझे रहे और

उन्होंने नवनिर्माण इस प्रकार करने का कोई प्रयत्न नहीं किया जिससे जनता की आकांक्षाएँ सन्तुष्ट हो सकतीं और चिरस्थायी शान्ति स्थापित हो सकती। नई व्यवस्था को स्थायी बनानेवाली बातों की उपेक्षा करने से वास्तव में कोई व्यवस्था हो ही नहीं सकती थी। १८१५ से आज तक का योरोपीय इतिहास वियना-कॉंग्रेस की इसी महान् भूल को सुधारने के प्रयत्नों का इतिहास है।*

यह सत्य है कि वियना-कांग्रेस में भाग लेनेवाले राजनीतिज्ञ प्रतिक्रियावादी थे और उन्होंने राष्ट्रीयता तथा प्रजातंत्र की भावनाओं की अवहेलना की जिनका उन्नीसवीं शताब्दी में प्राबल्य रहा और अठारहवीं शताब्दी के पुराने विचारों—शक्ति-समतोलन तथा वंशीय हितों के प्राधान्य—को पुनः प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया। उन्होंने बेल्जियम को हॉलैण्ड के साथ और नॉर्वे को स्वीडेन के साथ धर्म, जाति अथवा ऐतिहासिक सम्बन्धों का विचार किये बिना शामिल कर दिया और जर्मनी, इटली तथा पोलैण्ड की राष्ट्रीय आकांक्षाओं की निर्दयता के साथ उपेक्षा की। जिस 'न्याय्यता' के सिद्धान्त को लेकर वे चले थे उसका भी पूरी तरह से पालन नहीं किया गया। वेनिस तथा जिनोआ के गणतंत्रों का इतिहास कई राजतंत्रों के इतिहास से बहुत प्राचीन था परन्तु वियना के राजनीतिज्ञों को गणतंत्र के नाम से ही घृणा थी, उनकी स्थापना फिर से नहीं की गई और उत्तरी इटली को आक्रमण से सुरक्षित रखने के लिये उनका बलिदान कर दिया गया।

इस व्यवस्था के विरुद्ध ये सब आक्षेप सत्य हैं। परन्तु हमको इस बात का हमेशा ध्यान रखना चाहिये कि जिस परिस्थिति में इस सम्मेलन को काम करना पड़ा और जिन समस्याओं का समाधान उसे करना पड़ा वे बड़ी जटिल थीं। युद्ध-काल में विभिन्न शक्तियों के बीच कई सन्धियाँ हो चुकी थीं जिनका पालन आवश्यक था। १८१२ में जब स्वीडेन ने रूस की सहायता करना स्वीकार किया था तब उसने रूस से नॉर्वे दिलवाने का वचन ले लिया था। चतुर्थ गुट में शामिल होते समय प्रशा ने टिलसिट की सन्धि से उसे जो क्षति हुई थी उसकी पूर्ति का वचन ले लिया था। इसी प्रकार हॉलैण्ड के विलियम को बेल्जियम का और सार्डिनिया के राजा को जिनोआ तथा नीस का लोभ दिया गया था। इन सब बन्धनों के होते हुए किसी एक सिद्धान्त के अनुसार व्यवस्था करना असंभव था। यह भी सत्य है कि उन्हें प्रजातंत्र, स्वतन्त्रता, राष्ट्रीयता आदि की भावनाओं से घृणा थी परन्तु वे देख चुके थे कि इन्हीं भावनाओं के कारण योरोप

* Hazen : Modern European History, p. 255.

में बीस वर्षों से अधिक अशान्ति मचती रही और लाखों प्राणियों का बलिदान हुआ। ऐसी अवस्था में उनकी घृणा निराधार नहीं थी। यदि इस सम्बन्ध मे उन्होंने जनता की आकाक्षाओं की उपेक्षा की तो कम से कम जनता की ऐक आकाक्षा का वे बड़ी अच्छी तरह से प्रतिनिधित्व कर रहे थे। वह थी शांति की सर्वोपरि इच्छा। जनता शान्ति चाहती थी और उन्होंने अपनी बुद्धि और अनुभव की सहायता से योरोप में शान्ति स्थापित करने का ही प्रयत्न किया। हम यह नहीं कह सकते कि इस उद्देश्य की पूर्ति में उन्हें सफलता प्राप्त नहीं हुई। स्थान स्थान पर राष्ट्रीय आन्दोलनों के होते हुए भी हमें यह मानना पड़ेगा कि इस व्यवस्था से अगले ४० वर्षों तक योरोप में शान्ति बनी रही। यह कुछ कम सफलता नहीं थी।

वियना-कॉग्रेस के काम में हमें दो महत्वपूर्ण बातें दिखाई देती हैं। प्रथम बात तो यह है कि कॉग्रेस बिलकुल ही प्रतिक्रियावादी नहीं थी। पिछले बीस वर्षों में जो राजनीतिक परिवर्तन हो चुके थे उन्हे उसने स्वीकार किया। रूस एक महान् शक्ति के रूप में स्वीकार कर लिया गया और पश्चिमी योरोप के कामों मे उसने जो हस्तक्षेप किया था वह भी स्वीकृत हुआ। जर्मनी में नेपोलियन ने जो परिवर्तन किये थे वे भी मोटी तौर से मान लिये गये। पवित्र रोमन साम्राज्य का पुनरुत्थान न हुआ और पुराने छोटे-छोटे असख्य राज्यों को पुनः स्थापित करने का प्रयत्न नहीं किया गया। स्वीडेन का धीरे-धीरे ह्रास हो रहा था। बाल्टिक सागर के दक्षिणी तट पर जो उसके प्रदेश थे उन्हें उससे लेकर कॉग्रेस ने उसके ह्रास पर अपनी मोहर लगा दी। दूसरी बात यह है कि इस व्यवस्था में भावी घटनाओं के बीज विद्यमान् थे। प्रशा की शक्ति बढी और राइन नदी तक पहुँच जाने से फ्रान्स से जर्मनी की रक्षा का भार जो अभी तक ऑस्ट्रिया पर था, उस पर चला गया। वह जर्मनी में एक शक्तिशाली राज्य बन गया और भविष्य में जर्मनी का नेतृत्व अपने हाथ में ले लेने मे भी उसे सुविधा हो गई। इसके साथ ही ऑस्ट्रिया के पश्चिमी प्रदेश छिन गये और उनके बदले उसे इटली में नये प्रदेश मिले। इसका परिणाम यह हुआ कि उसका अधिकांश राज्य जर्मनी के बाहर पहुच गया और उसका ध्यान जर्मनी के बाहर रहने लगा। इस प्रकार ऑस्ट्रिया को जर्मनी से निकाल कर जर्मनी के प्रशा की अधीनता में एकीकरण के लिये मार्ग खुल गया। इसी प्रकार सार्डिनिया की उन्नति से उसके नेतृत्व में इटली के राजनीतिक एकीकरण का रास्ता तैयार हो गया। कॉग्रेस ने स्वतन्त्रता एव राष्ट्रीयता की क्रान्तिजनित भावनाओं को दबाकर अठारहवीं शताब्दी के सिद्धान्त पर जो व्यवस्था कायम

करने का प्रयत्न किया वह मुर्दे को जिलाने के प्रयत्न के समान था। पुरानी व्यवस्था समाप्त हो चुकी थी और पुनर्जीवित नहीं की जा सकती थी। नई भावनाओं की बाढ़ को रोकना असम्भव था। वियना-काँग्रेस के साथ पुराने युग का अन्त हुआ और नये युग का आरम्भ हुआ।* उसके बाद का योरोपीय इतिहास प्रतिक्रिया तथा राष्ट्रीयता एवं स्वतन्त्रता के संघर्ष और परिणाम में इन नवीन भावनाओं की विजय का इतिहास है।

पाठ्य-ग्रन्थ

(अ) पृष्ठभूमि

1. ADAMS : Civilisation in the Middle Ages.
2. FISHER : A History of Europe.
3. FREEMAN : General Sketch of European History.
4. HAYES and BALDWIN : A History of Europe, Vol. I.
5. HAYES, MOON & WAYLAND : World History.
6. MYERS : Medieval and Modern History.
7. STRONG : Dynamic Europe.
8. SWAIN : A History of World Civilisation.
9. WELLS : An Outline of History.

(आ) फ्रेञ्च राज्यक्रान्ति तथा नेपोलियन

1. BELLOC : The French Revolution.
2. BRADBY : A Short History of the French Revolution.
3. Cambridge Modern History, Vols VIII and IX.
4. FISHER : A History of Europe.
5. FISHER : Bonapartism.

---

* Marriott : The Remaking of Modern Europe, p. 131.

6. GRANT & TEMPERLEY. Europe in the Nineteenth and Twentieth Centuries.
7. HASSALL : The Balance of Power.
8. HAYES : A Cultural and Political History of Modern Europe, Vol. I.
9. HAYES & COLE : A History of Europe, Vol. II.
10. HAZEN . Modern European History.
11. HAZEN : The French Revolution, 2 Vols.
12. HEARNSHAW : Main Currents of European History.
13. HOLLAND ROSE : Life of Napoleon.
14. KETELBEY : A History of Modern Times.
15. LOCKHART : The History of Napoleon Buonaparte.
16. LODGE : A History of Modern Europe.
17. LUDWIG : Napoleon.
18. MADELIN : The Revolutionaries.
19. MADELIN : Consulate and the Empire, 2 Vols.
20. MARRIOTT : The Remaking of Modern Europe.
21. MUIR : A Short History of the British Commonwealth. Vol. II.
22. SCHEVILL : A History of Europe.
23. STEPHENS : Revolutionary Europe.
24. STRONG : Dynamic Europe.
25. THOMPSON : The French Revolution.
26. WELLS : The Outline of History.